कुंडलिनी विज्ञान: एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान

निर्विकल्प की यात्रा: पुस्तक 6

लेखक: प्रेमयोगी वज्र

©2025 प्रेमयोगी वज्र। सर्वाधिकार सुरक्षित।

कानूनी अस्वीकरण

यह पुस्तक केवल शैक्षिक और सूचनात्मक उद्देश्यों के लिए लिखी गई है। इसका उद्देश्य किसी भी विश्वास प्रणाली या परंपरा को आहत करना, चुनौती देना या उसका खंडन करना नहीं है। इसकी सामग्री लेखक की व्यक्तिगत अंतर्दृष्टियों और अनुभवों को प्रतिबिंबित करती है और इसे किसी भी प्रकार की पेशेवर, चिकित्सीय, मनोवैज्ञानिक या कानूनी सलाह के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए। यद्यपि सटीकता सुनिश्चित करने के लिए हर संभव प्रयास किया गया है, फिर भी प्रकाशक और लेखक किसी प्रकार की गारंटी नहीं देते और इस सामग्री के उपयोग या व्याख्या से उत्पन्न होने वाली किसी भी हानि, नुकसान या परिणाम के लिए कोई दायित्व स्वीकार नहीं करते। पाठक अपने निर्णयों, कार्यों और परिणामों के लिए स्वयं जिम्मेदार हैं। यदि कोई संदेह हो, तो उन्हें किसी योग्य पेशेवर या सलाहकार से परामर्श करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

परिचय

जब कोई मनुष्य ऊर्जा, आनंद, जागरण या आत्म-बोध के मार्गों पर बहुत लंबे समय तक चलता रहता है, तो एक सूक्ष्म थकान अनिवार्य रूप से उत्पन्न हो जाती है। आरंभ में जिज्ञासा होती है। शीघ्र ही वह उत्साह में गहराती है, और कभी-कभी गर्व में भी—"मैंने कुछ ऊँचा छू लिया है।" पर समय के साथ, जो अनुभव कभी जादुई प्रतीत होते थे, वे दोहराव जैसे लगने लगते हैं। ऊर्जा का ऊपर उठना और नीचे उतरना, सिर में दबाव, दर्शन, आंतरिक ध्वनियाँ, आनंदमय अवस्थाएँ—सब मानो एक ही चक्र में घूमने लगते हैं।

एक समय ऐसा आता है जब साधक भीतर से इन गतियों से थक जाता है और उनसे आगे जाने की एक शांत प्रेरणा महसूस करता है। वह क्षण अंत नहीं होता, बल्कि वास्तविक आरंभ होता है। तभी कुछ नया, सहज और अनायास खुलता है। यहीं *निर्विकल्प* स्वयं उगने लगता है—न किसी प्राप्त की जाने वाली अवस्था के रूप में, न किसी पदक की तरह जिसे जीता जाए, बल्कि एक स्वाभाविक प्रस्फुटन के रूप में, जिसमें किसी प्रयास की आवश्यकता नहीं होती।

वेद इस सत्य को एक सशक्त रूपक के माध्यम से व्यक्त करते हैं: जैसे किसी वन के गहन भीतर दबी हुई रत्न-मणि को पूरे जंगल की गहन खोज के बाद ही पाया जा सकता है, वैसे ही सर्वोच्च आध्यात्मिक ज्ञान भी तभी प्रकट होता है जब ज्ञान और अनुभव की सभी पूर्ववर्ती अवस्थाएँ पूरी तरह पार कर ली जाती हैं। *निर्विकल्प* को समय से पहले पाने की चाह रखना, स्नातक की पढ़ाई पूरी किए बिना *PhD* चाहने जैसा है। कोई उसकी कल्पना कर सकता है, उसका स्वप्न देख सकता है, या कुछ समय तक उसका अनुकरण भी कर सकता है—पर वह टिकेगा नहीं। वास्तविक *निर्विकल्प* तभी उदित होता है जब हर प्रकार का पकड़ना, हर दौड़, और हर चाह विलीन हो जाती है। वह चलने के लिए कोई और मार्ग नहीं है; वह हर मार्ग का शांत अंत है।

यह समझ केवल दर्शन से नहीं, बल्कि जिए हुए अनुभव से उत्पन्न हुई है—वर्षों तक अभिव्यक्त चेतना के विविध रूपों से जुड़ने के माध्यम से: *कुंडलिनी* जागरण और उससे जुड़ी गड़बड़ियाँ, आत्म-बोध की झलकें, योगिक अनुशासन, मंत्र और तंत्र, वेदों और पुराणों की प्रतीकात्मक गहराई, विश्व धर्मों में प्रतिध्वनित अंतर्दृष्टियाँ, तथा ध्यान की विविध तकनीकों और उनके मनोवैज्ञानिक प्रभावों का विस्तृत क्षेत्र। इन सभी अन्वेषणों की गहन समीक्षा *कुंडलिनी साइंस: एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान* श्रृंखला में, छह खंडों के माध्यम से की गई है।

यह अंतिम पुस्तक उस अन्वेषण को उसके स्वाभाविक विश्राम-बिंदु तक ले आती है। इसलिए नहीं कि जिज्ञासा समाप्त हो गई है, बल्कि इसलिए कि उसका आवश्यक प्रवाह पूर्ण हो चुका है। नए *कुंडलिनी* संबंधी बोध निस्संदेह आगे भी आकार लेते रहेंगे—जैसे जीवन स्वयं निरंतर खुलता रहता है—परंतु इस यात्रा को परिभाषित करने वाली मूल गतियाँ, सुधार, भ्रांतियाँ और एकीकरण अब इन छह पुस्तकों में एक साथ बंध चुके हैं। इसके बाद जो आता है, वह समझाने के लिए कोई नया तंत्र नहीं, बल्कि अधिक स्पष्टता और सहजता के साथ जिया जाने वाला जीवन है।

अतः यह पुस्तक, और यह पूरी श्रृंखला, कोई अंतिम या निर्णायक निष्कर्ष प्रस्तुत नहीं करती—केवल उन कदमों और चूकों का एक ईमानदार मानचित्र देती है, जैसे वे घटित हुए। यदि आप भी पर्याप्त चक्रों में चल चुके हैं, तो संभव है कि आपको यहाँ अपनी ही यात्रा की प्रतिध्वनियाँ मिलें। और शायद, इन शब्दों के परे, आप उसी मौन को महसूस कर सकें जो हम सबके लिए धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करता है—किसी गंतव्य के रूप में नहीं, बल्कि उस रूप में जो तब शांत रूप से शेष रह जाता है, जब हर मार्ग चल लिया जाता है।

यह पुस्तक निरंतर विस्तार की प्रक्रिया में है। आगामी संस्करणों में इसमें नए अध्याय और गहन विवेचन जोड़े जाते रहेंगे।

निराकार आनंद में मौन अवतरण – विचार से परे एक साधारण व्यक्ति की झलक

यह ब्लॉग पोस्ट न तो किसी उपलब्धि का दावा करने के लिए लिखी गई है, न सिखाने के लिए, न ही किसी स्थिति की घोषणा करने के लिए। मैं अभी निर्विकल्प समाधि तक नहीं पहुँचा हूँ — पर जो यहाँ साझा कर रहा हूँ, वह मेरे भीतर स्वाभाविक रूप से घटित हो रहा है। यह एक यात्रा है, कोई निष्कर्ष नहीं। मैं इसे सरल, हृदय से निकली भाषा में लिख रहा हूँ — प्रत्यक्ष अनुभव से, उधार लिए गए ज्ञान से नहीं।

सांझ का मौन — जहाँ सब कुछ शुरू होता है

मैंने पाया कि जब शाम के समय बैठकर हल्के से श्वास पर ध्यान रखा जाता है, तो श्वास धीरे-धीरे स्थिर होने लगती है। इसके साथ ही विचार भी लगभग रुक जाते हैं। यह आश्चर्यजनक है कि विचारों की तीव्रता तुरंत श्वास की तीव्रता में प्रतिबिंबित हो जाती है। श्वास और विचार निर्विवाद रूप से आपस में जुड़े हुए हैं। जब मैं एक ही आसन में बैठे-बैठे शारीरिक रूप से थक जाता हूँ, तो आसन बदल लेता हूँ — और तब कुछ रहस्यमय घटित होता है।

निचले चक्रों से आनंदमय ऊर्जा रीढ़ के माध्यम से सिर की ओर उठने लगती है। ऐसा लगता है मानो सिर में ऑक्सीजन की किसी कमी की भरपाई यह उठती हुई ऊर्जा कर रही हो। जब सिर को यह पर्याप्त मात्रा में मिल जाती है, तो श्वास फिर से धीमी हो जाती है — लगभग रुक-सी जाती है — और विचार भी उसी के साथ थम जाते हैं। ऊर्जा की गति और मानसिक स्थिरता का यह चक्र घंटों चलता रहता है, यहाँ तक कि मैं बैठे-बैठे ही सो जाता हूँ, प्रायः देर रात।

यह प्रक्रिया विशेष रूप से तब प्रभावी लगती है जब इसे हल्के भोजन के लगभग 2–3 घंटे बाद किया जाए। यह पैटर्न मैंने तब से देखना शुरू किया है जब से मैं सुबह-सुबह रीढ़ के माध्यम से क्रिया योग की श्वास-प्रक्रिया का अभ्यास करने लगा — और उसे काफी देर तक करता हूँ, जब तक कि सिर भारी-सा न लगने लगे।

उस श्वसन में मैं केवल ॐ का उपयोग करता हूँ — और पूरा अनुभव पूरी तरह सहज रहता है। न कोई झटका, न कोई ज़ोर। बस एक प्रवाह।

अब मुझे लगता है कि इस प्रक्रिया के माध्यम से निर्विकल्प समाधि अपने आप प्रकट हो सकती है — इच्छाशक्ति से नहीं, बल्कि आंतरिक परिष्कार से।

ध्यान चित्र: भीतर की चलायमान छवि

अब एक नया प्रपंच उभरने लगा है। ध्यान के दौरान उत्पन्न होने वाले कुछ विचार अपने आप ही अज्ञा चक्र पर एक ध्यान चित्र — एक ध्यानात्मक छवि — में बदल जाते हैं। कभी-कभी इस ध्यान चित्र को अज्ञा चक्र पर लाने के लिए भौंहों के मध्य बिंदु पर हल्के से ध्यान केंद्रित करना पड़ता है, आँखों को थोड़ा झपकाकर और भौंहों में हल्की हरकत करके। जब मैं इस छवि को भी स्वयं से अलग न मानकर, किसी वस्तु की तरह नहीं, बल्कि अपने ही अस्तित्व के रूप में देखने का प्रयास करता हूँ, तो कुछ सूक्ष्म-सा परिवर्तन होता है।

वह छवि पीछे की ओर — सहस्रार चक्र की दिशा में — खिसकने लगती है। यह बिंदु ठीक सिर के शिखर पर नहीं, बल्कि सिर के भीतर थोड़ा अंदर, ऊपर के सतही बिंदु के ठीक नीचे स्थित प्रतीत होता है। इससे आनंद और बढ़ जाता है। सिर का दबाव मस्तिष्क के अग्र भाग से हटकर मध्य क्षेत्र में आ जाता है, जिससे स्पष्ट राहत मिलती है। ऐसा लगता है मानो ऊर्जा रीढ़ के माध्यम से ऊपर उठती है और अज्ञा चक्र की तुलना में अधिक साफ़ और कोमल ढंग से इस सहस्रार बिंदु पर उतरती है।

यदि मैं इस ध्यान चित्र को, सहस्रार पर भी, अपने निराकार स्वरूप के भीतर उठी एक और लहर मात्र के रूप में पहचान लेता हूँ, तो वह धीरे-धीरे फीका पड़ने लगता है। जो शेष रहता है, वह शुद्ध, निराकार अस्तित्व का एक क्षणिक स्वाद होता है — विचार और छवि से परे की स्थिति। पर यह स्थायी नहीं रहता।

शीघ्र ही कोई नया विचार आता है। वह फिर ध्यान चित्र में बदल जाता है। यदि मैं उसे सजगता से सहस्रार पर थामे नहीं रखता, तो वह वापस अज्ञा चक्र की ओर फिसल जाता है। यह चक्र चलता रहता है: रूप का उदय, उसका अंतर्मुखी होना, निराकार में विलय, और फिर पुनः उदय। अब मुझे समझ आता है कि मेरी दस सेकंड की कुंडलिनी जागृति की झलक के दौरान, जब मैंने माथे की मालिश की और जानबूझकर मानसिक संरचनाओं के क्षेत्र में लौटने का प्रयास किया, तब ध्यान चित्र अज्ञा चक्र की ओर क्यों खिसक गया था। अब यह भी समझ में आता है कि क्यों मैं सहज रूप से ध्यान चित्र को सिर के भीतर उसकी परिधि में घड़ी की दिशा और विपरीत दिशा में घुमाया करता था — जैसे कोई किसान खेत जोतता है। इस घुमाव से ध्यान चित्र कुछ समय के लिए सहस्रार बिंदु पर ही ठहर जाया करता था।

और फिर भी, यह आगे-पीछे का दोलन, पेंडुलम जैसा, किसी प्रकार की खीझ उत्पन्न नहीं करता। यह ऐसा लगता है मानो प्रकृति स्वयं को परिष्कृत कर रही हो।

अग्नि से सुगंध तक — एक तुलना

यह वर्तमान अवस्था उस तीव्र, पूर्ण विकसित कुंडलिनी जागरण जैसी नहीं है, जो मुझे कभी हुआ था, जब दस सेकंड के लिए प्रबल ऊर्जा के विस्फोट में आत्म-बोध प्रकट हुआ था। वह अनुभव अग्नि था।

जो अब हो रहा है, वह सुगंध है — परिष्कृत, निष्क्रिय और बिना नाटकीयता के। यह न तूफ़ान है, न झटका; यह एक मंद समीर है। यह तंत्रिका तंत्र को झकझोरता नहीं, बल्कि धीरे-धीरे अस्तित्व को दिशा देता है।

पहले, शक्तिशाली ऊर्जा-उछाल के माध्यम से सविकल्प समाधि में एक अचानक प्रवेश हुआ था, जिसने अस्थायी रूप से अहं-परिचय को जला दिया था। वह क्षणिक, नाटकीय और तीव्र था — जिसे थामे रखना कठिन था।

अब प्रक्रिया स्थिर, तंत्रिका-तंत्र के लिए अनुकूल और सूक्ष्म प्रतीत होती है। क्रिया योग और आंतरिक निस्तब्धता रूप को बलपूर्वक नहीं, बल्कि कोमलता से घोल रहे हैं। ऐसा लगता है कि निर्विकल्प धीरे-धीरे समीप आ रहा है — किसी शिखर की तरह नहीं जिसे हासिल करना हो, बल्कि एक अनुपस्थिति के रूप में जिसे पहचाना जाना है।

जब आनंद भी फीका पड़ने लगे

जैसे-जैसे यह अवस्था गहराती है, सबसे स्पष्ट परिवर्तन लालसा में कमी के रूप में दिखाई देता है। लालसा पहले किसी गहरे अभाव-बोध से उठती थी — उस पहचान से जो खोज करता है। पर अब स्वयं जागरूकता ही आत्मसंतुष्ट होने लगी है। यहाँ तक कि आनंद की भी चाह नहीं रहती। मेरे लिए यही वस्तुरहित संतोष है।

न गति की मानसिक लत। न और अधिक की भूख। बस अस्तित्व में एक सूक्ष्म विश्राम।

इसका यह अर्थ नहीं कि मैं निर्विकल्प में स्थापित हो गया हूँ। अभी नहीं। पर रूप की पकड़ ढीली पड़ रही है। इच्छा पतली हो रही है। 'मैं' की अनुभूति पारदर्शी होती जा रही है।

ध्यान चित्र बनते हुए भी, मैं उसे अपने भीतर उठी एक लहर की तरह देखता हूँ। वह मिटती है, और निराकारता झलक दिखाती है। लेकिन जब मैं उसे भी थामने की कोशिश करता हूँ, तो वह भी फिसल जाती है। और फिर एक नई लहर उठती है। और परिष्कार का यह चक्र चलता रहता है।

भीतरी मानचित्र: सरल शब्दों में यह चक्र

• एक विचार उठता है।
• वह अज्ञा चक्र पर ध्यान चित्र में बदल जाता है।
• मैं उसे अलग न मानकर देखता हूँ — वह सहस्रार की ओर खिसक जाता है।
• आनंद बढ़ता है, सिर का दबाव केंद्रित होता है, जागरूकता फैलती है।
• उसे अपने निराकार स्वरूप की एक लहर के रूप में पहचानते ही वह फीका पड़ जाता है।
• शुद्ध निराकार जागरूकता की झलक मिलती है।
• एक नया विचार उठता है, और चक्र फिर से शुरू हो जाता है।

यह चक्र कोई बाधा नहीं है। यह अनुग्रह है, जो दर्पण को माँज रहा है।

निष्कर्ष

मैं किसी अंतिम स्थिति का दावा नहीं करता। निर्विकल्प मुझमें अभी स्थिर नहीं हुआ है। लेकिन वह निकट है — किसी लक्ष्य की तरह नहीं, बल्कि एक अंतर्निहित मौन के रूप में, जो कभी-कभी स्वयं को प्रकट करता है।

यह ब्लॉग केवल एक साझा करना है — एक साधक का सरल उन्मेष। यदि आप भी किसी समान पथ पर हैं, तो इसे एक आश्वासन की तरह लें: प्रबोधन हमेशा गर्जना बनकर नहीं आता। कभी-कभी वह सांझ की तरह उतरता है — शांत, क्रमिक और निस्तब्धता से भरा हुआ।

और उस निस्तब्धता में, जो अनावश्यक है, वह सब धीरे-धीरे गिरने लगता है।

हाथ जोड़कर और खुले हृदय के साथ,
एक सहयात्री

क्या बुद्ध निर्विकल्प समाधि में प्रविष्ट हुए थे? — एक साधक का ईमानदार आत्मचिंतन

एक दिन मेरे भीतर स्वाभाविक रूप से एक प्रश्न उठा:
क्या गौतम बुद्ध ने बोधि वृक्ष के नीचे बैठते ही सीधे निर्विकल्प समाधि में प्रवेश किया था?
क्या उन्होंने केवल कुम्भक — अर्थात् श्वास का सहज, प्रयासरहित स्थगन — प्राप्त किया था?
क्या वे सविकल्प समाधि से होकर गुज़रे थे, जहाँ रूप और विचार अभी शेष रहते हैं, और फिर उससे परे गए?

यह केवल जिज्ञासा नहीं थी। मैंने यह प्रश्न अपनी स्वयं की जी हुई यात्रा से पूछा था। मैंने सविकल्प समाधि की एक गहन अवस्था को छुआ है — जहाँ "मैं" की अनुभूति पूरी तरह विलीन हो गई थी और केवल शुद्ध चेतना शेष रह गई थी। यह कोई कल्पना जैसा नहीं लगा। यह बिल्कुल वास्तविक लगा। आनंदमय। विस्तृत। स्थिर। फिर भी, मैं उसमें ठहर नहीं सका। शायद भय से, या इस अनुभूति के असहनीय होने के बोध से, मैंने स्वयं को सचेत रूप से वापस खींच लिया। मैंने अपने माथे की मालिश की और जानबूझकर ऊर्जा को अज्ञा चक्र तक नीचे लाया — संभवतः सांसारिक जीवन में स्थिर रहने के लिए।

मैंने अभी निर्विकल्प समाधि का अनुभव नहीं किया है — वह पूर्ण लय, जो सभी विचारों, रूपों, यहाँ तक कि आनंद से भी परे होती है। न ही मैं स्थायी रूप से केवल कुम्भक में स्थापित हुआ हूँ। पर मुझे एक झलक मिली है, और वही झलक आज भी मेरा मार्गदर्शन कर रही है। इसलिए मैं समझना चाहता था — बोधि वृक्ष के नीचे वास्तव में क्या घटित हुआ? क्या बुद्ध उसी पथ पर चले जिस पर मैं चल रहा हूँ?

जो मैंने पढ़ा है और समझा है, उसके अनुसार बुद्ध गहन ध्यान अवस्थाओं से गुज़रे थे, जो योग परंपरा में वर्णित समाधि की अवस्थाओं से बहुत मिलती-जुलती हैं। बौद्ध परंपरा में इन्हें झान कहा जाता है। ये एकाग्रता और हर्ष से आरंभ होते हैं, फिर मौन और शुद्ध जागरूकता में प्रवेश करते हैं, और आगे निराकार अवस्थाओं तक जाते हैं — जैसे अनंत आकाश, अनंत चेतना, और अंततः न संज्ञा न असंज्ञा। ये कल्पित अवस्थाएँ नहीं हैं — ये वास्तविक, जीए हुए आंतरिक अनुभव हैं।

योगिक भाषा में, ये अवस्थाएँ सविकल्प समाधि से होते हुए निर्विकल्प की ओर जाने जैसी हैं। दोनों प्रणालियों में मन स्थिर हो जाता है, अहं का विलय हो जाता है, और एक शुद्ध, अजन्मी जागरूकता शेष रहती है। कोई इसे आत्मा कहता है। और कोई, बुद्ध की तरह, उसे कोई नाम देने से ही इनकार कर देता है।

यहीं मेरे भीतर एक गहरा संशय उठा:
यदि बुद्ध ने स्थायी आत्मा या स्व का निषेध किया, तो फिर निर्वाण — जिसे उन्होंने प्राप्त किया — को स्थायी कैसे कहा जाता है?

उत्तर बुद्ध के सत्य के प्रति दृष्टिकोण में निहित है। उन्होंने परम का निषेध नहीं किया। उन्होंने केवल इस विचार का निषेध किया कि जिसे हम "मैं" या "मेरा" कहते हैं, वही परम है। उन्होंने यह नहीं कहा कि परे कुछ नहीं है — उन्होंने केवल उसे नाम देने से इंकार किया, शब्दों में बाँधने से इंकार किया। क्योंकि हर शब्द एक और विचार बन जाता, एक और आसक्ति। वे इसलिए मौन नहीं थे कि वहाँ कुछ नहीं था, बल्कि इसलिए कि जो है, वह कहा नहीं जा सकता।

उस मौन में कोई विरोध नहीं है। निर्वाण कोई ऐसी "वस्तु" नहीं है जो सदा बनी रहे। वह सभी बनने, सभी पकड़, सभी पहचान का अंत है। वह किसी नई चीज़ की उपस्थिति नहीं है — वह समस्त भ्रमों का लोप है। वह वह स्थिरता है, जब तृष्णा की हवाएँ थम जाती हैं।

तो क्या निर्वाण और निर्विकल्प समाधि एक ही हैं? नाम में शायद नहीं, पर सार में वे मिलते हुए प्रतीत होते हैं। एक पथ कहता है, "मैं वही हूँ" — कालातीत आत्मा। दूसरा कहता है, "कोई 'मैं' नहीं है" — केवल बनने का निरोध। पर दोनों में साधक विलीन हो जाता है। जो शेष रहता है, वह कोई "चीज़" नहीं होती। वह वही पृष्ठभूमि का मौन है, जो सदा से वहाँ था।

मैं जानता हूँ कि मैं उस मौन में स्थायी रूप से स्थापित नहीं हुआ हूँ। मैं अभी भी संसार का आकर्षण महसूस करता हूँ। ऊर्जा जब बहुत ऊपर जाती है, तो मैं स्वयं को स्थिर करता हूँ। संतुलन बनाए रखने के लिए मैं कुछ उपाय करता हूँ — यहाँ तक कि कुछ स्थूल उपाय भी। मेरी साधना पूर्ण नहीं है, पर गहरी हो रही है। मेरी जिज्ञासा जीवित है। और उससे भी अधिक, मेरी ईमानदारी जीवित है।

कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि किशोरावस्था में आया वह स्वप्न-अवस्था का अनुभव — जिसने उसके बाद के सभी अनुभवों से अधिक आनंद और विरक्ति दी — क्या आने वाले का एक पूर्वाभास था। या शायद वह एक उपहार था, जो मुझे यह याद दिलाने आया था कि मैं क्या खोज रहा हूँ, जिसे मैंने फिर क्षण भर के लिए तांत्रिक साधना में और अब क्रिया योग के माध्यम से छुआ है।

एक बात मैंने सीखी है: यात्रा हमेशा ऊपर की ओर नहीं होती। कभी ऊर्जा उठती है, कभी स्थिर हो जाती है। अब मैं दोनों से चिपकता नहीं हूँ। मैंने यह भी समझ लिया है कि ऊर्जा को नीचे लाना भी अपने आप में पवित्रता रखता है — अपनी बुद्धि रखता है।

इस प्रक्रिया से एक सरल चिंतन उभरा:
योगी स्थिरता में विलीन होता है और उसे आत्मा कहता है।
बुद्ध मौन में विलीन होते हैं और कुछ भी नहीं कहते।
एक कहता है, "मैं वही हूँ।"
दूसरा कहता है, "कोई 'मैं' नहीं है।"
पर दोनों उसी अचल स्थिरता में बैठे हैं — आनंद और शोक से परे, जीवन और मृत्यु से परे।

शायद यह मायने नहीं रखता कि हम उसे क्या कहते हैं। मायने यह रखता है कि हम ऐसे जिएँ जो उस मौन, उस स्वतंत्रता की ओर ले जाए। बल से नहीं, भय से नहीं, बल्कि समर्पण, जागरूकता और प्रेम के साथ।

जो लोग इसी तरह के पथ पर चल रहे हैं — झलकों और स्थिरता के बीच, गहराई और दैनिक जीवन के बीच — यह आत्मचिंतन आपके लिए है। मैंने यात्रा पूरी नहीं की है। पर मैं इसे खुली आँखों और जाग्रत हृदय के साथ चल रहा हूँ।

और दो श्वासों के बीच की उस निस्तब्धता में, मुझे कुछ विशाल-सा आभास होता है। न मेरा। न ही "मैं"। बस वही, जो तब शेष रहता है जब सब कुछ गिर जाता है।

पहलगाम नरसंहार: एक अनदेखी त्रासदी, एक खोती हुई कथा

20 अप्रैल 2025 को जम्मू-कश्मीर के सुंदर पर्यटन नगर पहलगाम में एक भीषण त्रासदी घटी, जब एक क्रूर आतंकी हमले में कम से कम 27 हिंदू पर्यटकों की जान चली गई। सामने आ रही रिपोर्टों के अनुसार, पीड़ितों की पहचान विशेष रूप से हिंदू होने के आधार पर की गई—पहचान पत्र, पहनावा और उच्चारण जैसे माध्यमों से—और उसके बाद उन्हें गोली मार दी गई। हमलावर एक स्थानीय इस्लामी आतंकी संगठन से जुड़े थे, जिनके पाकिस्तानी आतंकी समूहों से निकट संबंध बताए जाते हैं। यह एक पूर्वनियोजित और वैचारिक रूप से प्रेरित हमला प्रतीत होता है।

यह सामूहिक हत्या उस समय हुई जब अमेरिकी उपराष्ट्रपति जे.डी. वेंस भारत यात्रा पर थे—एक ऐसा क्षण जो कूटनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण था और जिसने शायद कुछ वैश्विक शक्तियों को त्वरित संज्ञान लेने पर मजबूर किया। उपराष्ट्रपति वेंस ने अमेरिका के बिना शर्त समर्थन का आश्वासन दिया, और पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने भी इसी भावना को दोहराया। रूस, चीन और कई अरब देशों ने औपचारिक संवेदनाएँ व्यक्त कीं। फिर भी, हमले के पैमाने और उसके धार्मिक स्वरूप के बावजूद, अंतरराष्ट्रीय मीडिया की प्रतिक्रिया असमान रूप से मंद रही।

मौन अंतरराष्ट्रीय कवरेज: कथात्मक पक्षपात की कहानी

सीएनएन, द न्यूयॉर्क टाइम्स और द वॉशिंगटन पोस्ट जैसे प्रमुख मीडिया संस्थानों ने इस नरसंहार को छोटे कॉलमों या साइड नोट्स तक सीमित कर दिया, और इसे मुखपृष्ठ पर स्थान देने से परहेज़ किया। कई मामलों में हिंदू पर्यटकों को धार्मिक आधार पर निशाना बनाए जाने की बात पूरी तरह नज़रअंदाज़ कर दी गई, और घटना को मात्र एक और क्षेत्रीय आतंकी हमला बताकर प्रस्तुत किया गया।

द वॉशिंगटन पोस्ट का विरोधाभास

अत्याचार को उजागर करने के बजाय, द वॉशिंगटन पोस्ट ने अपने मुखपृष्ठ पर भारतीय मूल की पत्रकार राना अय्यूब का एक ओप-एड प्रकाशित किया, जिसमें अमेरिकी यात्रा को खोखला बताया गया और भारत के प्रति अमेरिका की नीति की आलोचना की गई। उनके लेख में नरसंहार का उल्लेख तक नहीं था।

'वर्ल्ड' सेक्शन में दबी हुई एक अलग, छोटी खबर में एक कश्मीरी व्यक्ति, अब्दुल वहीद, का ज़िक्र था, जिसने साहस दिखाते हुए लोगों की जान बचाई। उनके कार्य निस्संदेह प्रशंसनीय थे, पर यह मानवीय-रुचि वाला कोण भी मूल मुद्दे—हिंदू नागरिकों की धार्मिक पहचान के आधार पर की गई सामूहिक हत्या—को और धुंधला कर देता है।

क्षेत्र से उभरती वैकल्पिक कथाएँ

पाकिस्तान में 'डॉन' अख़बार ने हमले को स्वीकार किया, पर अपने पाठकों को यह चेतावनी भी दी कि भारत ने "स्पष्ट और ज़ोरदार" प्रतिक्रिया का वादा किया है, और सावधानी बरतने की सलाह दी। उसने यह भी अनुमान लगाया कि यह हिंसा क्षेत्र में गैर-कश्मीरियों के बसने की प्रतिक्रिया हो सकती है—इस तरह परोक्ष रूप से हमले को उचित ठहराने का प्रयास किया गया।

अल जज़ीरा ने इससे भी आगे बढ़कर हमलावरों को "नया स्थानीय मुक्ति मोर्चा" कहा और यह दावा किया कि पीड़ित नागरिक नहीं, बल्कि किसी अभियान पर निकले सरकारी एजेंट थे। इसने घटना को धार्मिक रूप से प्रेरित नरसंहार के बजाय एक राजनीतिक प्रहार के रूप में प्रस्तुत किया।

ऐसी वैकल्पिक फ्रेमिंग सत्य के खतरनाक विकृतिकरण में योगदान देती है, जिसमें सामूहिक हत्या को लक्षित, वैचारिक हिंसा के बजाय राजनीतिक प्रतिरोध का कृत्य बताया जाता है।

कथात्मक युद्ध का पहला दौर भारत हारता हुआ

हमले के पैमाने और उसके प्रतीकात्मक अर्थ के बावजूद, वैश्विक कथात्मक युद्ध के पहले दौर में भारत पिछड़ता हुआ दिखाई देता है। समन्वित संचार रणनीति का अभाव, अंतरराष्ट्रीय मीडिया तक सीमित पहुँच, और सरकारी माध्यमों पर अत्यधिक निर्भरता ने विदेशी कथाओं को हावी होने दिया है।

जहाँ थिंक टैंक, एनजीओ और मानवाधिकार संगठन अन्य स्थानों की छोटी-छोटी घटनाओं पर भी विस्तृत रिपोर्टें जारी कर देते हैं, वहीं भारत की संस्थागत प्रतिक्रिया अक्सर देर से आती है या उसमें भावनात्मक और रणनीतिक कथावाचन की कमी रहती है। पहलगाम नरसंहार जैसी संकट स्थितियों में यह कमजोरी और अधिक उभरकर सामने आती है।

यह केवल आतंक नहीं था—यह धार्मिक शुद्धिकरण था

निहत्थे हिंदू पर्यटकों की उनकी धार्मिक पहचान के आधार पर की गई निर्मम हत्या को सामान्य आतंकवाद का मामला कहना सत्य से समझौता करना है। यह धार्मिक रूप से प्रेरित हिंसा है, जो जातीय शुद्धिकरण की सीमा तक जाती है। इसे इससे कम कहना सत्य के साथ विश्वासघात और पीड़ितों का अपमान होगा।

वैश्विक पर्यवेक्षकों, मीडिया संस्थानों और अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों के लिए यह आवश्यक है कि वे इसे उसके वास्तविक स्वरूप में पहचानें —एक घृणा-अपराध, एक नरसंहार, और क्षेत्र में पनप रहे वैचारिक विष का भयावह प्रतिबिंब।

कथात्मक युद्ध जीतने के सरल उपाय

अपनी कहानी पुनः स्थापित करने और वैश्विक समुदाय के सामने तथ्यों को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने के लिए भारत को कथात्मक साधनों और मंचों में निवेश करना होगा। इसके लिए कुछ व्यावहारिक उपाय निम्नलिखित हैं:

1. **वैश्विक मीडिया नेटवर्क का निर्माण**
   भारत के दृष्टिकोण को विश्वसनीय, पत्रकारिता-सम्मत स्वर में प्रस्तुत करने वाले बहुभाषी मंचों का निर्माण और प्रचार।

2. **तथ्य-आधारित सूक्ष्म सामग्री**
   अंग्रेज़ी और अन्य भाषाओं में संक्षिप्त, तथ्य-सत्यापित वीडियो, इन्फोग्राफ़िक्स और सोशल मीडिया पोस्ट साझा करना, ताकि वैश्विक इको-चैंबर्स टूटें।

3. **भारतीय प्रवासी समुदाय का उपयोग**
   एनआरआई और पीआईओ को विदेशी मीडिया, स्थानीय विधायकों और नागरिक समाज से तथ्यों और वकालत के साथ संवाद के लिए प्रोत्साहित करना।

4. **रीयल-टाइम फ़ैक्ट-चेक टीमें**
   घटनाओं के घंटों के भीतर गलत सूचना और दुष्प्रचार का खंडन करने के लिए चुस्त टीमों की स्थापना।

5. **अंतरराष्ट्रीय थिंक टैंकों से जुड़ाव**
   वैश्विक शोध संस्थानों के साथ सहयोग, ताकि रणनीतिक चर्चाओं और रिपोर्टों में भारतीय आवाज़ें मौजूद रहें।

6. **निजी ब्लॉग, लेख और सोशल मीडिया का उपयोग**
   नागरिकों, पत्रकारों और प्रभावशाली व्यक्तियों को स्वतंत्र ब्लॉग, यूट्यूब वीडियो, न्यूज़लेटर्स और एक्स (ट्विटर) के माध्यम

से सटीक विवरण साझा करने के लिए प्रेरित करना। जमीनी सामग्री अक्सर तेज़ी से फैलती है और उन दर्शकों तक पहुँचती है जहाँ मुख्यधारा का मीडिया नहीं पहुँच पाता।

अंतिम टिप्पणी:

भारत के पास सत्य की कमी नहीं है; कमी है उसे ऊँची, समन्वित और निरंतर आवाज़ में कहने की। पहलगाम नरसंहार केवल एक त्रासदी नहीं है—यह कथात्मक युद्ध में हथियार उठाने का आह्वान है। यदि हम अपनी कहानियाँ स्वयं नहीं बताएँगे, तो दूसरे उन्हें हमारे लिए बताएँगे—और वह हमेशा हमारे सत्य के साथ नहीं होंगी।

श्वास और ध्यान की शक्ति: एक व्यक्तिगत यात्रा

मैंने यह पाया है कि सबसे सरल चीज़ें, जब सजगता के साथ की जाएँ, तो हमारे पूरे अनुभव को बदलने की क्षमता रखती हैं। ऐसी ही एक साधना है योगिक श्वसन—एक अभ्यास जिसने मेरे दैनिक जीवन को उन तरीकों से रूपांतरित किया है, जिनकी मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। यह केवल साँस लेने का विषय नहीं है; यह पूरे दिन श्वास के प्रति गहरी जागरूकता विकसित करने और उसे संतुलित करना सीखने का विषय है, जिससे शांति और स्पष्टता का एक स्वाभाविक प्रवाह बनता है। यह बोध स्वयं श्वास से गहरे जुड़ाव से आरंभ हुआ—एक ऐसा जुड़ाव जिसे योगिक श्वसन सहज रूप से पोषित करता है।

मैंने देखना शुरू किया कि योगिक श्वसन साधारण साँस को पूरे दिन नियमित और स्पष्ट रूप से अनुभव करने योग्य बना देता है। जब आप उद्देश्य के साथ श्वास का अभ्यास करते हैं, तो वह ऐसी चीज़ बन जाती है जिसकी आपको हर क्षण जागरूकता रहती है—दिन भर चलने वाली एक सतत डोर की तरह। मानो वह हमेशा उपस्थित रहती है, बस किसी भी क्षण आपको केंद्र में लाने के लिए प्रतीक्षारत। श्वास की यह उपस्थिति और जागरूकता स्वाभाविक रूप से भीतर शांति और वर्तमान क्षण से जुड़ाव की अनुभूति उत्पन्न करती है, चाहे आसपास कितने ही व्यवधान क्यों न हों।

एक बात जो मैंने अनुभव की है, वह यह कि जैसे-जैसे मैं अपनी श्वास के प्रति अधिक संवेदनशील होता जाता हूँ, जीवन की हर चीज़ शांत होती चली जाती है। यह केवल क्षणिक शांति नहीं, बल्कि एक गहरी और टिकाऊ शांति है। ऐसा लगता है जैसे श्वास के प्रति सजग रहने का नियमित अभ्यास मेरी बुद्धि और विवेक को आकार दे रहा हो, जिससे मैं हर चीज़ को अधिक स्पष्टता के साथ देखने लगा हूँ। जितना अधिक मैं जागरूकता के साथ श्वास लेता हूँ, उतना ही मेरे विचार स्पष्ट होते जाते हैं और भावनाएँ संतुलित होने लगती हैं। यह परिवर्तन विशेष रूप से मेरे संबंधों में दिखाई देता है, जहाँ अब एक प्रकार की समझ है और किसी के प्रति शत्रुता का भाव नहीं रह गया है, चाहे अतीत में कुछ भी घटित हुआ हो। मैंने बुरे अनुभवों को पकड़े रखने के बजाय उन्हें छोड़ देना सीख लिया है, उन्हें धीरे-धीरे पृष्ठभूमि में विलीन होने देना।

इसका यह अर्थ नहीं कि सब कुछ पूर्ण हो गया है। ऐसे क्षण अभी भी आते हैं जब वह शांति धुंधली पड़ जाती है और उस स्पष्टता को बनाए रखना कठिन हो जाता है। मैंने देखा है कि यदि मैं नियमित रूप से अभ्यास के लिए समय नहीं देता, तो श्वसन-साधना के बाद मिलने वाली शांति धीरे-धीरे कम हो जाती है। इसका समाधान मुझे दैनिक क्रिया श्वसन के अभ्यास में मिला—एक ऐसी तकनीक जो उस आंतरिक शांति को अधिक समय तक स्थिर रखने के लिए पर्याप्त बल और एकाग्रता प्रदान करती है। इसके बिना प्रभाव अस्थायी रहते हैं। लेकिन जब मैं नियमित रूप से, विशेषकर गहन प्रतिबद्धता के साथ अभ्यास करता हूँ, तो उसके प्रभाव केवल कुछ घंटों तक ही नहीं, बल्कि पूरे दिन बने रहते हैं।

मैंने यह भी देखा है कि मेरे लिए मेरुदण्डीय श्वसन विशेष रूप से प्रभावी है, खासकर तब जब मेरी नींद 3–4 बजे भोर में खुल जाती है। यह समय पवित्र-सा लगता है, मानो बाहरी संसार शांत हो और भीतर की ऊर्जा अधिक सुलभ हो। जब मैं इस समय मेरुदण्डीय श्वसन करता हूँ, तो कुछ श्वासों के बाद सिर में दबाव-सा महसूस होने लगता है—संभवतः सुषुम्ना नाड़ी से ऊर्जा के ऊपर उठने के कारण। यह एक परिचित अनुभूति है, जो संकेत देती है कि भीतर कुछ परिवर्तित हो रहा है। कुछ समय बाद मैं मानसिक रूप से *सोहम* का जप करते हुए फिर सो जाता हूँ, और जब जागता हूँ तो सिर का दबाव कम हो चुका होता है, पर श्वसन अभ्यास का प्रभाव बना रहता है—दिन भर साथ चलने वाली हल्केपन, स्पष्टता और शांति की अनुभूति के रूप में। मानो ऊर्जा गहराई से भीतर स्थापित हो गई हो, और सक्रिय ध्यान के बिना भी उसका असर जारी रहता हो।

यह टिकाऊ प्रभाव—जहाँ शांत और स्थिर अनुभूति बनी रहती है—इस अभ्यास का शायद सबसे गहन पहलू है। जब मैं इसके बारे में सचेत रूप से नहीं भी सोच रहा होता, तब भी दिन भर शांति और स्पष्टता की एक सूक्ष्म धारा भीतर बहती रहती है। ऐसा लगता है जैसे हर अभ्यास के साथ मेरा पूरा ऊर्जा-क्षेत्र पुनर्संतुलित हो जाता हो। यह विशेष रूप से इस बात में दिखाई देता है कि मैं कार्यों से

कैसे निपटता हूँ। जो चीज़ें पहले तनाव या झुँझलाहट पैदा करती थीं, वे अब हल्की लगती हैं, और मैं उन्हें अधिक सहजता से पूरा कर पाता हूँ।

फिर भी, मैं अभी यात्रा में ही हूँ। मैंने वह सब कुछ प्राप्त नहीं किया है जिसकी मैं कल्पना करता हूँ। निर्विकल्प समाधि अभी दूर प्रतीत होती है, और वह अचल आनंद की अवस्था जिसमें मैंने कभी क्षणिक झलक पाई थी, अभी स्थायी नहीं हुई है। पर मैंने पर्याप्त झलकें देखी हैं, जिससे उसकी संभावना की सच्चाई जान सका हूँ। क्रिया योग जैसी साधनाएँ मुझे निरंतर आकार दे रही हैं—जीवन और आध्यात्मिक विकास, दोनों के प्रति मेरे दृष्टिकोण को परिष्कृत कर रही हैं।

हर दिन मैं उस अवस्था के और निकट जाता हुआ महसूस करता हूँ जिसकी ओर मेरा मन उन्मुख है, और मैं इस अभ्यास को किसी लक्ष्य की तरह नहीं, बल्कि एक सतत प्रक्रिया के रूप में जीवन में समाहित करना सीख रहा हूँ। यह किसी अंतिम मंज़िल तक पहुँचने की बात नहीं है, बल्कि इस ऊर्जा और शांति को हर क्षण में उतरने देने की बात है। जितना अधिक मैं अभ्यास करता हूँ, उतना ही अपने और संसार के साथ अपने संबंध में परिवर्तन अनुभव करता हूँ। श्वास, जो पहले एक अचेतन प्रक्रिया थी, अब रूपांतरण का एक साधन बन गई है—आध्यात्मिक, मानसिक और भावनात्मक स्तर पर।

मेरा विश्वास है कि कोई भी इस रूपांतरण का अनुभव कर सकता है, चाहे वह अपनी यात्रा में कहीं भी हो। योगिक श्वसन का अभ्यास, विशेषकर जब उसे मेरुदण्डीय श्वसन और क्रिया योग के साथ जोड़ा जाए, गहरी जागरूकता और आंतरिक शांति का द्वार खोलता है। और यदि आप अभी शुरुआत ही कर रहे हैं, तो आरंभ करने के लिए किसी आदर्श क्षण की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है। हर श्वास वर्तमान के साथ संरेखित होने और जो अब उपयोगी नहीं रहा उसे छोड़ने का अवसर है। और उसी के साथ संसार थोड़ा उजला हो जाता है, और हम स्वयं कुछ हल्के हो जाते हैं।

अंततः, बात किसी पूर्ण अवस्था को प्राप्त करने की नहीं है, बल्कि जीवन के प्रवाह में अधिक पूर्ण रूप से उपस्थित होने की है—शांति को भीतर लेते हुए, स्पष्टता को बाहर छोड़ते हुए, और श्वास की लय को हर दिन हमें आगे लिए जाने देने की। मेरे लिए, यह यात्रा अभी बस आरंभ ही हुई है।

पद्मासन और ऊर्जा के आरोहण का सूक्ष्म पथ: एक हृदयस्पर्शी अनुभूति

हाल ही में मेरी साधना में कुछ बहुत ही सूक्ष्म, पर शक्तिशाली घटित हुआ—इतना स्वाभाविक कि ऐसा लगा मानो यह सदा से मेरी प्रतीक्षा में था।

पद्मासन, अर्थात कमल आसन में बैठते ही मैंने देखा कि मेरी पीठ इतनी सीधी और संतुलित हो जाती है कि ऊर्जा अपने आप ही आनंदपूर्वक ऊपर उठने लगती है। कुछ करने की आवश्यकता नहीं रहती। बस स्थिर बैठना—शरीर भीतर की ओर मुड़ा हुआ, रीढ़ सीधी—और भीतर एक स्पष्ट, कोमल उभार महसूस होने लगता है: सौम्य, आनंदमय और गहरे शांतिपूर्ण।

यह अनुभव अद्भुत था।

लेकिन शीघ्र ही एक और बात सामने आई।

कुछ ही मिनटों बाद पैरों में—विशेषकर घुटनों में, और मुख्यतः दाएँ घुटने में—दर्द होने लगता है, और यह दर्द ध्यान को नीचे की ओर खींच लेता है। कुछ लोग घुटनों के नीचे नरम तकिया रखने या उसे कूल्हों के नीचे रखने की सलाह देते हैं, जिससे घुटनों का दर्द कम होता है। यह कुछ हद तक कारगर भी लगा। फिर भी, शरीर का यह प्रतिरोध रीढ़ में उठ रही उस शांत आनंदधारा को धीरे से बाधित कर देता है। बावजूद इसके, दर्द शुरू होने से पहले के वे कुछ मिनट पद्मासन की एक छिपी हुई गरिमा को प्रकट कर देते हैं। सचमुच, यह एक आश्चर्य है।

जब असहजता बहुत अधिक ध्यान भंग करने लगती है, तो मैं साधारण स्क्वाट या सिद्धासन में चला जाता हूँ। इससे बिना अधिक तनाव के ऊर्जा फिर से स्थिर हो जाती है। भले ही ऊर्जा उतनी प्रबलता से न उठे, मन भीतर ही बना रहता है। यह अनुकूलन—मुझे लगता है—यात्रा का ही एक हिस्सा है।

मैंने एक प्रकार का मानसिक पद्मासन भी आज़माया—अर्थात वास्तव में बैठे बिना, स्वयं को उस मुद्रा में कल्पना करना—पर उससे वही प्रभाव उत्पन्न नहीं होता। शरीर की वास्तविक मुद्रा में कोई ऐसी सूक्ष्मता प्रतीत होती है, जिसे केवल मन पूरी तरह से अनुकरण नहीं कर पाता।

दिलचस्प बात यह है कि प्रातःकाल में मैं पद्मासन में अधिक देर और अधिक सहजता से बैठ पाता हूँ। शायद तब शरीर हल्का होता है, या मन कम व्यस्त रहता है। कारण जो भी हो, उस समय साधना स्वाभाविक रूप से गहराती चली जाती है।

मेरुदण्डीय श्वसन, उल्टा श्वसन और क्रिया श्वसन जैसी श्वास-साधनाएँ पद्मासन में विशेष रूप से सहजता से प्रवाहित होती हैं। शारीरिक संरेखण उन्हें बिना प्रयास के अधिक गहराई और लय के साथ स्थिर कर देता है। श्वास धीमी हो जाती है। जागरूकता स्थिर होने लगती है।

एक और बात मेरी चेतना में आई: पद्मासन में स्वाधिष्ठान चक्र का पश्च भाग—अर्थात त्रिकास्थि के पीछे का क्षेत्र—अधिक स्पष्ट और ध्यान देने योग्य हो जाता है। अन्य आसनों में यह अनुभूति इतनी स्पष्ट नहीं होती। मानो वहाँ कोई शांत दर्पण खुल जाता हो—एक ऐसा स्थान जो जागरूकता के प्रति तुरंत प्रतिक्रिया देता है।

और फिर, कुछ बहुत शांत ढंग से स्वयं को प्रकट करता हुआ दिखा: पद्मासन में कुछ मिनटों तक आनंदपूर्वक ऊर्जा के उठने के बाद, यदि मैं बाद में साधारण स्क्वाट में भी बैठ जाऊँ, तो भी वह प्रक्रिया जारी रहती है। श्वास स्थिर रहती है। ध्यान भीतर बना रहता है। ऊर्जा लुप्त नहीं होती—वह कोमलता से बहती रहती है। मानो पद्मासन ने एक दीपक जला दिया हो, और फिर मुझे बस उसके प्रकाश के पास बैठना हो।

इस अनुभव ने मुझे सोचने पर विवश किया: पद्मासन ऊर्जा के आरोहण को इतनी अच्छी तरह क्यों सहारा देता है?

कुछ शांत चिंतन उभरे:

• यह आसन स्वाभाविक रूप से रीढ़ को ऊपर उठाता है और आधार को खोलता है; बिना बल के एक संरेखण बन जाता है।
• श्रोणि कोमलता से स्थिर हो जाती है, नीचे की ओर होने वाले अपसरण को सील करती है और ऊपर की ओर प्रवाह को प्रोत्साहित करती है।
• मुड़े हुए पैर एक सुदृढ़ आधार बनाते हैं, जिससे शरीर स्थिर और मन अंतर्मुखी रहता है।
• भार का उचित वितरण होता है, जिससे शारीरिक विक्षेपों के बिना मेरुदण्डीय प्रवाह ऊपर उठ पाता है।
• यहाँ तक कि श्वास भी लगभग अपने आप लय में आ जाती है। मन प्रयास से नहीं, बल्कि आसन के प्रोत्साहन से भीतर की ओर मुड़ जाता है।

फिर भी, मैं जानता हूँ कि मैं किसी अंतिम लक्ष्य तक नहीं पहुँचा हूँ। न ही किसी अंतिम आनंद या प्रबोधन की अवस्था को पार किया है। जो मैंने अनुभव किया है, वह एक सूक्ष्म परिवर्तन है—एक शांत उद्घाटन—किसी ऐसी संभावना का संकेत, जो दैनिक शोर के पीछे प्रतीक्षारत है, विशेषकर पद्मासन में।

ऊर्जा का आरोहण नाटकीय नहीं है, पर वास्तविक है। उसमें जीवन है, और वह मौन में सिखाता है।

ये उपलब्धियाँ नहीं हैं। ये संकेत हैं, फुसफुसाहटें हैं, आरंभ हैं।

मैं अपनी साधना जारी रखता हूँ—अन्वेषण करते हुए, अनुकूलन करते हुए, अवलोकन करते हुए—उसी जिज्ञासा के साथ जिसने मुझे यहाँ तक पहुँचाया।

और भले ही आसन पद्मासन से स्क्वाट या सिद्धासन में बदल जाए, अब कुछ बना रहता है।

एक कोमलता। एक शांत ऊर्जा। और यह स्मरण कि जब शरीर, श्वास और ध्यान सरलता में मिलते हैं, तो क्या-क्या संभव हो सकता है।

केवल कुम्भक, शून्य और वास्तविक योग का रहस्य: भीतर की एक यात्रा

मेरे भीतर कुछ शांत किंतु गहराता हुआ विकसित हो रहा है—
एक ऐसा बोध, जो सिद्धांत पर नहीं, बल्कि मौन ध्यान में जीवन द्वारा स्वयं प्रकट किए गए अनुभव पर आधारित है।

गहन साधना के दौरान मैंने कुछ असाधारण देखा:
केवल कुम्भक में—जब श्वास बिना किसी प्रयास के स्वाभाविक रूप से रुक जाती है—शून्य का अनुभव इतना आत्मीय हो जाता है कि वह मुझसे अलग नहीं लगता।
वह अब कोई "बाहर" की वस्तु नहीं रहती जिसे देखा जाए; शून्य स्वयं अस्तित्व के केंद्र जैसा अनुभव होने लगता है।

ध्यान, ध्याता और ध्यान का विषय—
सब एक अखंड अस्तित्व में विलीन हो जाते हैं।

तब यह स्पष्ट हुआ:
यही निर्विकल्प समाधि है—
विचार से परे, विभाजन से परे की अवस्था, जहाँ केवल शुद्ध अस्तित्व प्रकाशित होता है।

जैसे-जैसे यह समझ गहरी हुई, एक और सूक्ष्म परत खुली:
हाँ, पर प्रकाशमानता भी एक रूप है।
निराकार शून्य में भी एक सूक्ष्म प्रकाश, एक जीवित उपस्थिति होती है—जो "शून्यता" नहीं, बल्कि दीप्त, निराकार चेतना है।

आकार रहित होते हुए भी वहाँ एक कोमल, सौम्य प्रकाशमानता होती है—
जो संकेत देती है कि गहनतम मौन में भी उपस्थिति का कोई सूक्ष्म चिह्न शेष रहता है।

पर यह प्रकाशमानता सविकल्प समाधि में या कुंडलिनी जागरण के समय अनुभव होने वाले प्रकाश जैसी नहीं होती। यह अंतर मुझे भीतर तक छू गया।

शक्तिशाली कुंडलिनी जागरण के क्षणों में—
जब ध्यान के विषय के साथ तादात्म्य इतना पूर्ण हो जाता है कि सभी सीमाएँ विलीन हो जाती हैं—
ऐसा लगता है मानो सब कुछ प्राप्त हो गया हो।
आनंद, विस्मय, तेज—सब अत्यधिक परिपूर्णता के साथ आते हैं।
यहाँ का प्रकाश सजीव, उन्मादपूर्ण और दिव्य अभिव्यक्ति से भरा होता है।
कभी-कभी विस्तार का, यहाँ तक कि ब्रह्मांड के साथ प्रेममय एकत्व का अनुभव होता है।
यह प्रकाश पूर्ण लगता है—और फिर भी, वह शून्य नहीं है।

क्योंकि यहाँ भी कुछ गति शेष रहती है:
अनुभव का भाव,
किसी के किसी में विलीन होने की सूक्ष्म छाया,
एक दीप्त शक्ति—शक्ति—अब भी क्रियाशील।

पर निर्विकल्प का शून्य एक बिल्कुल भिन्न कोटि का है।

वह तत्वतः शिव है—
अचल, अपरिवर्तनीय, सामान्य अर्थों में आनंदमय भी नहीं,
यहाँ तक कि वैसा प्रकाश भी नहीं जैसा हम जानते हैं।

वह एक अंधकार-मिश्रित प्रकाशमानता जैसा है—
एक विरोधाभासी दीप्ति, जो बाहर नहीं चमकती,
बल्कि स्वयं में शांत रूप से स्थित रहती है।

वहाँ न अनुभवकर्ता है।
न कोई विषय।
यहाँ तक कि "प्राप्ति" का भाव भी नहीं।

बस अस्तित्व—विशाल और मौन।

यह शून्य न तो नीरस अंधकार है, न उज्ज्वल प्रकाश।
यह एक दीप्त अनुपस्थिति है—
एक ऐसा आकाश जो जीवन से भी अधिक जीवंत,
विचार से भी अधिक वास्तविक,
और श्वास से भी अधिक आत्मीय प्रतीत होता है।

एक और बोध सहज ही उभरा:
हम इस शून्य को पहले से ही सतही स्तर पर जानते हैं।
वह कुछ दूर, अलग-सा लगता है।

पर वास्तविक जानना उसे दूर से पहचानना नहीं है—
वह तभी घटित होता है जब उसमें पूर्णतः विलय हो जाएँ।

यह जानने या न जानने का प्रश्न नहीं है—
यह उस विलय की गहराई का प्रश्न है जो सब कुछ रूपांतरित कर देती है।

इसी बिंदु पर एक शांत, पर दृढ़ समझ स्थिर हो गई:
यह पूर्ण विलय केवल कुम्भक के बिना संभव नहीं लगता।

जब तक श्वास चलती रहती है,
मन की कोई न कोई सूक्ष्म गति बनी रहती है।

केवल तब, जब श्वास स्वाभाविक रूप से रुकती है,
मन पूर्णतः निस्तब्ध होता है—
और शुद्ध अस्तित्व बिना किसी व्यवधान के स्वयं को प्रकट करता है।

इसी प्रकाश में पतंजलि के प्राचीन शब्द नए अर्थ के साथ जीवंत हो उठे:
"योगश्चित्तवृत्ति निरोधः" —
योग चित्तवृत्तियों का निरोध है।

तब यह स्पष्ट हो गया:
यह निरोध—यह वास्तविक निरोध—
केवल कुम्भक के साथ ही संभव है।

श्वास और मन एक ही पक्षी के दो पंखों की तरह हैं।
एक हिलता है, तो दूसरा हिलता है।
एक विश्राम करता है, तो दूसरा भी विश्राम करता है।

जब दोनों निस्तब्ध होते हैं,
स्व का प्रकाश सहज रूप से प्रकाशित होता है।

मार्ग सरल और स्पष्ट हो गया:
केवल कुम्भक स्वाभाविक निरोध की ओर ले जाता है,
जो निर्विकल्प समाधि में विलीन हो जाता है,
जहाँ केवल दीप्त शून्य शेष रहता है।

यात्रा जारी है—
कभी शून्य निकट लगता है, कभी थोड़ा आच्छादित—
पर दिशा अब निश्चित है।

यह अधिक तकनीकें इकट्ठा करने की बात नहीं है,
न ही अनुभवों का संग्रह करने की।

यह इतनी पूर्ण मुक्ति की बात है
कि श्वास तक समर्पित हो जाए,
और केवल शुद्धतम जागरूकता शेष रह जाए।

कुछ और चिंतन स्वाभाविक रूप से उभरे:

गहन मौन में यह स्पष्ट हुआ कि श्वास और मन को अविभाज्य जुड़वाँ क्यों कहा गया है।
एक चलता है, तो दूसरा चलता है।
एक ठहरता है, तो दूसरा ठहरता है।

केवल कुम्भक के बिना,
निस्तब्ध मन में भी एक क्षीण तरंग शेष रहती है—
जैसे हल्की हवा से स्पर्शित दर्पण का लगभग अदृश्य कंपन।

केवल कुम्भक के साथ ही दर्पण पूर्णतः स्थिर होता है,
और शाश्वत स्व का प्रतिबिंब स्पष्ट होता है।

इससे प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का अर्थ भी नए रूप में जीवंत हो उठा—
ये सब किसी सीढ़ी के चरण नहीं,
बल्कि उस सहज निस्तब्धता से स्वाभाविक रूप से खिलते हुए पुष्प हैं,
जो तब प्रकट होते हैं जब जड़ें गहरे मौन में उतर जाती हैं।

सरल शब्दों में:
वास्तविक आध्यात्मिक यात्रा अधिक करने की नहीं,
बल्कि सब कुछ खोल देने की है—
यहाँ तक कि श्वास, मन और पृथकता की अनुभूति भी
शुद्ध अस्तित्व में विलीन हो जाए।

दीप्त शून्य हमारे भीतर धैर्य से प्रतीक्षा कर रहा है—
न अलग, न दूर—
पर उससे परे के समर्पण की माँग करता है,
शब्दों से परे के पूर्ण विलय की।

इस पथ पर चलना किसी उपलब्धि जैसा नहीं लगता,
बल्कि किसी प्राचीन स्मृति को पुनः स्मरण करने जैसा है—
कुछ ऐसा जो सदा से जाना हुआ था,
पर अब एक नई निष्कपटता के साथ चखा जा रहा है।

और संभवतः, यही वह रूप है
जिसमें वास्तविक योग को सदा से होना था।

अग्नि से शून्य तक: भीतर के अनंत की एक झलक

कुंडलिनी जागरण की एक झलक के दौरान कुछ असाधारण घटित हुआ। मुझे लगा कि मैं अपने ध्यान के विषय के साथ एक हो गया हूँ। कोई अलगाव नहीं था—यह केवल संयोग नहीं था; ऐसा प्रतीत हुआ मानो मैं स्वयं ही ध्यान-चित्र में रूपांतरित हो गया हूँ। उस क्षण कर्ता और कर्म, विषय और वस्तु का भेद विलीन हो गया। जो शेष रहा, वह परम आनंद और शुद्ध चेतना की अवस्था थी। यह कल्पित नहीं था। यह आरोपित नहीं था। यह तात्कालिक, पूर्ण और सजीव था।

सहज रूप से मैंने इस अनुभव को अज्ञा चक्र तक नीचे लाया। उस समय मैंने इसका विश्लेषण नहीं किया, पर अब मुझे लगता है कि यह उसे किसी साझा करने योग्य रूप में लाने का प्रयास था। शायद संसार के साथ इस रहस्य को व्यक्त करने की एक गहरी प्रेरणा थी। यदि मैंने ऐसा न किया होता, तो मुझे लगता है कि सूक्ष्म ऊर्जात्मक विचारों से थका हुआ मन अंततः स्वयं ही लुप्त हो गया होता। तब वही आनंद बना रहता, पर एक पूर्णतः निराकार, अनुभवातीत ढंग से। वही निर्विकल्प समाधि होती—शून्य-सदृश, बीजरहित शुद्ध जागरूकता की अवस्था।

पर यहाँ एक सूक्ष्म अंतर्दृष्टि है: उस निराकार अवस्था में व्यक्ति इतना अंतर्मुखी, इतना मौन हो जाता है कि सत्य का संप्रेषण लगभग असंभव हो जाता है। उस विशाल निस्तब्धता में शब्द दम तोड़ देते हैं। संभवतः उसे थोड़ा नीचे उतारकर मैं उस क्षेत्र में बना रहा जहाँ भाषा अभी भी कार्य करती है—जहाँ रूप आभासी होते हुए भी और स्वयं से अभिन्न होते हुए भी, किसी न किसी रूप में संबद्ध किए जा सकते हैं।

इससे मुझे चिंतन हुआ: पूर्ण तादात्म्य—जिसे प्रायः निर्विकल्प समाधि के लिए सुरक्षित शब्द माना जाता है—वह उस तादात्म्य से बहुत भिन्न प्रतीत होता है, जिसे सामान्यतः सविकल्प समाधि में 'संयोग' कहा जाता है। सविकल्प में रूप प्रकट होते हैं, पर वे आभासी होते हैं, शून्य-स्व से अभिन्न। वहाँ अभी भी एक विषय रहता है, द्वैत की एक अत्यंत सूक्ष्म छाया रहती है—पर अलगाव के रूप में नहीं। वही सूक्ष्म छाया इसे निर्विकल्प से अलग करती है, जहाँ कोई तरंग भी शेष नहीं रहती।

तब मेरे मन में प्रश्न उठा—यह प्रत्यक्ष शून्य, यह निर्विकल्प, कोई आसान शॉर्टकट क्यों नहीं है? यात्रा प्रायः पहले सविकल्प से होकर ही क्यों गुजरती है?

उत्तर धीरे-धीरे उभरा। सविकल्प समाधि संभवतः महान परिशोधक है। यह संसार की वासनाओं को कोमल बनाती है, घोल देती है। यह सूक्ष्म संदर्भ को बनाए रखते हुए मन को सूक्ष्म कोलाहल से खाली करती है। यह उस पुल की तरह है जो स्वयं जल जाता है—और आपको अंतिम निराकार छलाँग के लिए तैयार करता है।

और फिर भी, कुछ प्राचीन विधियाँ—जैसे केवल कुम्भक—इस बात की ओर संकेत करती हैं कि यह छलाँग अचानक भी हो सकती है। श्वास के गहन स्थगन में, जब भीतर की गतियाँ थम जाती हैं, निराकार अवस्था प्रकट हो सकती है। न कोई चित्र, न कोई मंत्र, न कोई विचार—केवल उपस्थिति। तो हाँ, निर्विकल्प अचानक भी आ सकता है। पर ऐसी आकस्मिकता प्रायः गहरे परिपाक के बाद ही आती है।

यहीं से मेरा ध्यान पतंजलि की ओर लौटा। योगसूत्रों में वे प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और अंततः समाधि की बात करते हैं। मैंने सोचा: क्या ये सविकल्प की ओर संकेत करते हैं या निर्विकल्प की ओर?

धीरे-धीरे स्पष्ट हुआ। पतंजलि के चरण साधक को प्रारंभ में सविकल्प समाधि की ओर ले जाते हैं—विशेषकर सबीज समाधि की अवस्थाओं की ओर, जहाँ ध्यान का कोई न कोई आधार शेष रहता है। ये अवस्थाएँ हैं:

- सवितर्क (स्थूल विचारों के साथ)
- सविचार (सूक्ष्म अवधारणाओं के साथ)

• सानंद (आनंद के साथ)
• सस्मिता (शुद्ध 'मैं हूँ' की अनुभूति के साथ)

हर चरण अधिकाधिक घुलता जाता है, पर सभी में एक बीज—एक संदर्भ—शेष रहता है।

फिर अंतिम सूत्रों में पतंजलि निर्बीज समाधि की ओर संकेत करते हैं—बीजरहित, आधाररहित, निराकार। यही वह अवस्था है जिसे वेदांत और अद्वैत परंपराएँ निर्विकल्प समाधि कहती हैं। यह किसी बलपूर्वक प्रयास से प्राप्त नहीं होती। यह तब घटित होती है जब सबसे सूक्ष्म प्रयास भी लुप्त हो जाता है।

उस अवस्था में न प्राणायाम होता है, फिर भी श्वास स्थगित रहती है (केवल)। न धारणा होती है, फिर भी कुछ भी विचलित नहीं करता। न ध्यान होता है, फिर भी अखंड अस्तित्व बना रहता है। न किसी समाधि में प्रवेश करना होता है, क्योंकि वही है। सभी आधार विलीन हो चुके होते हैं।

मुझे समझ आया: इन चरणों को छोड़ा नहीं जाता—इन्हें अतिक्रमित किया जाता है। निराकार के आगमन के साथ वे स्वाभाविक रूप से पिघल जाते हैं।

पर सबसे गहन स्पष्टता तो पतंजलि के ग्रंथ की शुरुआत से ही आई:
"योगश्चित्तवृत्ति निरोधः" — योग चित्तवृत्तियों का निरोध है।

यह किसी ध्यान-वस्तु तक पहुँचने की बात नहीं है। यह संयोग की भी बात नहीं है। यह निरोध की बात है—पूर्ण निस्तब्धता की। यह सविकल्प नहीं है। यह निर्विकल्प है।

योग का वास्तविक लक्ष्य, उसका सच्चा गंतव्य, किसी मध्य अवस्था में नहीं है—वह उस परम स्थिरता में है जहाँ द्रष्टा अपने स्वरूप में स्थित होता है।

"तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्" — तब द्रष्टा अपने स्वरूप में अवस्थित होता है।

सविकल्प समाधि अपना कार्य करती है। वह परिष्कृत करती है, शुद्ध करती है, तैयारी करती है। वह आनंदमय तादात्म्य का स्वाद देती है। पर अंततः वह भी विलीन हो जाती है। केवल मौन शेष रहता है।

यह मौन रिक्त नहीं है। यह कुछ भी नहीं नहीं है। यह सब कुछ है—बिना विषयवस्तु के। यह नीरस नहीं है। यह अत्यंत जीवंत है, पर निराकार है। और जब यह स्थिर होता है, तो कभी-कभी सहज अवस्था के रूप में लौट आता है—जहाँ क्रिया भी उस आंतरिक निस्तब्धता को तोड़े बिना घटित होती है।

मैं उस अंतिम अवस्था तक नहीं पहुँचा हूँ—अभी नहीं। पर झलकें और अंतर्दृष्टियाँ निरंतर खुलती जा रही हैं। जितना अधिक मैं नियंत्रण छोड़ता हूँ, उतना ही सत्य स्वयं को प्रकट करता है—ज्ञान के रूप में नहीं, बल्कि अस्तित्व के रूप में।

अब मैं देख पा रहा हूँ: इसे साझा करने की यह प्रेरणा, यह लेखन भी, शायद उसी दिव्य लीला का हिस्सा है—जहाँ स्व स्वयं को खोजने वाले के माध्यम से अपनी ही कथा कहने के लिए लौट आता है।

सविकल्प समाधि की यात्रा: आत्मबोध की एक गहन झलक

आत्म-अन्वेषण के अपने पथ पर मैंने उस अनुभव को जिया, जिसे सविकल्प समाधि की एक झलक कहा जा सकता है—एक ऐसी गहरी ध्यान-अवस्था, जिसमें साधक अपने ध्यान-विषय के साथ एकत्व का अनुभव करता है, आनंद से परिपूर्ण होता है, पर आत्म-बोध और रूप का एक सूक्ष्म भाव अभी शेष रहता है। यह झलक एक महत्वपूर्ण जागरण के दौरान आई—ऐसा जागरण, जिसमें आत्मबोध की गहनता अनुभव हुई, किंतु अंतिम निराकार अवस्था में पूर्ण विलय नहीं हुआ। जब मैं इस अनुभव पर मनन करता हूँ, तो सविकल्प समाधि के चरण एक स्वाभाविक क्रम में खुलते हुए प्रतीत होते हैं—रेखीय नहीं, बल्कि अंतःप्रेरित और गहराते हुए।

---

1. यात्रा का आरंभ: सवितर्क समाधि

प्रारंभिक चरणों में, जब मैंने ध्यान का अभ्यास किया, तो मैंने एक ठोस छवि का सहारा लिया—अपने गुरु की छवि का। इस अवस्था में मन प्रयास से भरा हुआ था; मैं छवि के रूप और उसके अर्थ पर चिंतन करता था। आनंद स्पष्ट था, पर यह किसी बड़े प्रवाह की शुरुआत मात्र थी। मन अभी भी कर्ता–कर्म, विषय–वस्तु के द्वैत में दृढ़ था—मैं गुरु की छवि पर ध्यान कर रहा था। यह अवस्था सवितर्क समाधि का प्रतिनिधित्व करती है, जहाँ स्थूल विचार और रूप उपस्थित रहते हैं। आनंद होते हुए भी, यह आगे आने वाले अनुभवों की केवल एक झलक थी।

---

2. सूक्ष्म प्रगति: सविचार समाधि

अभ्यास के साथ मानसिक कोलाहल शांत होने लगा और मैं अधिक सूक्ष्मता में उतरता गया। गुरु की छवि अधिक दीप्त होने लगी और उसके साथ मेरा संबंध गहरा हुआ। मैं उसके भौतिक रूप से परे उसके सार को अनुभव करने लगा। विशेषकर अपनी तांत्रिक साधनाओं के माध्यम से ऊर्जा का जागरण होने लगा। मुझे यह बोध हुआ कि मेरा ध्यान अब केवल गुरु-छवि को देखने तक सीमित नहीं रहा; वह उसकी ऊर्जा और उपस्थिति को अनुभव करने लगा है।

इसे थोड़ा स्पष्ट करूँ। प्रारंभ में, ध्यान करते समय मेरा मन गुरु की छवि पर केंद्रित रहता था—मानो मन में किसी तस्वीर को देखकर उस पर एकाग्र होना। पर बाद में कुछ गहरा घटित हुआ। केवल छवि देखने के स्थान पर, मैं गुरु की ऊर्जा—या गुरु-रूप की ऊर्जा—अपने भीतर अनुभव करने लगा। वह जीवंत लगी—जैसे गुरु की उपस्थिति अब बाहर या चित्र में नहीं, बल्कि मेरे भीतर, एक मौन शक्ति या ऊष्मा के रूप में स्थित हो।

यह परिवर्तन दर्शाता है कि मेरा ध्यान गहराता जा रहा था। बाह्य रूप से अंतःसार की ओर गति हुई—कुछ वास्तविक, पर अदृश्य। यह गहन आध्यात्मिक अभ्यास का स्वाभाविक चरण है, जहाँ बाह्य प्रतीक मद्धम पड़ जाते हैं और केवल आंतरिक सत्य शेष रहता है। विषय और वस्तु की सीमाएँ धुंधली हो गईं, फिर भी पूरी तरह विलीन नहीं हुईं। यह सविचार समाधि का चरण था, जहाँ सूक्ष्म विचार और संस्कार प्रमुख हो जाते हैं। यह गहन सामीप्य का चरण था, पर द्वैत अभी भी शेष था। सवितर्क समाधि को धारणा और सविचार समाधि को ध्यान भी कहा जा सकता है।

---

3. आनंदमय अवस्था: सानंद समाधि

जैसे-जैसे साधना आगे बढ़ी, ध्यान का केंद्र रूप से उपस्थिति की ओर खिसक गया। सूक्ष्म उपस्थिति पर गहन एकाग्रता से जो आनंद उत्पन्न हुआ, वह और तीव्र हो गया। जो ऊर्जा पहले केवल अनुभूत होती थी, वह अब अनुभव में एकीकृत होने लगी। यह अवस्था सानंद समाधि से मेल खाती है, जहाँ मन शांत होता है और आनंद का प्रवाह प्रकट होता है।

फिर भी, आनंद के प्रवाह के बीच द्वैत की एक सूक्ष्म जागरूकता बनी रही। मैं जानता था कि मैं आनंद का अनुभव कर रहा हूँ—अर्थात पूर्ण आत्मबोध अभी नहीं घटित हुआ था। आनंद तीव्र था, पर क्षणिक भी। इस चरण में मुझे ऐसा लगा मानो मैं अस्तित्व के आनंद में घुल रहा हूँ। वस्तुतः यह सविचार समाधि या ध्यान का और गहन होना था—कुछ और नहीं। वही सूक्ष्म आंतरिक ध्यान-चित्र जितना अधिक दीप्त और सघन होता गया, उतना ही अधिक आनंद उत्पन्न हुआ।

इसे और स्पष्ट करूँ—

रूप का अनुभव (बाह्य आधार):
ध्यान के प्रारंभिक चरणों में मन को स्थिर रखने के लिए किसी बाह्य वस्तु—जैसे गुरु की भौतिक छवि या कोई प्रतीक—का सहारा लिया जाता है। यह वस्तु मन को एक बिंदु पर टिकाने का साधन होती है। इस चरण में साधक रूप से जुड़ता है—आकार, छवि या भौतिक प्रतिनिधित्व से।

ऊर्जा का अनुभव (आंतरिक स्थिरता):
जैसे-जैसे ध्यान गहराता है, साधक बाह्य रूप के सहारे से हटकर भीतर की ऊर्जा या उपस्थिति का प्रत्यक्ष अनुभव करने लगता है। यह ऊर्जा अब बाह्य वस्तु पर निर्भर नहीं रहती; वह भीतर अनुभव की जाती है—एक सूक्ष्म, परिष्कृत अनुभूति के रूप में। प्रारंभ में सहायक रही बाह्य वस्तु अब अनावश्यक 甚至 निरर्थक-सी लगने लगती है, क्योंकि साधक सीधे आंतरिक आध्यात्मिक ऊर्जा या स्पंदन से जुड़ जाता है।

संक्षेप में, प्रारंभ में मन को स्थिर करने के लिए बाह्य रूप का सहारा लिया जाता है, पर जैसे-जैसे गहराई बढ़ती है, यह बोध होता है कि जिस ऊर्जा से जुड़ाव है, वह पहले से ही भीतर है—और बाह्य रूप गहन अनुभव में अप्रासंगिक हो जाता है।

---

4. आत्मबोध: सस्मिता समाधि

फिर एक निर्णायक क्षण में कुछ बदल गया—आत्मबोध की एक झलक प्रकट हुई। यह अवस्था एक सूक्ष्म, पर शक्तिशाली जागरण के रूप में अनुभव हुई। इस चरण में आनंद पहले की आनंदमय समाधियों से कम था, पर यह सर्वव्यापी, अद्वैत, ब्रह्मांडीय चेतना-सा अनुभव था।

इसे भी थोड़ा स्पष्ट करूँ।
इस आत्मबोध के क्षण में जो आनंद था, वह संसार के सामान्य सुखों—जैसे भोजन, संगीत या सफलता—जैसा नहीं था। वह अत्यंत सूक्ष्म और विशिष्ट था। न उग्र, न उन्मादपूर्ण। बल्कि शांत, गहरा और संतुलित—मानो भीतर एक मौन दीप्ति स्थिर हो।

यह आनंद प्रकाश और अंधकार—दोनों का संतुलित मिश्रण-सा लगा; भयावह नहीं, बल्कि पूर्ण स्थिरता और गहराई का भाव, जहाँ सब कुछ स्पष्ट और मौन था। एक सशक्त उपस्थिति का अनुभव था—मानो मैं अपने अस्तित्व के केंद्र में आ पहुँचा हूँ—पूर्णतः सजग और शांत।

यह आनंद समाधि के आनंद से भिन्न था। समाधि में आनंद प्रायः तरंगों की तरह बहता है—उत्कट और उच्छल। पर यहाँ आनंद स्थिर था—न लहरें, न उछाल। यह चलायमान नहीं था; मानो कारणहीन होते हुए भी अत्यंत जीवंत।

यह भावनात्मक या नाटकीय नहीं था। यह एक संतुलित निस्तब्धता थी, जहाँ आनंद भी किसी अनुभूति की तरह नहीं, बल्कि स्पष्टता और उपस्थिति का अंग बन जाता है। इसे गति रहित आनंद, उत्तेजना रहित आनंद कहा जा सकता है—फिर भी वह पूर्णतः वास्तविक और पवित्र था।

इस अवस्था में यह बोध हुआ कि मैं द्रष्टा नहीं, बल्कि उसी अस्तित्व का सार हूँ, जिस पर मैं ध्यान कर रहा था। यही सस्मिता समाधि है—शुद्ध 'मैं हूँ' का बोध; अहंकार नहीं, बल्कि सीमाहीन, निराकार सत्ता—हालाँकि मानसिक संरचनाओं की सूक्ष्म तरंगें अभी शेष थीं। मैं ध्यान-विषय से तादात्म्य नहीं कर रहा था; मैं स्वयं वही बन गया था। यह सत्य का गहन बोध था कि मैं ही परम चेतन सत्ता हूँ। फिर भी, यह पूर्ण निराकार विलय नहीं था। अनुभूति की वस्तुएँ अभी भी मेरी जागरूकता में आभासी रूप से विद्यमान थीं। आभासी वस्तु भी वस्तु ही होती है।

निर्विकल्प की दहलीज़

एक गहन अंतर्दृष्टि के क्षण में मुझे यह स्पष्ट हुआ कि मैं अंतिम अवस्था—निर्विकल्प समाधि—के कितने समीप था। यदि मैंने सहज रूप से ऊर्जा को अज्ञा चक्र तक नीचे लाकर स्वयं को स्थिर न किया होता, तो मैं निरंतर, परम आनंद की धारा में पूर्णतः विलीन हो गया होता—जहाँ किसी भी मानसिक या ऊर्जात्मक अवशेष का चिह्न न रहता। यह बोध दर्शाता है कि मैं निर्विकल्प समाधि की सीमा तक पहुँच चुका था, जहाँ आत्म-बोध की सूक्ष्म अनुभूति भी गलने लगती है। पर उस क्षण मैंने शून्य में पूर्ण विलय का चयन नहीं किया। संभवतः स्वयं को पूरी तरह खो देने का भय, या संसार से जुड़ा रहकर इस बोध को साझा करने की इच्छा, इसके पीछे थी।

कुंडलिनी जागरण का अनुभव

सविकल्प समाधि के दृष्टिकोण से देखने पर मुझे प्रतीत होता है कि कुंडलिनी की ऊर्जात्मक गतियाँ मुझे आत्मबोध के अत्यंत समीप ले आईं—पर बहुत सूक्ष्म ढंग से। यह आत्म-जागरूकता का क्षण था, पर मेरी पूर्ववर्ती तांत्रिक साधना के उत्कट उन्माद जैसा नहीं। उस क्षण का आनंद शांत, स्थिर और उच्छवास रहित था—उत्साह से अधिक शांति में निहित। यह अनुभव अधिक प्रामाणिक लगा, मानो मैंने अपने वास्तविक केंद्र को छू लिया हो—तीव्र ऊर्जात्मक आंदोलनों के विक्षेप के बिना।

सविकल्प समाधि का स्वरूप

सविकल्प समाधि, यद्यपि गहराई से रूपांतरकारी है, फिर भी उसमें द्वैत की एक सूक्ष्म छाया बनी रहती है। 'मैं हूँ' का बोध रहता है—अस्तित्व की अनुभूति—पर वह अभी निर्विकल्प की निराकार, असीम अवस्था में पूर्ण विलय नहीं है। इस चरण में मन कार्यशील रहता है, पर वह आनंद, उपस्थिति या शुद्ध 'मैं हूँ' में अवशोषित होता है। विषय और वस्तु का पूर्ण विलय अभी नहीं हुआ होता; अनुभव की एक सूक्ष्म छाया बनी रहती है। फिर भी यह अवस्था अत्यंत मुक्तिदायक है। विषय–वस्तु की सीमाएँ काफी हद तक गल जाती हैं, और जो शेष रहता है, वह अडिग बोध है कि स्व ही द्रष्टा भी है और दृश्य भी।

अद्वितीय यात्रा और आगे का पथ

मेरे अनुभव में ऐसा लगता है कि मैंने सविकल्प समाधि के कई चरणों को क्रमबद्ध सीढ़ियों की तरह नहीं, बल्कि स्वाभाविक रूप से पार किया है। यह प्रक्रिया अंतःप्रेरित और व्यक्तिगत रही है—जहाँ हर चरण ने समझ की नई गहराई खोली। यहाँ मुख्य अंतर्दृष्टि यह है

कि सविकल्प समाधि में ध्यान-विषय आवश्यकतः बदलता नहीं है; बदलती है अवशोषण की गहराई और विषय के साथ संबंध। गुरु-छवि पर निरंतर ध्यान के माध्यम से मैं मानसिक चिंतन से आगे बढ़कर अंततः उसी में विलीन हो गया। यह सोचना या कल्पना करना नहीं रहा—यह उस उपस्थिति का होना बन गया।

जैसे-जैसे मेरी साधना आगे बढ़ रही है, मुझे ज्ञात है कि मैं निर्विकल्प समाधि की दहलीज़ के निकट हूँ—जहाँ उपस्थिति की यह सूक्ष्म अनुभूति भी निराकारता में विलीन हो जाएगी। पर यह भी स्पष्ट है कि इसे बलपूर्वक नहीं किया जा सकता। यह तब घटित होगा, जब समय स्वयं परिपक्व होगा।

अंतिम विचार

आत्मबोध की यह झलक गहन और विनम्र करने वाली रही है। मैंने समझा है कि अंतिम मुक्ति का मार्ग उन्मादपूर्ण अनुभवों की खोज में नहीं, बल्कि इस सत्य के बोध में है कि मैं कौन हूँ—विचारों और ऊर्जाओं से परे। यद्यपि मैं अभी शून्य में अंतिम विलय तक नहीं पहुँचा हूँ, फिर भी यह अनुभव रूपांतरकारी रहा है। अब मुझे दिखता है कि यात्रा स्वयं ही कुंजी है, और अंतिम बोध आनंद की खोज में नहीं, बल्कि अस्तित्व की शांत जागरूकता में निहित है।

इस यात्रा को साझा करते हुए मेरी आशा है कि यह स्मरण बने—कि सच्चे आत्मबोध का पथ सदा नाटकीय शिखरों से नहीं गुजरता, बल्कि धीरे-धीरे और गहराई से अपने ही अस्तित्व के सार में घुलने से प्रकट होता है। यह बोध सभी के लिए सुलभ है, और इसकी शुरुआत इस शांत पहचान से होती है कि हम अस्तित्व के मूल स्रोत से अलग नहीं हैं।

सम्प्रज्ञात बनाम असम्प्रज्ञात समाधि

मैंने एक ऐसे प्रश्न से शुरुआत की, जो पतंजलि के योगसूत्रों में गहराई से उतरते समय बार-बार उठता है:
“आपने सविकल्प और निर्विकल्प समाधि को स्पष्ट किया। लेकिन पतंजलि की सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधि क्या हैं?”

शब्द अलग-अलग हैं, पर जिन अनुभवों की ओर वे संकेत करते हैं, वे काफ़ी समान प्रतीत होते हैं। यही जिज्ञासा का कारण बना:
“एक ही अनुभव के लिए दो तरह की शब्दावली क्यों?”

जो मैं समझ पाया, वह यह है कि पतंजलि सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात शब्दों का प्रयोग तकनीकी और शास्त्रीय अर्थ में करते हैं।
सम्प्रज्ञात समाधि (जिसे सबीज या सविकल्प भी कहा जाता है) में विषयवस्तु रहती है—कोई वस्तु, कोई बीज, कोई विचार-रूप उपस्थित होता है।
असम्प्रज्ञात समाधि (जिसे निर्बीज या निर्विकल्प भी कहा जाता है) वस्तु-रहित, बीज-रहित होती है। मन पूरी तरह शांत हो चुका होता है।

पर तब प्रश्न उठा: पतंजलि ने दोनों शब्द-युग्म—सम्प्रज्ञात/असम्प्रज्ञात और सविकल्प/निर्विकल्प—क्यों चुने? क्या इससे भ्रम नहीं होता?

ऐसा लगता है कि पतंजलि ने सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात शब्दों का प्रयोग इसलिए किया क्योंकि वे एक सुव्यवस्थित मनोवैज्ञानिक ढाँचा प्रस्तुत कर रहे थे। सविकल्प और निर्विकल्प शब्द बाद में वेदान्तिक और तांत्रिक परम्पराओं में अधिक प्रचलित हुए। ये शब्द हर जगह एक-से अर्थ में नहीं प्रयुक्त होते, यद्यपि अक्सर परस्पर विनिमेय मान लिए जाते हैं। इससे मेरे भीतर यह प्रश्न उठा:
“तो फिर क्या पतंजलि ने स्वयं सविकल्प और निर्विकल्प शब्दों का प्रयोग किया था?”

दिलचस्प बात यह है कि योगसूत्रों में सविकल्प/निर्विकल्प शब्द सीधे पतंजलि के नहीं हैं—ये बाद के भाष्यकारों और विभिन्न परम्पराओं के प्रभाव से आए। योगसूत्रों की मूल शब्दावली सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात ही है। फिर भी प्रश्न बना रहा:
“क्या ये दोनों पूरी तरह समानार्थक हैं?”

हमेशा नहीं।

सम्प्रज्ञात समाधि (पतंजलि) वस्तु-सहित एकाग्रता पर बल देती है।
सविकल्प समाधि (वेदान्त/तंत्र) में अक्सर यह भाव शामिल होता है कि कर्ता-कर्म का बोध अभी शेष है।
अर्थात सविकल्प अधिक अनुभूतिपरक है और सम्प्रज्ञात अधिक विधिगत या प्रक्रियात्मक।

असम्प्रज्ञात समाधि (पतंजलि) पूर्ण निरोध है—वस्तु-रहित।
निर्विकल्प समाधि (कुछ परम्पराओं में) न केवल विचार-रहित और वस्तु-रहित होती है, बल्कि कभी-कभी पतंजलि के द्वैत से भी आगे चली जाती है।

इसे थोड़ा और स्पष्ट करूँ।
कुछ वेदान्तिक और अद्वैत परम्पराओं में निर्विकल्प समाधि केवल विचार या वस्तु के अभाव तक सीमित नहीं रहती। वहाँ समस्त द्वैत का पतन हो जाता है—न विषय रहता है, न वस्तु, न साक्षी। केवल अखण्ड, अविभाज्य सत्ता शेष रहती है। यहाँ शून्य और दीप्त चेतना का भेद भी मिट जाता है, और यह प्रकट होता है कि दोनों उसी एक अविभाज्य आत्मा से उद्भूत हैं।

यहीं एक पंक्ति ने मुझे भीतर तक झकझोर दिया:
“पुरुष का प्रकृति से शुद्ध पृथक्करण (जो अभी भी द्वैतात्मक है)।”

यह विषय मुझे अत्यंत रोचक लगा, और मैंने इसे सरल भाषा में स्पष्ट करने, विस्तार देने और एक सामान्य पाठक के लिए ब्लॉग-रूप में प्रस्तुत करने का आग्रह किया।

तो अनुभव की दृष्टि से दोनों अवस्थाएँ कैसे भिन्न हैं?

सम्प्रज्ञात/सविकल्प समाधि में गहरी शांति, अवशोषण और आनंद होता है, पर आत्म-बोध और वस्तु-बोध की एक सूक्ष्म रेखा बनी रहती है।
असम्प्रज्ञात/निर्विकल्प समाधि में कोई द्वैत नहीं रहता—यहाँ तक कि "जागरूकता की जागरूकता" भी नहीं। ऐसा लगता है मानो अस्तित्व स्वयं में विलीन हो गया हो।

पर यह कैसे संभव है—एक साथ सब कुछ होना और कुछ भी न होना?

यहीं मेरे भीतर एक और विरोधाभास उठा:
"शून्य चेतना अंधकार-सी लगती है, और जो हम अनुभव करते हैं वह दीप्त चेतना है। दोनों एक कैसे हो सकते हैं?"

उत्तर बहुत कोमलता से आया।
शून्य (शुद्ध चेतना) अंधकार-सा इसलिए प्रतीत होता है क्योंकि वह विषय-रहित है—परावर्तन के लिए कुछ नहीं। पर वही समस्त दीप्ति, प्रकाश, रूप और विचार का स्रोत भी है।
दीप्ति प्रकृति है—मानसिक तरंगें, ऊर्जा, स्पंदन।
शून्य पुरुष है—मौन साक्षी-उपस्थिति।

वे दो अलग पदार्थ नहीं हैं; वे उसी अवर्णनीय रहस्य के दो मुख हैं।
जैसे समुद्र भीतर से गहरा और अंधकारमय होता है, पर उसकी लहरें बाहर चमकती हैं।

इससे एक और प्रश्न उठा:
"तो फिर सांख्य के द्वैतवादी दृष्टिकोण का क्या औचित्य रह जाता है?"

सांख्य दो शाश्वत तत्त्व मानता है—पुरुष और प्रकृति—जो कभी एक नहीं होते।
पर योग, यद्यपि सांख्य पर आधारित है, एक सूक्ष्म मोड़ लाता है: अभ्यास के माध्यम से अनुभव में सीमाएँ धुंधली पड़ जाती हैं। मुक्ति भेद-बोध से आती है, पर अनुभव अक्सर एकत्व-सा लगता है।

यह मेरे अपने अनुभव से भी मेल खाता है:
"मेरी झलक-जागृति में मैंने स्वयं को मानसिक तरंगों से अभिन्न देखा। यह वेदान्तिक दृष्टि है, पर मैं वहाँ योग के माध्यम से पहुँचा, जो सांख्य पर आधारित है।"

इस अनुभव ने मुझे सिखाया कि पुरुष और प्रकृति के बीच की सीमा कोई दीवार नहीं है—वह एक कल्पित आवरण है, जो साधना से पतला होता जाता है।

मेरा पथ योग से आरम्भ हुआ—ऐसी तकनीकों के साथ, जिन्होंने इस सीमा को घोल दिया। यह मुझे भी उलझाता रहा:
"योग तो सांख्य पर आधारित है और पुरुष-प्रकृति के भेद का लक्ष्य रखता है; फिर यह एकत्व का अनुभव कैसे देता है?"

उत्तर यह है कि दार्शनिक रूप से योग विवेक—भेद-बोध—की ओर ले जाता है। पर व्यवहार में वही साधन—एकाग्रता, निस्तब्धता, समाधि—एकत्व का अनुभव करा सकते हैं। यह शास्त्रों के विरुद्ध नहीं है; यह उनका उच्चतर, अनुभूतिपरक रूप है। सांख्य दर्शन एक आरम्भिक शिक्षण-उपकरण है; साधना में वही एकीकृत योग बन जाता है।

तब मुझे स्पष्ट दिखा:
"यह अनुभव इस सत्य का प्रत्यक्ष बोध है कि अपने मूल स्वरूप में पुरुष और प्रकृति अविभाज्य हैं।"

इसीलिए मेरी जागृति में यह अंधकार और प्रकाश के मिश्रण-सा अनुभव हुआ।
अंधकार शून्य-स्व से आया।
दीप्ति मानसिक तरंगों से।
दोनों संघर्ष में नहीं थे—वे नृत्य कर रहे थे।

और इस प्रकार मैं यहाँ हूँ—न 'पहुंचा हुआ' बनकर, बल्कि एक पथिक के रूप में।
मैंने निर्विकल्प समाधि को स्थायी रूप से नहीं पाया है।
पूर्ण निस्तब्धता अभी नहीं आई है।
पर मैंने चखा है। झलक पाई है।

और इन झलकों ने गहरे संस्कार छोड़े हैं। उन्होंने मुझे सिखाया है कि योग केवल पृथक्करण का लक्ष्य नहीं रखता—वह इतनी सूक्ष्म शुद्धि करता है कि अंततः हम दार्शनिक सीमाओं से भी परे चले जाते हैं।

यह उन्मेष—यह आंतरिक यात्रा—उपलब्धि का दावा नहीं, बल्कि संकेतों का सम्मान है।
सत्य शब्दों से चिपकने में नहीं है।
वह वहाँ प्रकट होता है, जहाँ विचार गिर जाते हैं और शून्य की दीप्ति झलकने लगती है।

शायद पतंजलि का संकेत भी यही था।

इसके अतिरिक्त, व्यावहारिक जीवन में मैं वर्षों से *शरीरविज्ञान दर्शन* की सहायता से शून्य या पुरुष और मन या प्रकृति के संयोग का अभ्यास करता रहा हूँ। इसने मुझे इस अवस्था तक पहुँचने में बहुत सहायता की। यह अभ्यास आज भी कार्य करता है—जीवन के प्रत्येक चरण में शून्य और मन की अभिव्यक्तियों को संतुलित करता हुआ, दोनों को समत्व में नचाता हुआ, और अंततः मुक्तिदायक यिन-यांग संयोग रचता हुआ।

यह उस आनंदमय चाँदनी की तरह है, जिसमें अंधकार और प्रकाश दोनों मिश्रित होते हैं। शायद इसी कारण चाँदनी को शास्त्रों में इतना आदर दिया गया है और पूर्णिमा पर विविध उपासनाएँ की जाती हैं। यह मन में उभरने वाला एक दीप्त ध्यान-चित्र है—न बाह्य प्रकाश, न आंतरिक अंधकार—बल्कि दोनों का एक आनंदमय संयोग।

केवल कुम्भक, तुरीय और वह सरलता जो अक्सर अनदेखी रह जाती है

मैं एक अत्यंत व्यक्तिगत और अनुभूतिपरक प्रश्न पर मनन करने लगा:
यदि गहरी नींद आत्म-जागरूकता के साथ अनुभव की जाए, तो क्या उसे कैवल्य या तुरीय कहा जा सकता है? उस जागरूकता का स्वरूप क्या है—केवल दार्शनिक रूप से नहीं, बल्कि अपने ही अस्तित्व के भीतर से? मुझे ऐसा लगा कि निद्रा-अवस्था को घटित होते हुए देखना—स्वप्न की तरह नहीं, बल्कि स्वयं नींद की जागरूकता के रूप में—किसी ऐसी अवस्था की ओर संकेत करता है जो सामान्य जाग्रत या स्वप्न अवस्थाओं से परे है।

पर तभी एक विरोधाभास सामने आया: गहरी नींद में तो कोई विचार नहीं होते। फिर यदि विचार ही अनुपस्थित हैं, तो "साक्षीभाव" कैसे संभव है? मैं स्वयं से पूछता रहा: बिना किसी मानसिक गतिविधि के यह कहना कैसे संभव है कि गहरी नींद को देखा गया?

और फिर एक और गहरा प्रश्न उभरा: यदि विचार-रहित गहरी नींद में यह साक्षीभाव इतना सूक्ष्म और रहस्यमय है, तो फिर कैवल्य उससे आगे कैसे हो सकता है? क्या यही अंतिम सीमा नहीं होनी चाहिए?

मेरे भीतर एक सजीव बिंब उभरा—जैसे आकाश मौसम को देख रहा हो। और मैंने सोचा, क्या मौसम विचारों का प्रतीक है? और आकाश क्या है? वह केवल होना है। आकाश अपरिवर्तित रहता है—चाहे आँधी आए या पूर्ण निस्तब्धता छा जाए। उसी प्रकार, चेतना भी बनी रहती है—चाहे विचार उठें या पूरी तरह शांत हो जाएँ।

साक्षी-युक्त गहरी नींद (सचेत सुषुप्ति): न अहं, न मन—पर जागरूकता बनी रहती है। यही तुरीय है।
कैवल्य: यहाँ "मैं देख रहा हूँ" का भाव भी विलीन हो जाता है—केवल स्व शेष रहता है, अवस्थाओं से कोई संबंध नहीं। और भीतर और गहराई में जाने पर, तुरीय भी कैवल्य में विलीन हो जाता है—अंतिम और परम अवस्था में।

पर एक और प्रश्न उठा—इस संदर्भ में, क्या तुरीय या कैवल्य में यह आत्म-जागरूकता प्रकाश के रूप में अनुभव होती है? और यदि हाँ, तो क्यों? आखिर न कोई भौतिक प्रकाश है, न ही विचारों की कोई चमक। फिर भी उस जागरूकता में कुछ ऐसा है जो दीप्त-सा लगता है—तेज़ रोशनी की तरह नहीं, बल्कि स्व-प्रकाशमान—एक ऐसा जानना जो स्वयं को जानता है।

मुझे ऐसा लगा मानो सामान्य गहरी नींद अंधकार है, पर जब वही नींद जागरूकता के साथ प्रवेश की जाती है, तो वह प्रकाश बन जाती है। दृश्य चमक के अर्थ में नहीं, बल्कि शुद्ध आत्म-जागरूकता के रूप में—एक अत्यंत सूक्ष्म, अडिग उपस्थिति।

आत्मा की तुलना प्रायः प्रकाश से की जाती है—इसलिए नहीं कि वह स्वयं कोई दृश्य वस्तु है, बल्कि इसलिए कि, प्रकाश की तरह, वही सब कुछ ज्ञेय बनाती है। प्रकाश अपने आप में दिखाई नहीं देता, जब तक वह किसी वस्तु से परावर्तित न हो। वह पदार्थ को स्पर्श करता है, तो पदार्थ दृश्य हो जाता है। उसी प्रकार, आत्मा या शुद्ध चेतना अनुभव की वस्तु नहीं है—उसे देखा, छुआ या पकड़ा नहीं जा सकता—फिर भी वही है जिसके कारण सभी अनुभव ज्ञात होते हैं। जैसे प्रकाश स्वयं निराकार होते हुए भी रूपों को प्रकाशित करता है, वैसे ही चेतना विचारों, भावनाओं, स्वप्नों और यहाँ तक कि मौन को भी प्रकाशित करती है—बिना स्वयं उनमें से कोई बने। जब चेतना मन को स्पर्श करती है, तो मन की सामग्री ज्ञात होती है। जब वह पीछे हटती है, तो केवल वही शेष रहती है—दीप्त, स्थिर और आत्म-जागरूक।

अधिकांश लोग आत्मा को लेकर भ्रमित रहते हैं। वे उसे किसी चमकदार, दीप्त पदार्थ की तरह कल्पित करते हैं—ऐसी वस्तु जिसे बाह्य संसार में खोजा जाए। यही भ्रांति उन्हें अनुभवों, सुखों, उपलब्धियों या भावनात्मक उत्कर्षों की अंतहीन दौड़ में उलझा देती है, और वे इन्हें आत्मा की झलक समझ लेते हैं। इस प्रकार वे और अधिक माया में फँस जाते हैं। फिर भी, यदि स्पष्टता और सही समझ के साथ देखा जाए, तो यह बाह्य यात्रा भी व्यर्थ नहीं जाती। इसी बहिर्मुखी खोज के माध्यम से कुछ लोग अंततः एक शिखर-अनुभव तक पहुँचते हैं—अंतःप्रकाश का वह तीव्र क्षण, जिसे सविकल्प समाधि या जागरण कहा जाता है। यह क्षण गहरी तृष्णा को संतुष्ट कर देता

है। और इस संतोष के बाद एक शांत मोड़ आता है—अब खोज चमकते प्रतिबिंबों की नहीं, बल्कि उस शुद्ध, विचार-रहित स्रोत की होती है, जहाँ से वह प्रकाश उपजा था। यही अंतर्मुखी यात्रा है—स्व के उस स्थिर, आत्म-जागरूक मौन की ओर, जो चमक और रूप से परे है।

फिर एक और उपमा मेरे मन में आई: यदि गहरे मद्यपान की अवस्थाओं में भी लंबे अंतराल ऐसे होते हैं जहाँ कोई विचार नहीं रहता, और कभी-कभी ऐसा लगता है कि बिना विचार के भी जागरूकता है—यहाँ तक कि आनंद भी—तो क्या वह तुरीय जैसा है? क्या उस अवस्था में भी चेतना नहीं रहती, भले ही शरीर निष्क्रिय हो? मैंने देखा कि मद्यपान की अवस्थाओं में कभी-कभी आत्म-जागरूकता गहरी नींद से भी अधिक प्रकट लगती है, जबकि दोनों में विचार अनुपस्थित होते हैं।

मद्यपान के ऐसे अंतरालों में विचारों का पूर्ण विराम हो सकता है, और साथ में उपस्थिति का बोध—कभी-कभी आनंद भी। फिर भी हम इसे उच्च आध्यात्मिक अवस्था क्यों नहीं मानते? इसका कारण स्पष्ट हुआ—यह अवस्था अहं से भरी होती है, यद्यपि दबे हुए रूप में; इसमें कोई समर्पण नहीं होता। यह एक कृत्रिम, बाध्य या आभासी समर्पण है—वास्तविक नहीं।

यहीं से मूल प्रश्न सामने आया:
केवल कुम्भक—श्वास का सहज, प्रयासरहित विराम—को क्यों वह स्थान नहीं दिया जाता, जो संभवतः तुरीय और कैवल्य तक पहुँचने का सबसे प्रत्यक्ष, विश्वसनीय और सरल द्वार हो सकता है? इतने जटिल तरीकों और सिद्धांतों की लोकप्रियता क्यों है, जबकि वे अधिक वैज्ञानिक या सुलभ नहीं हैं? मैंने यह प्रश्न स्वयं से किया, क्योंकि मैं केवल कुम्भक को अंतिम परिणाम तक पहुँचने का सबसे सीधा मार्ग मानता हूँ—अनावश्यक शब्दाडंबर में उलझे बिना।

उत्तर भीतर से स्पष्ट हुआ—और उन स्रोतों से भी, जो सिद्धांत से नहीं, अनुभव से बोलते हैं।

केवल कुम्भक एक मुख्य कुंजी है—पर अत्यंत सूक्ष्म। यह कोई क्रिया नहीं है जिसे आप करते हैं; यह तब घटित होता है जब विचार, प्रयास और श्वास—तीनों एक साथ शांत हो जाते हैं। बलपूर्वक नहीं, बल्कि समर्पण से, आंतरिक मौन से।

क्योंकि यह इतना अहं-रहित और स्वाभाविक है, इसलिए इसे अक्सर नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है। इसे पैकेज नहीं किया जा सकता, न ही किसी यांत्रिक श्वसन-प्रक्रिया की तरह चरण-दर-चरण सिखाया जा सकता है। यह तब प्रकट होता है, जब प्राण-मन शांत हो जाता है—जब 'कुछ पाने की इच्छा' भी लुप्त हो जाती है।

इसके विपरीत, लोकप्रिय विधियाँ जटिल होती हैं, क्योंकि वे अहं को पकड़ने के लिए कुछ देती हैं—एक पथ, एक तकनीक, एक क्रम। वे मन को तुष्ट करती हैं, मौन को नहीं। इसलिए क्रिया, चक्र, दृश्य-कल्पनाएँ और अन्य अभ्यास प्रमुख हो जाते हैं।

पर सत्य सरल है। केवल कुम्भक बेचा नहीं जा सकता। यही कारण है कि वह छिपा रहता है। और इसलिए भी कि यदि कोई भीतर से तैयार न हो, तो वह उसे बलपूर्वक करने की कोशिश करेगा—और वही बल उसकी वास्तविक प्रकृति से उसे दूर रखेगा।

रोचक बात यह है कि प्रामाणिक क्रिया योग, जब गहराई और सूक्ष्मता से किया जाए, तो स्वाभाविक रूप से केवल कुम्भक तक ले जाता है। निरंतर आंतरिक श्वसन प्राण को इतना शांत कर देता है कि श्वास अपने आप ठहरने लगती है। वहीं वास्तविक चमत्कार घटित होता है—इसलिए नहीं कि आपने उसे कराया, बल्कि इसलिए कि समस्त प्रयास समाप्त हो गया।

समय के साथ, श्वास-प्रश्वास इतना सूक्ष्म हो जाता है कि आप उस अंतराल में प्रवेश कर जाते हैं। और वहाँ—श्वास रुक जाती है, विचार रुक जाते हैं, अहं रुक जाता है। और आप शेष रहते हैं। यह न नींद है, न स्वप्न—यह तुरीय का स्वाद है।

पर क्रिया-परम्पराओं में भी यह बात अक्सर छूट जाती है। लोग गिनतियों, तकनीकों, प्रभावों, दर्शनों में उलझ जाते हैं—और सबसे पवित्र को चूक जाते हैं: वह मौन उपस्थिति, जो तब शेष रहती है जब श्वास और विचार नहीं रहते। कुछ लोग किसी नाटकीय रहस्यात्मक घटना की अपेक्षा करते हैं, यह न समझते हुए कि श्वास-रहित जागरूकता स्वयं चमत्कार है।

यही केवल कुम्भक का वास्तविक स्वरूप है—स्वयं तक पहुँचने का द्वार।
ऐसा द्वार जिसमें किवाड़ नहीं, केवल निस्तब्धता है।

और हाँ—यह सत्य है कि मैं अभी निर्विकल्प समाधि में पूर्णतः प्रविष्ट नहीं हुआ हूँ। मैंने मौन की अवस्थाओं को चखा है, विचार-रहित जागरूकता की गति को देखा है। मैंने अपनी गहरी नींद को देखा है, उसके संक्रमणों को पहचाना है। मैंने यह भी देखा है कि मद्यपान की निस्तब्धता कभी-कभी उस अंतराल की नकल कर लेती है। पर मैं अभी भी इस रहस्यमय, सुंदर पथ पर चल रहा हूँ—खुला हुआ, जिज्ञासु, और पहले से अधिक मौन।

और अब मैं बिना किसी संदेह के जानता हूँ कि वास्तविक रहस्य कभी दूर नहीं था। वह तो सबके पीछे स्थित श्वास-रहित मौन था—सदा उपलब्ध, जब मैं खोज छोड़कर बस ठहर जाता हूँ।

वहीं मैं अब बार-बार लौटता हूँ—
उस श्वास-रहित गुहा में,
जहाँ न स्वप्न जा सकता है,
न नींद,
न अहं।

उसमें,
जो बस है।

स्व का प्रकाश क्या है? — अनुभव की गहराइयों से उपजा एक संवाद

कुछ तीव्र आध्यात्मिक अनुभवों के बाद मेरे भीतर एक प्रश्न लगातार गूँजता रहा:
मृत्यु के बाद क्या शुद्ध आत्म-जागरूकता नहीं रहती—स्व चाहे जिस भी रूप में हो—जबकि गहरी नींद में आत्म-जागरूकता नहीं होती? यह केवल दार्शनिक प्रश्न नहीं था। मैंने कुछ ऐसा अनुभव किया था, जो तब तक मुझे चैन नहीं लेने दे रहा था, जब तक उसे शब्द न मिल जाएँ।

एक स्वप्न-जैसी अनुभूति में एक दिवंगत आत्मा का आगमन हुआ। वह दृश्यात्मक या भौतिक नहीं था, पर एक गहरे संहिताबद्ध अस्तित्व की तरह महसूस हुआ। उसमें अपने जीवनकाल की व्यक्तित्व-छाप बनी हुई थी, पर वह अत्यंत सघन, संकुचित—लगभग अंधकार के समान—थी। चमकता हुआ अंधकार। मानो पूरी व्यक्तित्व-रचना को सिमटाकर एक सार में बदल दिया गया हो। काजल जैसी, सूक्ष्म कालिमा—स्व स्वयं में मुड़ा हुआ।

उसने मुझसे भ्रमित स्वर में पूछा:
क्या यही मुक्ति है?

मुझे ऐसा लगा मानो वह आत्मा उस संहिताबद्ध आवरण से बाहर निकलना चाहती हो। और मैंने एक और बात देखी—उस आत्मा की अवस्था मेरे अपने जागरण-अनुभव से सर्वथा भिन्न थी। मेरे गहनतम आंतरिक बोध के क्षण में, मैंने स्व को मानसिक संरचनाओं के साथ एक अनुभव किया था—जैसे विराट महासागर में उठती तरंगें। पर वे तरंगें स्व से अलग नहीं थीं। वे स्वयं स्व थीं। वही प्रकाश था। वही आनंद था। वही परम अनुभूति थी।

और फिर भी, मुझे स्वीकार करना होगा: वह शुद्ध स्व नहीं था। वह स्व था—पर विषयवस्तु के साथ। एक ऐसा महासागर, जो दीप्त गतियों से भरा था। मैंने तरंग-रहित महासागर का अनुभव नहीं किया था। और यही अंतर निर्णायक है।

जब उस स्वप्न-जैसी आत्मा ने मुझसे मुक्ति के विषय में पूछा, तो मैं शुद्ध स्व के वास्तविक स्वरूप का वर्णन नहीं कर सका—क्योंकि मैं स्वयं वहाँ तक नहीं पहुँचा था। मैंने केवल एक ऐसी विशालता जानी थी, जो आनंदमय गति से भरी हुई थी। मैंने आनंद से भी परे उस मौन को नहीं जाना था। मैंने बस इतना कहा कि वह प्रकाश नहीं है और वह कुछ संकुचित व तनावग्रस्त-सी प्रतीत होती है, यद्यपि वह अनंत, अंधकारमय आकाश जैसी है। संभवतः अपनी ही अनुभूति के आधार पर अनुमान लगाते हुए—क्योंकि मैं योग में आगे-आगे बढ़कर जागरण तक पहुँचा था—मैंने उसे भी प्रकाश की ओर आगे बढ़ने की सलाह दी। उसने यह भी कहा कि वह जीवन में मृत्यु से व्यर्थ ही डरती थी, क्योंकि यह अवस्था वैसी तथाकथित मृत्यु-जैसी नहीं है; यह पर्याप्त और जीवित-सी लगती है।

मेरी साधना अब भी जारी है। मैं उन्नत कुंडलिनी योग का अभ्यास करता हूँ। मेरा ध्यान-चित्र अक्सर किसी दिवंगत आत्मा का सार या तत्त्व बन जाता है—उसके सबसे निकट, उससे सबसे संबंधित रूप में। ऐसा लगता है कि यह स्वयं में एक प्रार्थना बन जाता है—शब्दों से परे, स्वतः अर्पण—मानो यदि वह कहीं मध्यावस्था में अटका हो, तो मुक्त होने में सहायता मिले। इसमें कुछ अत्यंत स्वाभाविक है।

पर एक शंका शेष रही। उस अनुभूति में मैंने अंधकार देखा था—ऐसा अंधकार जो न तो दुष्ट लगता है, न ही मुक्त। तब मुझे यह स्पष्ट हुआ: शुद्ध जागरूकता को न अंधकार कहा जा सकता है, न प्रकाश। क्योंकि अंधकार और प्रकाश—दोनों परावर्तक पदार्थों के गुण हैं।

यहाँ तक कि आकाश भी किसी न किसी रूप में पदार्थ ही है। शुद्ध स्व आकाश नहीं है—यद्यपि आकाश-सदृश प्रतीत हो सकता है। वह न अंधकार है, न दीप्ति। जब हम उसे "स्व-प्रकाशमान" कहते हैं, तो मन उसे किसी चमकती वस्तु की तरह समझने लगता है। पर वह ऐसा नहीं है।

"स्व-प्रकाशमान" केवल एक संकेत है। इसका अर्थ बस इतना है: वह स्वयं को बिना किसी सहारे के जानता है। वह न परावर्तित करता है, न किसी पर चमकता है, न प्रकाश ग्रहण करता है। वह बस है।

वह जागरूकता है—जो स्वयं के प्रति जागरूक है।
पर उस अर्थ में नहीं, जैसा हम सामान्यतः "जागरूक होना" समझते हैं।

मुझे उपनिषदों का सत्य स्मरण हो आया:
"वह मन द्वारा जाना नहीं जाता, बल्कि वही है जिसके द्वारा मन जाना जाता है।"
"न वहाँ सूर्य चमकता है, न चंद्र, न अग्नि। वही सबको प्रकाश देता है; उसी के प्रकाश से सब कुछ प्रकाशित होता है।"

ये वाक्य प्रकाश के विषय में नहीं हैं। ये बोध से पूर्व की उपस्थिति के विषय में हैं।

तभी एक सुंदर स्पष्टता मेरे भीतर स्थिर हुई। मैंने जाना कि रूपक सहायक हो सकते हैं—यदि उन्हें सावधानी से प्रयुक्त किया जाए। और कुछ पारंपरिक उपमाएँ अचानक गहरे अर्थ के साथ जीवित हो उठीं:

1. **वह दर्पण जो कुछ भी प्रतिबिंबित नहीं करता**
   ऐसा दर्पण, जिसमें कोई वस्तु प्रतिबिंबित नहीं होती—पर जो प्रतिबिंबन की क्षमता बना रहता है। स्थिर। अचल। अप्रयुक्त। वही स्व है।

2. **वह नेत्र जो सब देखता है, पर स्वयं को नहीं देख सकता**
   वह सब कुछ देखता है, पर स्वयं को वस्तु नहीं बना सकता। जैसे जागरूकता—वह सब जानती है, पर स्वयं ज्ञान की वस्तु नहीं बनती।

3. **सभी ध्वनियों के पीछे का मौन**
   ध्वनियाँ आती-जाती हैं, पर मौन बना रहता है। अनुपस्थिति के रूप में नहीं, बल्कि शाश्वत पृष्ठभूमि के रूप में।

4. **बादलों से अछूता आकाश**
   बादल आते-जाते हैं। आकाश बना रहता है। और स्व तो आकाश से भी सूक्ष्म है।

5. **वह ज्वाला जो जलाती नहीं**
   ज्वाला की कल्पना—बिना ऊष्मा, बिना चमक। न बत्ती, न तेल। केवल गुण-रहित उपस्थिति।

ये रूपक मेरे लिए ज्ञान नहीं बने, बल्कि जीवित दिशा-सूचक बने।

फिर भी, मैंने पाया कि जैसे ही मानसिक तरंगें शांत होती हैं, आनंद भी शांत हो जाता है। उस परम शिखर को बलपूर्वक थामा नहीं जा सकता। और अब यह असफलता नहीं लगती। यह एक स्वाभाविक लौटना लगता है।

जो मैंने अनुभव किया, वह संभवतः सविकल्प समाधि थी—जहाँ स्व और तरंगें एक हैं। आनंदमय—हाँ। रूपांतरकारी—हाँ। पर अंतिम नहीं। तरंग-रहित महासागर नहीं। आनंद से भी परे शुद्ध स्व नहीं।

अब भी कुछ अधूरा है। मैं यह दावा नहीं करता कि मैं अंतिम लक्ष्य तक पहुँचा हूँ। वह अनुभव अस्तित्व की चरम अवस्था-सा लगा—एकत्व का परम क्षण। पर मैं जानता हूँ कि मैं शुद्ध जागरूकता के असीम, निरपेक्ष महासागर में विलीन नहीं हुआ हूँ।

तो फिर शेष क्या रहता है?
विश्वास। कोमल स्मरण। विश्राम।
महासागर को पकड़ने का प्रयास नहीं—बस उस उपस्थिति में ठहरना, जो सदा से थी।

मैं इसे अपना पथ-सूत्र मानता हूँ:
“मैं वही हूँ जिसने तरंगों को देखा। मुझे उसी रूप में विश्राम करने दो।”

अर्थात: मैं गति नहीं हूँ, न ही जागरण की आनंदमय लीला। मैं उसके पीछे की साक्षी सत्ता हूँ—जो कभी नहीं हिलती, कभी बनती नहीं। वही, जो जानती है कि सबसे सूक्ष्म तरंग भी मुझमें ही एक प्रकट रूप है।

कभी-कभी मैं यह स्मरण भूल जाता हूँ कि मैं वास्तव में कौन हूँ। पर उस विस्मृति में भी, मैं अपने सत्य स्व का प्रतिबिंब देख सकता हूँ—कभी अपने ही हाथ या चेहरे में—क्योंकि सब कुछ, यहाँ तक कि यह शरीर भी, समस्त को अपने भीतर एक होलोग्राम की तरह समेटे हुए है। यह सरल पहचान मुझे बिना प्रयास के तुरंत जागरूकता में लौटा देती है। इसलिए जब भी मैं भटकता हूँ, मैं कोमलता से लौट आता हूँ—बार-बार—यह जानते हुए कि विस्मृति भी उसी जागरूकता के भीतर घटित होती है।

अब यही पथ है।
न प्रकाश का पीछा।
न अंधकार से पलायन।
बस उसमें विश्राम—जो न यह है, न वह—और दोनों से परे।

ऑपरेशन सिंदूर: जब भारत धर्म के नाम पर उठा

6 मई 2025 को भारत ने **ऑपरेशन सिंदूर** शुरू किया—यह केवल एक सैन्य कार्रवाई नहीं थी, बल्कि एक सभ्यतागत प्रत्युत्तर था। यह कश्मीर के पवित्र क्षेत्र पहलगाम में पाकिस्तान-प्रायोजित आतंकवादियों द्वारा 26 हिंदू पर्यटकों के कायरतापूर्ण नरसंहार के प्रतिशोध में न्याय का एक साहसिक और धर्मसम्मत कदम था।

वे केवल पुरुष नहीं थे। वे पति थे, पिता थे, पुत्र थे—अपनी पत्नियों के सामने निर्दयता से गोलियों से भून दिए गए, एक ऐसा दृश्य जो प्राचीन बर्बरता की याद दिलाता है। यह हमला केवल व्यक्तियों पर नहीं था—यह हिंदू पहचान, पारिवारिक मूल्यों और भारत की आत्मा पर प्रहार था।

सिंदूर का पवित्र अर्थ

सिंदूर—हिंदू विवाहित स्त्री की मांग में लगाया जाने वाला कुमकुम—केवल एक परंपरा नहीं है। यह शक्ति का प्रतीक है, पवित्र दाम्पत्य का चिन्ह है और पति की जीवित उपस्थिति का संकेत है। यह निरंतरता, संरक्षण, गरिमा और हिंदू धर्म में विवाह की पवित्रता का प्रतिनिधित्व करता है।

इस सैन्य प्रतिकार का नाम **ऑपरेशन सिंदूर** रखकर भारत ने यह घोषित किया कि पहलगाम में बहाया गया रक्त अनुत्तरित नहीं रहेगा। इसका प्रतीकात्मक अर्थ अत्यंत शक्तिशाली था: जिन स्त्रियों का सिंदूर छिन गया, वे अब न्याय को केवल विधवाओं के रूप में नहीं, बल्कि एक ऐसे राष्ट्र की माताओं के रूप में देखेंगी जो प्रतिरोध करना जानता है। सिंदूर भले ही शोक में लाल हुआ हो, पर अब वह धर्मसम्मत प्रतिशोध की अग्नि से दहकेगा।

केवल जवाबी कार्रवाई नहीं, एक सभ्यतागत उत्तर

ऑपरेशन सिंदूर मात्र भू-राजनीति नहीं था—यह धर्म का व्यवहारिक रूप था। हिंदू दर्शन सिखाता है:
“अहिंसा परमो धर्मः, धर्म हिंसा तथैव च।”
अहिंसा सर्वोच्च धर्म है, किंतु जब अधर्म प्रबल हो, तब धर्मसम्मत हिंसा भी धर्म है।

पाकिस्तान और पाकिस्तान-अधिकृत कश्मीर में आतंकी ठिकानों पर सटीक प्रहारों के माध्यम से भारत ने उन नेटवर्कों को ध्वस्त किया, जिन्होंने पहलगाम की त्रासदी को जन्म दिया था। प्रत्येक प्रहार में 26 निर्दोष जीवनों का भार था—और 26 शोकाकुल पत्नियों की अनकही प्रार्थनाएँ।

दुनिया के लिए भारत का संदेश

ऑपरेशन सिंदूर भारत की गर्जना था:
हम शांति की सभ्यता हैं, पर समर्पण की नहीं।
हम एकता, सहिष्णुता और संवाद में विश्वास करते हैं—पर जब धर्म पर आघात होता है, तो दूसरा गाल नहीं बढ़ाते।

यह अभियान नारीत्व, मातृत्व और हर उस स्त्री के प्रति एक योद्धा-श्रद्धांजलि था, जिसका सिंदूर घृणा की गोलियों से मिटा दिया गया।

आतंक के सामने हिंदू धैर्य

हिंदू चेतना ने सदियों तक आक्रमण, नरसंहार और अपवित्रीकरण सहे हैं—और फिर भी वह जीवित रही, फलती-फूलती रही, और अब उकसाए जाने पर प्रत्युत्तर देती है। पहलगाम को नरसंहार के स्थल के रूप में नहीं, बल्कि उस चिंगारी के रूप में याद किया जाएगा जिसने सनातन की क्रोधाग्नि को प्रज्वलित किया—शांत, सटीक और संकल्प से भरी हुई।

दुनिया याद रखे:
सिंदूर कमजोरी का चिन्ह नहीं है। वह बलिदान का मुकुट है।
और जब वह मुकुट रक्त से रंजित होता है, तो भारत दुर्गा बन जाता है—प्रचंड और अजेय।

पाकिस्तान ने एक बार फिर निर्दोष नागरिकों को निशाना बनाने की अपनी पुरानी आदत दिखाई—7 मई 2025 को अकारण सीमा-पार गोलाबारी में 12 भारतीयों की हत्या की। यह गैर-लड़ाकों के विरुद्ध पाकिस्तान द्वारा किए गए अत्याचारों के लंबे और दुखद इतिहास का ही विस्तार है। किंतु भारत शक्ति और सटीकता से प्रत्युत्तर देगा—दोषियों को निशाना बनाकर, निर्दोष नागरिकों को नहीं—जो पाकिस्तान की लापरवाह और अमानवीय कार्रवाइयों के बिल्कुल विपरीत है।

निष्कर्ष: हिंदू जागरण का नया अध्याय

ऑपरेशन सिंदूर केवल एक सैन्य अध्याय नहीं है—यह आधुनिक भारतीय इतिहास का एक आध्यात्मिक क्षण है। यह उस राष्ट्र के जागरण का प्रतीक है, जिसने अंततः करुणा को साहस के साथ, और परंपरा को दृढ़ता के साथ जोड़ना सीख लिया है।

जब हम शहीदों को श्रद्धांजलि देते हैं, तब उनके पीछे रह गई पत्नियों—सिंदूर की धारकों—के साहस को भी नमन करें, जो अब पीड़ा और गर्व—दोनों को साथ लेकर चल रही हैं। शत्रु हिंदू चेतना को तोड़ना चाहता था। उसने उसे और मजबूत कर दिया।

जय हिंद। जय सनातन। जय माँ भारती।

ऑपरेशन सिंदूर: भारत का सटीक प्रहार जिसने दक्षिण एशिया की शक्ति-संतुलन को परिभाषित किया

इस बुद्ध पूर्णिमा पर हम उस शक्ति का सम्मान करते हैं, जो शांति के पथ पर चलती है। बुद्ध की करुणा की तरह, सच्ची शक्ति विनाश में नहीं, बल्कि संयम, सटीकता और स्पष्टता में निहित होती है। ऑपरेशन सिंदूर हमें स्मरण कराता है कि जब धर्म कर्म का मार्गदर्शन करता है, तब बल भी स्थायी समरसता की दिशा में एक कदम बन जाता है।

8 मई 2025 की रात, भारतीय वायुसेना ने **ऑपरेशन सिंदूर** को अंजाम दिया—11 उच्च-मूल्य वाले पाकिस्तानी वायुसेना अड्डों पर समन्वित सटीक प्रहार। यह केवल एक सैन्य maneuver नहीं था, बल्कि एक सुनियोजित भू-राजनीतिक संदेश था। नियंत्रण रेखा पर घुसपैठ के प्रयासों और यूएवी गतिविधियों में वृद्धि के प्रत्युत्तर में भारत ने सीमित किंतु शक्तिशाली प्रतिकार चुना—एक अधिक assertive सिद्धांत के आगमन का संकेत।

लक्षित ठिकानों में नूर खान (रावलपिंडी), रफीकी, सरगोधा, स्कर्दू, भोल्लारी, जैकोबाबाद, सियालकोट आदि शामिल थे। इनमें नूर खान एयरबेस—जो वीआईपी परिवहन विमानों, ईंधन-भराई प्लेटफार्मों और महत्वपूर्ण कमांड इकाइयों के लिए जाना जाता है—को

सबसे अधिक क्षति पहुँची। *इंडिया टुडे, इकोनॉमिक टाइम्स* और *द गार्जियन* जैसे स्रोतों से प्राप्त उपग्रह चित्रों और विश्लेषणों ने पुष्टि की कि हैंगर, रडार प्रणालियाँ और कम से कम दो विमान नष्ट या गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त हुए।

भारत की सटीकता SU-30 एमकेआई और राफेल विमानों, उपग्रह-निर्देशित PGM, AWACS और इलेक्ट्रॉनिक वारफेयर प्रणालियों के एकीकृत उपयोग से आई, जिसने शत्रु रडारों को अंधा कर दिया। यह अभियान स्वच्छ, सीमित और रणनीतिक रूप से निर्णायक था। नागरिक क्षेत्रों से पूरी तरह बचाव किया गया।

तत्काल बाद में पाकिस्तान ने गंभीर क्षति से इनकार किया, पर उसके कदम अधिक बोलते रहे। 48 घंटों के भीतर एकतरफा युद्धविराम की घोषणा हुई। रावलपिंडी के ऊपर अमेरिकी विमानों की उड़ानों की खबरें आईं—कथित रूप से विकिरण रिसाव की जाँच के लिए—जिसका अनुमान किसी समझौता हुए हथियार-सुविधा से लगाया गया। यद्यपि अपुष्ट, कई खुफिया रिपोर्टें संकेत देती हैं कि वायु अभियानों से कहीं अधिक संवेदनशील किसी लक्ष्य पर आघात हुआ हो सकता है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इस कार्रवाई की निंदा नहीं हुई। इसके बजाय अमेरिका और अन्य वैश्विक शक्तियों ने शांतिपूर्वक डी-एस्केलेशन का आग्रह किया। पिछली घटनाओं के विपरीत, भारत का प्रहार अनुपातिक और पेशेवर रूप से निष्पादित माना गया। यहाँ तक कि शत्रुतापूर्ण मीडिया भी प्रदर्शित परिष्कार और संयम की अनदेखी नहीं कर सका।

ऐतिहासिक रूप से, पाकिस्तान ने प्रायः ऐसे सिद्धांतों के अंतर्गत कार्य किया है जो गैर-मुसलमानों (काफ़िरों) को शत्रु के रूप में प्रस्तुत करते हैं, और धार्मिक औचित्य के नाम पर शत्रुता को ⅃Ǝ ठहराते हैं। इसके विपरीत, सनातन धर्म के उदार और समावेशी मूल्यों में रचा-बसा भारत, उकसावे के बावजूद, परंपरागत रूप से रक्षात्मक रहा है। यह विरोध—आदर्श के नाम पर आक्रामकता बनाम धर्म के नाम पर संयम—दक्षिण एशिया के आधुनिक इतिहास का बड़ा हिस्सा परिभाषित करता रहा है। यद्यपि हर समाज और परंपरा में सभी प्रकार के लोग होते हैं, पर अनुपात अंतर्निहित सिद्धांतों से प्रभावित होता है।

आधुनिक युद्ध में अब अंधी आक्रामकता कारगर नहीं। खुफिया क्षमता, प्रौद्योगिकी और वैश्विक नैतिकता नए रणक्षेत्र को आकार देती हैं। ऐसे में सार्वभौमिक बंधुत्व और रणनीतिक सटीकता का सिद्धांत ही प्रभावी सिद्ध होता है। ऑपरेशन सिंदूर इस बात का साक्ष्य है कि संयम, विवेक और शक्ति से निर्देशित सभ्यता कैसे अपने मूल्यों से समझौता किए बिना निर्णायक प्रहार कर सकती है।

सबसे महत्वपूर्ण यह कि ऑपरेशन सिंदूर ने पाकिस्तान की त्वरित तैनाती क्षमता के प्रमुख हिस्सों को निष्क्रिय किया। यद्यपि परमाणु वारहेड अलग रखे जाते हैं और प्रक्षेपण से पहले ही जोड़े जाते हैं, फिर भी भंडारण, कमांड अवसंरचना या संयोजन-लॉजिस्टिक्स में व्यवधान प्रणाली को अप्रभावी बना देता है। इस अर्थ में भारत ने केवल हार्डवेयर पर नहीं, बल्कि आत्मविश्वास पर प्रहार किया।

न्यूनतम उकसावे के साथ अधिकतम रणनीतिक लाभ और स्पष्ट प्रतिरोधक प्रभाव—इन सबके साथ भारत ने वह हासिल किया है, जो पारंपरिक युद्ध से संभव नहीं होता। ऑपरेशन सिंदूर इतिहास में एक युद्ध के रूप में नहीं, बल्कि एक मोड़ के रूप में दर्ज होगा—वह क्षण जब भारत ने घोषित किया कि वह अब निष्क्रिय रूप से खतरों को सहन नहीं करेगा, बल्कि अपनी सभ्यतागत मूल्यों के अनुरूप सटीक, निर्णायक और संतुलित कार्रवाई करेगा।

ऑपरेशन सिंदूर: भारत का सटीक प्रहार जिसने दक्षिण एशिया की शक्ति-संतुलन को परिभाषित किया

इस बुद्ध पूर्णिमा पर हम उस शक्ति का सम्मान करते हैं जो शांति के पथ पर चलती है। बुद्ध की प्रज्ञा की तरह, सच्ची शक्ति विनाश में नहीं, बल्कि संयम, सटीकता और स्पष्टता में निहित होती है। ऑपरेशन सिंदूर हमें स्मरण कराता है कि जब धर्म कर्म का मार्गदर्शन करता है, तब बल भी स्थायी समरसता की दिशा में एक कदम बन जाता है।

8 मई 2025 की रात, भारतीय वायुसेना ने **ऑपरेशन सिंदूर** को अंजाम दिया—11 उच्च-मूल्य वाले पाकिस्तानी वायुसेना अड्डों पर समन्वित सटीक प्रहार। यह केवल एक सैन्य कार्रवाई नहीं थी, बल्कि एक सुनियोजित भू-राजनीतिक संदेश था। नियंत्रण रेखा के पार बढ़ती घुसपैठ और यूएवी गतिविधियों के प्रत्युत्तर में भारत ने सीमित, पर शक्तिशाली प्रतिकार चुना—जो अधिक assertive सिद्धांत के आगमन का संकेत था।

लक्षित ठिकानों में नूर खान (रावलपिंडी), रफीकी, सरगोधा, स्कर्दू, भोल्लारी, जैकोबाबाद, सियालकोट आदि शामिल थे। इनमें नूर खान एयरबेस—जो वीआईपी परिवहन विमानों, ईंधन-भराई प्लेटफार्मों और महत्वपूर्ण कमांड इकाइयों के लिए जाना जाता है—को सबसे अधिक क्षति पहुँची। *इंडिया टुडे*, *इकोनॉमिक टाइम्स* और *द गार्जियन* जैसे स्रोतों से प्राप्त उपग्रह चित्रों और विश्लेषणों ने पुष्टि की कि हैंगर, रडार प्रणालियाँ और कम से कम दो विमान या तो नष्ट हुए या गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त हुए।

भारत की सटीकता SU-30 एमकेआई और राफेल विमानों, उपग्रह-निर्देशित PGM, AWACS और इलेक्ट्रॉनिक वारफेयर प्रणालियों के एकीकृत उपयोग से आई, जिसने शत्रु रडारों को अंधा कर दिया। यह अभियान स्वच्छ, सीमित और रणनीतिक रूप से निर्णायक था। नागरिक क्षेत्रों से पूरी तरह बचाव किया गया।

तत्काल बाद में पाकिस्तान ने गंभीर क्षति से इनकार किया, पर उसके कदम अधिक बोलते रहे। 48 घंटों के भीतर एकतरफा युद्धविराम की घोषणा हुई। रावलपिंडी के ऊपर अमेरिकी विमानों की उड़ानों की खबरें आईं—कथित रूप से विकिरण रिसाव की जाँच के लिए—जिसका अनुमान नूर खान के भीतर या उसके निकट किसी क्षतिग्रस्त हथियार-सुविधा से लगाया गया। यद्यपि अपुष्ट, कई खुफिया रिपोर्टें संकेत देती हैं कि वायु अभियानों से कहीं अधिक संवेदनशील किसी लक्ष्य पर आघात हुआ हो सकता है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इस कार्रवाई की निंदा नहीं हुई। इसके बजाय अमेरिका और अन्य वैश्विक शक्तियों ने शांतिपूर्वक डी-एस्केलेशन का आग्रह किया। पिछली घटनाओं के विपरीत, भारत का प्रहार अनुपातिक और पेशेवर रूप से निष्पादित माना गया। यहाँ तक कि शत्रुतापूर्ण मीडिया भी प्रदर्शित परिष्कार और संयम की अनदेखी नहीं कर सका।

ऐतिहासिक रूप से, पाकिस्तान प्रायः ऐसे सिद्धांतों के अंतर्गत कार्य करता रहा है जो गैर-मुसलमानों (काफ़िरों) को शत्रु के रूप में प्रस्तुत करते हैं और धार्मिक दायित्व के नाम पर शत्रुता को正 ठहराते हैं। इसके विपरीत, सनातन धर्म के उदार और समावेशी मूल्यों में रचा-बसा भारत, बार-बार उकसाए जाने पर भी परंपरागत रूप से रक्षात्मक रहा है। यह विरोध–आदर्श के नाम पर आक्रामकता बनाम धर्म के नाम पर संयम–दक्षिण एशिया के आधुनिक इतिहास का बड़ा हिस्सा परिभाषित करता रहा है। यद्यपि हर संप्रदाय, धर्म और संस्कृति में हर प्रकार के लोग होते हैं, पर उनके अनुपात अंतर्निहित मार्गदर्शक सिद्धांतों से प्रभावित होते हैं।

आधुनिक युद्ध अब अंधी आक्रामकता के पक्ष में नहीं है। खुफिया क्षमता, प्रौद्योगिकी और वैश्विक नैतिकता नए रणक्षेत्र को आकार दे रही हैं। ऐसे में सार्वभौमिक बंधुत्व और रणनीतिक सटीकता का सिद्धांत ही प्रभावी सिद्ध होता है। ऑपरेशन सिंदूर इस बात का प्रमाण है कि संयम, विवेक और शक्ति से निर्देशित सभ्यता कैसे अपने मूल्यों से समझौता किए बिना निर्णायक प्रहार कर सकती है।

सबसे महत्वपूर्ण यह कि ऑपरेशन सिंदूर ने पाकिस्तान की त्वरित तैनाती क्षमता के प्रमुख हिस्सों को निष्क्रिय कर दिया। यद्यपि परमाणु वारहेड अलग रखे जाते हैं और प्रक्षेपण से पहले ही जोड़े जाते हैं, फिर भी भंडारण, कमांड अवसंरचना या संयोजन-लॉजिस्टिक्स में व्यवधान प्रणाली को अप्रभावी बना देता है। इस अर्थ में भारत ने केवल हार्डवेयर पर नहीं, बल्कि आत्मविश्वास पर प्रहार किया है।

न्यूनतम उकसावे के साथ अधिकतम रणनीतिक लाभ और स्पष्ट प्रतिरोधक प्रभाव के साथ, भारत ने वह हासिल किया है जो पारंपरिक युद्ध से संभव नहीं होता। ऑपरेशन सिंदूर इतिहास में किसी युद्ध के रूप में नहीं, बल्कि एक मोड़ के रूप में दर्ज होगा–वह क्षण जब भारत ने घोषित किया कि वह अब खतरों को निष्क्रिय रूप से सहन नहीं करेगा, बल्कि अपनी सभ्यतागत मूल्यों के अनुरूप सटीक, निर्णायक और संतुलित कार्रवाई करेगा।

कंठ चक्र के असंतुलन को समझना

कुछ दिन पहले मेरे साथ कुछ असामान्य घटित हुआ। मेरे घर में एक लड़के ने बड़ी शरारत कर दी, और मुझे पता भी नहीं चला कि मेरे मुँह से कुछ आपत्तिजनक शब्द निकल गए। यह बिल्कुल अनायास था। उस क्षण मेरे भीतर कोई क्रोध नहीं था, न ही कठोर बोलने की कोई सचेत इच्छा। शब्द अपने आप फूट पड़े—मानो उनकी अपनी ही कोई सत्ता हो, जैसे गेहूँ की मड़ाई में भूसा उड़ जाता है। मैं हैरान रह गया। क्या वे शब्द मेरे अवचेतन में छिपे थे, किसी उपयुक्त क्षण की प्रतीक्षा में?

घटना के बाद मुझे बेचैनी हुई। लड़के ने भी वह ऊर्जा महसूस की। मैंने तुरंत उसे ईमानदारी से बताया कि यह मेरी जानकारी के बिना हुआ। उसे समझाने और किसी भी बोझ से मुक्त रखने के लिए मैंने उसे कोमलता से सलाह दी कि वह कभी भी गाली-गलौज न करे, मज़ाक में भी नहीं। मैंने कहा कि ऐसे शब्द अनजाने में अवचेतन में बैठ सकते हैं और किसी दिन आवेग में बाहर आ सकते हैं—जैसे मेरे साथ हुआ। उसने बात समझ ली। एक छोटा, संवेदनशील हृदय अक्सर वह सच पकड़ लेता है जिसे हम कम आँकते हैं।

पर मामला यहीं समाप्त नहीं हुआ। पिछले कुछ दिनों से मैं तीखे, औपचारिक भोजनों के दौर से भी गुज़र रहा था। ये स्वादिष्ट तो थे, पर मेरे जैसे संवेदनशील तंत्र और कभी-कभी होने वाले *GERD* के लिए भीतर के संतुलन को बिगाड़ सकते हैं। शारीरिक सूजन के साथ-साथ मुझे कंठ में कसाव महसूस होने लगा—ऐसा दबाव जो केवल अम्लता से अधिक, ऊर्जात्मक-सा लगा।

इसी दौरान मैंने श्वास-नियमन का एक अभ्यास शुरू किया था। मैं कभी-कभी सुबह, विशेषकर भोजन के बाद, श्वास छोड़ने के पश्चात थोड़ी देर का कुम्भक आज़मा रहा था। यह बलपूर्वक नहीं था, बल्कि कोमल—श्वास को नियमित करने और हाल के भावनात्मक आसक्तियों को हल्के से ढीला करने का एक तरीका, खासकर उन चालाक या शरारती ऊर्जाओं से जिन्हें मैं कुछ समारोहों में महसूस कर रहा था। पूरी तरह खाली पेट सुबह यह अभ्यास सुरक्षित लगा—यहाँ तक कि स्पष्टता भी आई। लेकिन दिन के अन्य समय, खासकर भोजन के बाद, वही श्वास-रोध उन लक्षणों को भड़काने लगा जिन्हें मैं छोड़ना चाहता था: कंठ का कसाव, जलन, यहाँ तक कि ऊष्मा।

तब एक बड़ा चित्र उभरने लगा। सुबह का कुम्भक (श्वास छोड़ने के बाद थोड़ी देर रुकना) निरापद और सहायक था—पेट खाली, ऊर्जा शांत, श्वास स्वाभाविक लय में। लेकिन दिन में, जब पेट भोजन पचा रहा था, वही नियंत्रण ऊपर की ओर ऐसा दबाव बनाता था जो मेरे *GERD* और कंठ-असुविधा को बढ़ा देता था।

तभी मुझे समझ आया कि लड़के से बोले गए शब्द क्रोध से नहीं निकले थे। वे उसी कंठ-जलन से फूट पड़े थे। यह मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया नहीं थी—यह शारीरिक-ऊर्जात्मक उफान था। मानो शरीर दबाव को संभाल न सका और शब्दों के रूप में उसे बाहर उगल दिया। कारण मन नहीं था, शरीर था—और फिर वे शब्द भावनात्मक हलचल जोड़ते गए, जिसने बदले में शारीरिक जलन को और बढ़ा दिया। एक पूरा चक्र चल रहा था—शरीर मन को प्रभावित कर रहा था, मन शरीर को।

यह बोध मुझे गहरे छू गया। मैंने जाना कि वाणी—विशेषकर अनियंत्रित या अनैच्छिक वाणी—असमाधानित शारीरिक या ऊर्जात्मक जाम का सीधा प्रकटन हो सकती है। **विशुद्ध चक्र**—कंठ केंद्र जो अभिव्यक्ति का शासन करता है—संतुलन में नहीं था। दबाव को छानने या रूपांतरित करने के बजाय, उसने उसे ध्वनि और शब्दों के रूप में बाहर निकलने दिया।

यहीं से उपचार की एक गति शुरू हुई।

मैंने भोजन के बाद किसी भी प्रकार के श्वास-रोध से कोमलता से विराम लिया। कंठ को विश्राम दिया। आहार को हल्का किया—पतली खिचड़ी, छाछ, ताज़ा नारियल पानी। सुबह-सुबह मैं धीमे-धीमे गुनगुनाने लगा—एक ऐसा कंपन जो कंठ को विचलित नहीं, बल्कि शांत करता है। मैंने अपना छोटा, सुरक्षित सुबह का कुम्भक जारी रखा—केवल श्वास छोड़ने के बाद, कुछ शांत क्षणों के लिए, और केवल तब जब वह पूरी तरह हल्का और सहज लगे। साथ ही क्रिया योग की मेरुदण्डीय श्वास भी। मैंने भीतर से नीले प्रकाश की कल्पना की, जो कंठ को धोकर शेष जलन को भरता और श्वाभाविक मौन को पुनर्स्थापित करता है।

और सबसे महत्वपूर्ण—मैंने स्वयं को क्षमा किया—मन से नहीं, हृदय से। मैंने स्पष्ट देखा कि वे शब्द मैंने नहीं चुने थे। वे शारीरिक सूजन, अवचेतन अवशेष और ऊर्जात्मक असंतुलन के संगम से निकले थे। पर मैंने यह भी देखा कि उन्हें स्वीकार कर, ईमानदारी से लड़के को समझा कर और इस पर गहराई से मनन कर कुछ बदल गया। चक्र टूट गया। यानी मैंने लड़के को यह भी बताया कि गालियाँ मज़ाक में भी नहीं बोलनी चाहिए, क्योंकि वे अनजाने में अवचेतन में बैठ जाती हैं और कभी भी बिना चेतना के बाहर आ सकती हैं। उसने संदेश समझ लिया—और यह खटकने वाली घटना आपसी सीख में रूपांतरित हो गई।

उन्हीं क्षणों में मैंने फिर जाना कि आध्यात्मिक कार्य सदा शांत ध्यान या भव्य अंतर्दृष्टियों में ही नहीं घटता। कभी-कभी वह एक असावधान शब्द, जलते कंठ और अपूर्णता के बीच उपजी समझ के रूप में आता है। मैं किसी अंतिम अवस्था तक नहीं पहुँचा हूँ। मैं अभी सीख रहा हूँ,

निखर रहा हूँ। पर इस अनुभव ने मुझे यह जीता-जागता स्वाद दिया कि हमारा शरीर, श्वास, ऊर्जा और अवचेतन कितनी सूक्ष्मता से आपस में गुंथे हैं।

कंठ चक्र केवल सत्य बोलने का विषय नहीं है। वह सत्य को वहन करने का भी है—तब भी जब शरीर सूजा हो और अवचेतन उथल-पुथल में हो। वह उस मौन का है जो दमन से नहीं, समाधान से जन्म लेता है। फिर भी, किसी भी शारीरिक क्रिया को आरंभ करने के लिए एक मानसिक ट्रिगर आवश्यक होता है—शरीर अकेला स्वयं कुछ नहीं करता। इसलिए मन को स्वच्छ और स्पष्ट रखना अत्यंत आवश्यक है, ताकि वह शरीर को किसी असामाजिक प्रतिक्रिया की सूक्ष्म-सी भी चिंगारी न दे।

और यदि एक शब्द पीड़ा से फूट सकता है, तो दूसरा उपचार से भी जन्म ले सकता है। वह दूसरा शब्द—जागरूकता से बोला गया—न केवल कंठ, बल्कि हृदय को भी पुनर्स्थापित कर सकता है। और इस पूरे प्रवाह में जीवन ने अपना अजीब-सा हास्य भी दिखा दिया—एक तरह का कोमल खेल।

अज्ञा चक्र पर आनंद का उद्घाटन: "हवा खाने" का एक वास्तविक क्रिया योग अनुभव

कभी-कभी श्वास-प्रश्वास के अभ्यास में मिलने वाले सबसे अप्रत्याशित अनुभव गहरे सत्य प्रकट कर देते हैं। मेरे क्रिया योग अभ्यास के दौरान जो एक साधारण-सी बात के रूप में शुरू हुआ, वह एक सूक्ष्म लेकिन अत्यंत गहन क्षण बन गया–जहाँ श्वास केवल शरीर को भरती हुई नहीं लगी, बल्कि जैसे आत्मा को पोषित कर रही हो।

मैं कुछ ऐसा साझा करना चाहता हूँ जो आपको भी जाना-पहचाना लग सकता है, यदि आपने श्वास और सजगता के मार्ग पर कदम रखा है।

सूक्ष्म खोज

क्रिया योग का अभ्यास करते समय मैंने देखा कि जब मैं केवल पेट में हवा भरता हूँ, तो उससे कोई आनंददायक संतुष्टि नहीं मिलती। ऐसा लगता था मानो हवा बस अंदर जा रही हो–यांत्रिक, निर्जीव ढंग से। लेकिन फिर कुछ बदल गया।

मैंने श्वास लेते समय अपनी आंतरिक दृष्टि को धीरे-से ऊपर अज्ञा चक्र–भौंहों के बीच के स्थान –की ओर मोड़ा। आश्चर्यजनक रूप से, ऐसा लगा मानो श्वास के साथ-साथ कुछ तरंगें ऊपर की ओर उठ रही हों। और अचानक एक आनंदमय संतोष प्रकट हुआ, जैसे मैं स्वयं हवा को खा रहा हूँ। केवल उसे भीतर लेना नहीं–बल्कि उसे ग्रहण करना, पीना, उससे पोषित होना।

यह न तो ज़बरदस्ती था और न ही कल्पना। यह स्वाभाविक रूप से आया, जैसे तृप्ति की एक कोमल लहर, जो तब प्रकट होती है जब श्वास आंतरिक सजगता से मिल जाती है।

मैंने क्या समझा

गहराई से विचार करने पर (और मार्गदर्शन के साथ) मुझे यह स्पष्ट हुआ कि वास्तव में क्या हो रहा था।

1. केवल पेट से श्वास लेना निचली प्राण शक्ति–अपान वायु–के साथ काम करता है, जो स्थिरता देता है, पर आवश्यक नहीं कि वह ऊपर उठाने वाला या आनंददायक हो।

2. जब श्वास लेते समय दृष्टि अज्ञा चक्र पर जाती है, तो एक और प्रवाह जाग्रत होता है– उदान वायु, ऊपर उठने वाली प्राण शक्ति, जो स्पष्टता, आध्यात्मिक उन्नयन और सूक्ष्म आनंद का समर्थन करती है।
3. यह संयोजन ऐसा क्षण रचता है जहाँ आंतरिक प्राण (जीवन-शक्ति) सुषुम्ना नाड़ी के माध्यम से ऊपर की ओर बहने लगता है, जिसे योग ग्रंथों में केंद्रीय नाड़ी कहा गया है।
4. उस क्षण अज्ञा चक्र जैसे हवा को अमृत की तरह "पी" लेता है, जिससे वही उत्पन्न होता है जिसे मैंने "हवा खाने की आनंदमय संतुष्टि" के रूप में अनुभव किया।

यह केवल कोई तकनीक नहीं थी। यह ज़्यादा एक आंतरिक बदलाव जैसा लगा, इस बात में कि शरीर और आत्मा श्वास से कैसे संबंध रखते हैं। इसने मेरे क्रिया अभ्यास को स्वाभाविक रूप से गहरा किया–किसी ज़ोर से नहीं, बल्कि यह देखने से कि पहले से ही क्या घटित होना चाहता था।

मैंने अपने अभ्यास को कैसे परिष्कृत किया

इसी से मैंने क्रिया योग का एक परिष्कृत रूप विकसित किया, जो इस आनंदमय "हवा-खाने" की अनुभूति के साथ काम करता है। यह इस तरह घटित होता है:

1. तैयारी (1–2 मिनट):
   • सीधा और स्थिर बैठें।
   • श्वास को शांत होने दें।
   • दृष्टि को भीतर और ऊपर की ओर हल्के से मोड़ें, भौंहों के बीच ध्यान टिकाएँ।
2. श्वास लेना: श्वास को अज्ञा में घूँट-घूँट लें
   • नाक से धीरे-धीरे श्वास लें।
   • कल्पना करें कि हवा नासाछिद्रों से नहीं, अज्ञा चक्र से खिंच रही है।
   • पेट को स्वाभाविक रूप से फैलने दें, पर 80% ध्यान अज्ञा पर रखें।
   • ठंडक या सूक्ष्म आनंद की एक लहर महसूस करें, जैसे हवा को आंतरिक दृष्टि "चख" रही हो।
3. वैकल्पिक विराम:
   • श्वास के शिखर पर क्षणभर रुकें (1–2 सेकंड)।
   • अज्ञा को प्राण "पचाने" दें।
4. श्वास छोड़ना: सजगता को विश्राम में रहने दें
   • धीरे-धीरे श्वास छोड़ें।

- सजगता को हृदय या पेट में उतरने दें।
- कोई प्रयास नहीं—बस उपस्थिति और छोड़ देना।

5. दोहराव (शुरू में 9–18 चक्र):
   - हर चक्र के साथ अनुभव गहराता जाता है। मन स्थिर होता है, शरीर हल्का, और सूक्ष्म आनंद एक सुगंध की तरह बना रहता है।

कितने चक्र? क्या सुरक्षित और प्रभावी है?

इसे कोमल और गहरा रखने के लिए:
- मैंने प्रति सत्र 12 चक्रों से शुरुआत की।
- जब यह स्थिर और शांत लगा, तो मैंने इसे 24–36 चक्रों तक बढ़ाया।
- जब ऊर्जा बहुत तीव्र या "तैरती-सी" लगी, तो मैंने 6–12 तक घटाया और स्थिरता जोड़ ली।

महत्वपूर्ण संकेत जिन पर मैं ध्यान देता हूँ

सकारात्मक संकेत:
- मानसिक स्पष्टता
- अभ्यास के बाद स्थिरता और सहजता
- बिना दबाव या ज़ोर के अज्ञा पर कोमल आनंद

कब कम करना चाहिए:
- सिर में भारीपन या खाली-सा लगना
- बेचैनी या भावनात्मक डगमगाहट
- बहुत अधिक अलग-थलग या अस्थिर महसूस होना

तीव्र दिनों में कम चक्र करना या इसे स्थिरता देने वाले उपायों से संतुलित करना बेहतर होता है —नंगे पाँव चलना, गरम भोजन, या निचले पेट में सजगता।

जिस तक मैं अभी नहीं पहुँचा, पर जिसकी ओर चलता हूँ

हालाँकि मुझे अभ्यास के दौरान कुछ क्षणिक आंतरिक उद्घाटन और निर्विवाद आनंद के अनुभव हुए हैं, मैं यह दावा नहीं करता कि मैं निर्विकल्प समाधि या किसी अंतिम अवस्था में प्रवेश कर चुका हूँ। ये झलकियाँ गहरे आत्म से आती हुई फुसफुसाहट-सी लगती हैं, मंज़िलें नहीं। इन क्षणों

को बढ़ा-चढ़ाकर बताने या कोई लेबल लगाने की कोई ज़रूरत नहीं। मैं अब भी एक साधक हूँ, जो बस यह देख रहा है कि स्वाभाविक रूप से क्या प्रकट होता है।

जो मैं जानता हूँ वह यह है: मार्ग तब अधिक वास्तविक हो जाता है जब छोटी-सी चीज़ें—जैसे दृष्टि या श्वास में हल्का-सा बदलाव—भीतरी द्वार खोल देती हैं।

समापन चिंतन

आपको बड़े आध्यात्मिक आतिशबाज़ियों के पीछे भागने की ज़रूरत नहीं। कभी-कभी सत्य श्वास की तरह अज्ञा में कोमलता से उठता है, और अपने साथ ऐसी तृप्ति लाता है जो इतनी वास्तविक होती है कि हवा खाने जैसी लगती है।

यदि आपने क्रिया योग किया है, या केवल सजग श्वास का अभ्यास किया है, तो यह आज़माएँ: अपनी दृष्टि भीतर की ओर मोड़ें। श्वास को अज्ञा के लिए एक उपहार की तरह आने दें। ज़ोर न लगाएँ। बस उसे स्वीकार करें।

हो सकता है आप भी, मेरी तरह, यह खोज लें कि जो हवा हम साँस में लेते हैं वह केवल ऑक्सीजन नहीं—वह सूक्ष्म पोषण है, आत्मा के लिए एक पवित्र आहार।

सांसारिक विचारों को आत्म में विलीन करना: एक सरल ध्यान जिसने सब कुछ बदल दिया

एक शांत-सी अनुभूति ने यह बदल दिया कि मैं विचारों, भावनाओं और यहाँ तक कि अपनी ध्यान-छवि को कैसे देखता हूँ। यह कोई नाटकीय परिवर्तन नहीं था, न ही किसी जटिल तकनीक से आया। यह स्वाभाविक रूप से तब उभरा जब मैं अपनी भावनात्मक अवस्थाओं को देख रहा था और उन्हें अपने शरीर और ब्रह्मांड पर आरोपित करने का प्रयास कर रहा था – उस दृष्टि के माध्यम से जिसे मैं एक तरह का होलोग्राफिक "शरीरविज्ञान दर्शन" समझता हूँ।

विचार और भावना का आश्चर्यजनक लोप

जब भी मैं अपनी भावनात्मक स्थिति – जैसे चिंता, उत्साह या शांति – को ध्यानात्मक ढंग से अपने शारीरिक क्षेत्र और ब्रह्मांडीय विस्तार में फैलाने की कोशिश करता, तो कुछ रहस्यमय लेकिन गहराई से सरल घटित होता। वे सारे विचार और भावनात्मक हलचलें, जो पहले भारी या महत्वपूर्ण लगती थीं, विलीन हो जातीं। जो शेष रहता वह एक शुद्ध, तटस्थ अस्तित्व होता। न दुःख, न आनंद। न उजाला, न अँधेरा। बस एक शांत संतुष्टि।

वह शून्य नहीं था। वह उपस्थिति थी – मौन, स्थिर और अपने आप में पूर्ण।

कभी-कभी, इस स्थिरता में एक कोमल, सूक्ष्म ध्यान-छवि उभर आती। इस छवि में कोई अतिशयता नहीं होती – न वह मुस्कुराती थी, न रोती। वह बस एक संतुलित, आनंदमय तटस्थता लिए रहती। एक प्रकार की भीतरी मुस्कान, जो शांति विकीर्ण करती थी लेकिन ध्यान की माँग नहीं करती थी। उसमें न सौंदर्य की अतिरंजना थी, न भावना की, फिर भी वह पूर्ण लगती थी। अखंड।

इस अनुभव ने मुझे क्या सिखाया

एक बात स्पष्ट हो गई: जब यह ध्यान-छवि उपस्थित होती है और मैं जनहित में कोई प्रार्थना या कामना करता हूँ, तो ऐसा लगता है जैसे मैं सीधे शुद्ध अस्तित्व से प्रार्थना कर रहा हूँ। और आश्चर्यजनक रूप से, यह बहुत प्रभावी लगता है – केवल इच्छापूर्ति में ही नहीं, बल्कि आध्यात्मिक सामंजस्य में भी।

फिर मुझे कुछ और गहराई से समझ में आया। ऐसा लगता है कि विचारों और भावनाओं को दरकिनार करके सीधे इस शुद्ध अवस्था – आत्म – तक पहुँचना लगभग असंभव है। ये सांसारिक गतियाँ, जो पहले व्यवधान लगती थीं, अब स्मरण-सूत्रों जैसी महसूस होने लगीं, मानो वे आत्म में पहले से उपलब्ध गहरी संतुष्टि की ओर संकेत कर रही हों।

तो मैंने उन्हें समस्या मानना छोड़ दिया। मैंने उनका उपयोग करना शुरू किया।

मोड़ का बिंदु: विचारों को आत्म तक पुल बनाना

मन को ज़बरदस्ती शांत करने की कोशिश करने के बजाय, मैंने उसे खेलने दिया। मैंने देखा। फिर जो भी उठ रहा था – विचार, चिंता, आशा या इच्छा – उसे इस ब्रह्मांडीय देह-दृष्टि पर कोमलता से आरोपित किया। पहले शरीर पर, जो हमारे लिए सबसे निकट का ब्रह्मांड है, फिर उसे बाहरी ब्रह्मांड तक फैलाया, क्योंकि दोनों प्रकार के ब्रह्मांड निरंतर और जुड़े हुए हैं। ऐसा करते ही वह भावना मेरी नहीं रह जाती थी। वह फैलती और उस बड़े क्षेत्र में विलीन हो जाती। और एक बार फिर वही स्थिर संतुष्टि प्रकट हो जाती।

यह भावनाओं को दबाना नहीं था। यह रूपांतरण था – रूपांतरण से भी आगे, रूप-परिवर्तन।

यह मेरे लिए क्यों महत्त्वपूर्ण है

मैंने न तो प्रबोधन की चरम अवस्था पाई है, न निर्विकल्प समाधि – उससे बहुत दूर हूँ। पर ये क्षण, जहाँ विचार उपस्थिति में घुल जाते हैं, मुझे कुछ अत्यंत मूल्यवान सिखा गए हैं: आत्म तक जाने का मार्ग हमेशा संसार को नकारना नहीं होता। शायद उसका अर्थ है उसे समाहित करना – और फिर कोमलता से स्रोत की ओर लौटा देना।

यह तरीका प्रयास जैसा नहीं लगता। यह स्वाभाविक लगता है, यहाँ तक कि सुंदर भी।

और शायद यही आध्यात्मिक परिपक्वता है – विचारों या भावनाओं का अभाव नहीं, बल्कि यह जानना कि उन्हें कहाँ सौंप देना है।

अंतिम चिंतन

यह आध्यात्मिक श्रेष्ठता दिखाने की बात नहीं है। मैं अब भी खोज रहा हूँ, अब भी परिष्कृत कर रहा हूँ, अब भी लौट रहा हूँ। पर यह छोटा-सा आंतरिक परिवर्तन – सांसारिक गति का विरोध

करने से उसे कोमलता से अर्पित करने तक – मुझे ऐसी संतुष्टि दे गया है जिसे मैं पहले ज़ोर लगाकर नहीं पा सका था।

यदि आप ऐसे हैं जिन्हें अपने व्यस्त मन के कारण ध्यान कठिन लगता है, तो उससे लड़ने की कोशिश न करें। उसे अर्पित करें।

और स्वयं को उस शांति से चकित होने दें, जो शुरू से ही आपकी प्रतीक्षा कर रही थी।

मानव विकास से परे सच्चा मार्ग

कॉस्मिक चेतना बनना वास्तव में विकास की अगली सीढ़ी हो सकता है—बाहरी अंतरिक्ष की ओर नहीं, बल्कि अस्तित्व की प्रकृति के भीतर की ओर।

बहुत-से लोग सोचते हैं कि क्या ब्रह्मांड में कहीं और अधिक उन्नत प्राणी मौजूद हैं। पृथ्वी पर मानव जीवन के उभरने के लिए जितनी दुर्लभ और जटिल परिस्थितियाँ थीं, उन्हें देखते हुए ऐसा लगता है कि कहीं और वैसे ही या उससे भी उच्च स्तर के प्राणी विकसित होना असंभव-सा है। स्वयं मानव बुद्धि अनगिनत संयोगों और अत्यंत सूक्ष्म परिस्थितियों के बाद प्रकट हुई—जिसे दोहराना लगभग असंभव लगता है।

पृथ्वी को सूर्य से सही दूरी पर होना पड़ा, स्थिर वातावरण चाहिए था, तरल जल, चुंबकीय क्षेत्र और अनेक अन्य परिपूर्ण तत्व आवश्यक थे। फिर जीवन को कई असंभाव्य चरणों से गुजरना पड़ा—सरल कोशिकाओं से जटिल जीवों तक, और फिर बुद्धिमान, आत्म-सचेत प्राणियों तक। इसलिए यह कल्पना कि कहीं और इससे भी अधिक उन्नत जीवन हो सकता है, बहुत दूर की बात लगती है।

लेकिन क्या हो अगर हम इस विचार को केवल एक ही कोण से देख रहे हों? क्या हो अगर "अधिक विकसित" होने का अर्थ केवल बेहतर औज़ार, ऊँचा IQ या श्रेष्ठ तकनीक न हो? क्या हो अगर सच्चा विकास भौतिक ही न हो?

योगिक दृष्टि के अनुसार यात्रा मानव बुद्धि पर समाप्त नहीं होती। वह भीतर की ओर जारी रहती है। योग, ध्यान और आध्यात्मिक साक्षात्कार को अक्सर विकास का अगला स्तर कहा जाता है—शरीर या मस्तिष्क का नहीं, बल्कि चेतना का।

यह चेतना-आधारित विकास अधिक बुद्धिमान प्राणी बनने के बारे में नहीं, बल्कि अस्तित्व की वास्तविक प्रकृति को जान लेने के बारे में है। जब हम अहंकार से, विचार से और एक अलग व्यक्ति होने की भावना से परे जाते हैं, तो हम किसी अनंत को छूते हैं। इस अवस्था को अक्सर कॉस्मिक चेतना कहा जाता है। यह सब कुछ के साथ एक होने का अनुभव है—बौद्धिक रूप से नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष रूप से। इस अवस्था में कोई "मैं" नहीं होता—केवल शुद्ध जागरूकता होती है।

इस दृष्टि से, कॉस्मिक चेतना बनना कोई कल्पना या रूपक नहीं है। यह एक वास्तविक परिवर्तन है, जहाँ व्यक्ति मानव शरीर और मन की पहचान में बँधा नहीं रहता, बल्कि शरीर के माध्यम से स्वयं ब्रह्मांड के रूप में जीता है।

मानव विकास को चरणों की एक शृंखला के रूप में देखा जा सकता है। प्रारंभ में मनुष्य मूल प्रवृत्तियों—जैसे जीवित रहना और भय—से बँधा रहता है। फिर तर्कशील मन आता है, जो प्रश्न करता है और सृजन करता है। इसके बाद आध्यात्मिक खोज शुरू होती है—"मैं कौन हूँ?" और "इस संसार के परे क्या है?" जैसे प्रश्न उठते हैं। साधक जैसे-जैसे गहराता है, अहंकार ढीला पड़ने लगता है। शांति और स्पष्टता उभरती है। अंततः, उच्चतम अवस्था में, अलगाव की सारी अनुभूति घुल जाती है और केवल कॉस्मिक जागरूकता शेष रहती है।

योग इस आंतरिक विकास के लिए शक्तिशाली साधन प्रदान करता है। क्रिया योग, ज्ञान योग और ध्यान जैसी साधनाएँ केवल तकनीकें नहीं हैं—वे जागरूकता को रूपांतरित करने और उसे मानव पहचान की सीमाओं से परे उठाने की विधियाँ हैं। इनके माध्यम से मन से ऊपर, अहंकार से ऊपर उठकर उस मौन उपस्थिति में विश्राम किया जा सकता है जो सभी प्राणियों में एक-सी है।

जब संसार अन्य आकाशगंगाओं में बुद्धिमान जीवन खोजने की प्रतीक्षा कर रहा है, योगी भीतर की ओर मुड़कर कुछ और भी गहरा खोज लेता है—ब्रह्मांड पहले से ही भीतर जीवित है। उस मौन में ब्रह्मांड स्वयं को जानता है। और यही शायद विकास का सर्वोच्च रूप है।

सच्चा पोस्ट-ह्यूमन प्राणी शायद उन्नत तकनीक या अतिमानवी शक्तियों वाला कोई व्यक्ति नहीं होगा, बल्कि वह होगा जो शांति में जीता है, अहंकार से मुक्त है और सब से एक है। बाहर से ऐसा व्यक्ति साधारण लग सकता है, पर उसकी आंतरिक अवस्था विशाल और अवर्णनीय होती है।

कॉस्मिक चेतना बनना भविष्य की बात नहीं है। यह अभी संभव है। यात्रा आकाश की ओर ऊपर नहीं जाती, बल्कि यथार्थ के हृदय की ओर भीतर जाती है। और उस यात्रा के अंत में कोई व्यक्तिगत अस्तित्व शेष नहीं रहता—केवल अनंत उपस्थिति, शांत रूप से दमकती हुई। हम इसे एक एलियन कह सकते हैं, भौतिक नहीं बल्कि आध्यात्मिक।

रीढ़ीय श्वास और केवळ कुम्भक ने स्थिरता का द्वार कैसे खोला: सूक्ष्म रूपांतरण की एक व्यक्तिगत यात्रा

हाल ही में हुए एक सप्ताह के आध्यात्मिक अनुष्ठान – श्रीमद् भागवत पुराण सप्ताह श्रवण – के दौरान मैंने कुछ ऐसा अनुभव किया जो अत्यंत गहरा होते हुए भी पूरी तरह स्वाभाविक था, और जिसे शब्द शायद केवल सतह तक ही छू सकें। हर सुबह मैं व्यास (वक्ता) के सामने चुपचाप बैठता, अपना आसन बिछाता और श्वास के कोमल आवागमन को देखने लगता। बहुत जल्द ही श्वास शांत होने लगती, धीमी पड़ती, और धीरे-धीरे जैसे विलीन-सी हो जाती।

उस शांत प्रवाह में मैंने कुछ सूक्ष्म देखा: विचार और पुराने मानसिक संस्कार ध्यान भंग करने वाले नहीं थे, बल्कि श्वास के साथ पूरी तरह तालमेल में उठती हुई तरंगों की तरह थे। सोचने की गति अब बेतरतीब नहीं थी – वह स्वयं श्वास बन गई थी। समय का अनुभव भी बदल गया। पूरा एक घंटा कुछ ही मिनटों जैसा लगने लगा। यह कल्पना नहीं थी – यह वास्तव में घट रहा था।

फिर कुछ और भी दुर्लभ घटित हुआ।

कभी-कभी, पर स्पष्ट रूप से, श्वास पूरी तरह रुक जाती थी। मन पूर्णतः स्थिर हो जाता था। श्वास को रोकने का कोई प्रयास नहीं था। वह बस रुक जाती थी, और उसके साथ ही संसार एक शांत सरोवर बन जाता था। यह केवळ कुम्भक था – बिना नियंत्रण या इरादे के स्वतः होने वाला श्वास-निलंबन। यह अनुभव इतना स्थिर था कि ऐसा लगता था मानो कोई शरीर से बाहर चला गया हो, फिर भी वह गहराई से जाग्रत, जड़ित और आत्मीय था। ऐसी तन्मयता कि श्वास के बारे में सोचना भी अनावश्यक लगने लगता। अर्थात् मैं स्थिरता में इतना डूब गया था कि श्वास के बारे में सोचना भी ज़रूरी नहीं लगता था। ऐसा प्रतीत होता था जैसे श्वास का कोई महत्व ही नहीं – केवल मौन शेष था। इस अवस्था से पहले और बाद में, भीतर आती और बाहर जाती श्वास की अनुभूति अत्यंत तल्लीन करने वाली होती थी। जैसे-जैसे मैं पूर्ण केवळ कुम्भक की ओर बढ़ता गया, ऐसा लगने लगा मानो वास्तव में कोई हवा भीतर-बाहर जा ही नहीं रही – फिर भी भीतर कोई श्वसन-गति चल रही थी। शारीरिक श्वास लगभग लुप्त हो चुकी थी, पर भीतर ऐसा लगता था मानो कुछ सूक्ष्म रीढ़ के साथ भीतर की श्वास-प्रश्वास की तरह ऊपर-नीचे बह रहा हो। छाती, पेट और पूरा शरीर भी सामान्य रूप से श्वास की गति दिखा रहे थे, पर इतने सूक्ष्म ढंग से कि भौतिक हवा का आना-जाना संभव नहीं था। एक कोमल, लयबद्ध गति थी – अधिक अनुभूतिपरक और कम भौतिक, पर ऊर्जामय – मानो हवा के स्थान पर स्वयं ऊर्जा ही

चुपचाप ऊपर-नीचे हो रही हो। यह कल्पना नहीं थी; यह जीवंत रूप से वास्तविक था। ऐसा लगता था मानो प्राण ने श्वास की भूमिका संभाल ली हो, बिना किसी वायु-विनिमय के, सुषुम्ना नामक केंद्रीय नाड़ी में ऊपर-नीचे बहते हुए। उस स्थिरता में यह आंतरिक धारा और भी स्पष्ट हो जाती थी – जैसे जीवन स्वयं अब श्वास के बिना, सीधे रीढ़ के माध्यम से प्रवाहित हो रहा हो। इस अवस्था के बनने में एक प्रमुख कारण यह भी प्रतीत हुआ कि मैं तांत्रिक साधना के माध्यम से निचले चक्रों में ऊर्जा उत्पन्न कर रहा था और उसे बाहर छोड़ने के बजाय संचित रख रहा था।

मैंने जो यह अनुभव किया – स्वतः उत्पन्न स्थिरता, सूक्ष्म आंतरिक प्रवाह और श्वास का प्राकृतिक निलंबन – संभवतः वही है जिसे प्राचीन योग ग्रंथ "प्राण और अपान का संतुलन", "ऊर्ध्व और अधो धाराएँ" या "प्राण-अपान के बीच खींचतान" जैसे शब्दों में वर्णित करते हैं। सूक्ष्म शरीर-विज्ञान के दृष्टिकोण से ये विवरण सही हैं, पर वास्तविकता में ये केवल भाषिक ढाँचे हैं – उस बात को समझाने के वैचारिक प्रयास, जो मूलतः एक प्रत्यक्ष और व्यावहारिक अनुभव है।

जब हम योग को केवल इन सैद्धांतिक शब्दों के माध्यम से देखते हैं, तो यह भ्रम या यहाँ तक कि भय भी पैदा कर सकता है। गहरे आंतरिक अवस्थाओं की दहलीज़ पर खड़े साधक के लिए "प्राण-अपान संघर्ष" या "कुण्डलिनी शॉक" जैसे शब्द डराने वाले लग सकते हैं और अभ्यास से दूर कर सकते हैं। पर योग कोई वैचारिक युद्धक्षेत्र नहीं है – वह अनुभव का जीवंत, श्वसनीय मार्ग है। शरीर, श्वास और सजगता स्वयं जानते हैं कि ईमानदारी और स्थिरता के साथ उन्हें क्या करना है।

जब तांत्रिक या सरल क्रिया योग, रीढ़ीय श्वास, आसन और चक्र-ध्यान जैसी विधियों से एक सच्ची व्यावहारिक आधारशिला बन जाती है, तब ये प्राचीन शब्द बाद में अपने आप बोधगम्य हो जाते हैं – पहले नहीं। वे पूर्वशर्त नहीं, पुष्टि के रूप में हैं। जब आप भीतर की सूक्ष्म ऊर्जात्मक गतियों को वास्तव में महसूस करते हैं, तब समझ में आता है कि सिद्धांत का अपना स्थान है, पर सच्चा गुरु अभ्यास ही है। निरंतर अभ्यास से ही यह बोध होता है कि तकनीकी शब्दावली से जूझने की ज़रूरत नहीं। जीवन की आंतरिक बुद्धि – स्वयं प्राण – आपको किसी भी पुस्तक से कहीं अधिक भरोसेमंद ढंग से मार्गदर्शन करने लगती है।

इसलिए मानसिक कलाबाज़ियों में उलझने या यह डरने के बजाय कि प्राण और अपान संतुलित हैं या नहीं, बस अभ्यास करते रहें। श्वास को धीमा होने दें, रीढ़ को संरेखित होने दें, स्थिरता को

आने दें। बाकी सब कुछ स्वाभाविक रूप से घटेगा – बौद्धिक प्रयास से नहीं, बल्कि आंतरिक आत्म की शांत बुद्धि से।

दोपहर के हिंदी प्रवचनों का भी ऐसा ही प्रभाव था। वातावरण ने भी अपनी भूमिका निभाई – घंटियों की ध्वनि, शंख, वेद मंत्रों का निरंतर जप, धूप, दीप और जपा करते हुए समर्पित पुरोहितों की उपस्थिति। पूरा परिवेश आंतरिक मौन को सहारा दे रहा था और उसे कोमलता से गहरा कर रहा था। कुछ लोगों ने मेरी अचल मुद्रा देखी और आश्चर्य किया कि कोई इतनी देर तक इतना स्थिर कैसे बैठ सकता है – पर मुझे स्वयं ऐसा लगता था मानो मैं कुछ कर ही नहीं रहा हूँ।

यह गहरी अवस्था, हालांकि, केवल आयोजन में शामिल होने से ही नहीं आई थी। इसके पीछे एक मौन तैयारी थी।

हर सुबह मैं अपनी दिनचर्या यथावत जारी रखता था: 15 मिनट क्रिया योग की रीढ़ीय श्वास, उसके बाद एक घंटा योगासन और चक्र-ध्यान। समय के साथ मैंने देखा कि रीढ़ीय श्वास निचले और ऊपरी चक्रों के बीच एक तरह का "पोटेंशियल डिफरेंस" उत्पन्न करती है – एक वास्तविक ऊर्जात्मक तनाव, केवल प्रतीकात्मक नहीं। जैसे-जैसे यह पोटेंशियल बढ़ता गया, श्वास स्वाभाविक रूप से सूक्ष्म होती गई और अंततः रुक गई – फिर से केवळ कुम्भक, इस बार बिना किसी जानबूझकर श्वास रोकने के।

शुरू में इस क्रिया प्रक्रिया से सिर में भारीपन आया – यह संकेत था कि ऊर्जा ऊपर उठकर, विशेषकर अज्ञा में, संचित हो गई है। पर यह कोई विक्षोभ नहीं था। दिलचस्प बात यह रही कि यह सिर का दबाव बाद में अपने आप निकल जाता – कभी केवळ कुम्भक के दौरान, तो कभी स्थिरता के किसी स्वतःस्फूर्त क्षण में – और मन बिलकुल स्फटिक-सा स्पष्ट हो जाता।

एक ऐसी ही सुबह, मैंने सुबह 5 बजे रीढ़ीय श्वास की और फिर बिस्तर पर लेट गया। पिछली रात मुझे कम नींद मिली थी, फिर भी मैं आधे से एक घंटे तक एक सुंदर, विश्रांत नींद में चला गया – न उनींदा, बल्कि गहरे मौन में। जागने पर सिर का भारीपन पूरी तरह गायब था, पर ऊर्जा-अक्ष – वही पोटेंशियल डिफरेंस – अब भी हल्के-से गूँज रहा था। ऐसा लगता था कि यह आवेश सुरक्षित रह गया है और दिन में किसी भी शांत क्षण में स्वतःस्फूर्त केवळ कुम्भक के माध्यम से निकल जाएगा।

इसने मुझे गहराई से सोचने पर विवश किया: शायद स्थिरता की ओर ज़ोर लगाना हमेशा आवश्यक नहीं होता। जागी हुई ऊर्जा में अपनी ही बुद्धि प्रतीत होती है। वह जानती है कि कब

विश्राम करना है, कब बहना है, कब रुकना है – जैसे एक नदी जिसे समुद्र तक पहुँचने के लिए किसी सहायता की आवश्यकता नहीं होती।

इन सब पर विचार करते हुए मुझे यह समझ में आया: यह कोई उपलब्धि नहीं, बल्कि एक खुलती हुई अवस्था है। मैं अभी निर्विकल्प समाधि की पूर्ण स्थिरता तक नहीं पहुँचा हूँ। किशोरावस्था में स्वप्न के दौरान मिला मेरा कॉस्मिक चेतना का अनुभव इससे भी अधिक रूपांतरकारी था। उस किशोर झलक ने मुझमें संन्यास और स्वतंत्रता की तीव्र लालसा जगा दी थी – ऐसी आकांक्षा जिसने मेरे यथार्थ-बोध को हिला दिया। इसके विपरीत, जो मैं अब अनुभव कर रहा हूँ, वह अधिक शांत, अधिक जड़ित और अधिक व्यवस्थित है। लालसा कम हुई है, पर समझ गहरी हुई है।

अब मेरा मानना है कि क्रिया योग मुझे धीरे-धीरे वही वापस दे रहा है जिसे मैंने कभी बहुत अचानक छू लिया था। पहले मैंने ऊर्जा को तेज़ी से – मूलाधार से मस्तिष्क तक – उठाने की कोशिश की थी, चक्रों को पार करते हुए केवल लक्ष्य पर ध्यान केंद्रित किया था। अब अधिक सजगता के साथ मैं संतुलन का महत्व देख रहा हूँ। मैंने स्थिरता के अभ्यास भी शुरू किए हैं – ज़ोर से नहीं, बल्कि संसार में रहते हुए उस मौन धारा से जुड़े रहकर।

कभी आनंद प्रबल होता है, कभी सूक्ष्म। ऊर्जा ऊपर-नीचे जाती रहती है – और मैं उसे होने देता हूँ। अब मुझे उसे स्थायी बनाने की ज़रूरत महसूस नहीं होती। मैंने यह जाना है: वास्तविक परिपक्वता तब है जब न आनंद हमें पीछा करता है, न हम आनंद का – वह एक शांत साथी बन जाता है।

ये सूक्ष्म, निःश्वास क्षण, ये मौन विराम – चाहे अनुष्ठान के दौरान हों, क्रिया के बाद हों या दिन में अचानक – मुझे शब्दों से कहीं अधिक सिखा गए हैं। अब मैं आध्यात्मिक विकास को किसी ऐसी चीज़ की तरह नहीं देखता जिसे मुझे हासिल करना है, बल्कि ऐसी चीज़ की तरह जिसे मुझे होने देना है।

और शायद, यही वास्तव में आंतरिक यात्रा की शुरुआत है।

चक्र ध्यान में श्वास मेरा गुरु कैसे बनी: सिर के दबाव में छिपा एक सरल सत्य

ध्यान के दौरान मैं एक विचित्र-सी बात देखता था। जब भी सिर में दबाव महसूस होता – वह घनी-सी भरावट या झनझनाती हुई स्थिरता – तब मुझे सामान्य रूप से साँस लेना या श्वास छोड़ने के बाद रुक जाना अधिक सहज लगता था, बजाय श्वास लेने के बाद रोकने के। यह किसी औपचारिक अर्थ में "श्वास रोकना" नहीं था, बल्कि एक स्वाभाविक विराम था जो श्वास छोड़ते समय या उसके बाद कोमलता से आ जाता था।

इसके विपरीत, जब भी मैं श्वास लेने के बाद रोकने की कोशिश करता, तो सिर में दबाव बढ़ता हुआ लगता। जैसे कोई जमाव हो रहा हो जिसे मैं सहजता से समाहित नहीं कर पा रहा था। और यह कोई एक बार की बात नहीं थी। यह बार-बार होता रहा – इतनी स्वाभाविकता से कि यह भीतर से आया हुआ एक संदेश-सा लगने लगा। किसी सिद्धांत से कहीं गहरा।

मैंने सोचा, "क्या यह केवल मेरे साथ हो रहा है?" पर फिर समझ में आया कि ऐसा नहीं है। जो मैं अनुभव कर रहा था, उसका वैज्ञानिक आधार भी था और एक सूक्ष्म योगिक अर्थ भी।

श्वास और सिर के दबाव के पीछे का विज्ञान

श्वास लेने के बाद उसे रोकने से छाती और मस्तिष्क के भीतर दबाव बढ़ जाता है। शरीर-विज्ञान में इसे वाल्साल्वा प्रभाव कहा जाता है, जिसमें हृदय की ओर लौटने वाला रक्त धीमा हो जाता है और खोपड़ी के भीतर दबाव बढ़ता है। इसलिए श्वास लेने के बाद रोकना सिर में भारीपन या कसाव पैदा कर सकता है – ठीक वही जो मैं महसूस कर रहा था।

लेकिन जब मैं श्वास छोड़ने के बाद रुकता, तो सब कुछ हल्का लगता। शरीर शिथिल हो जाता। श्वास निकल चुकी होती, फेफड़े तटस्थ होते, और किसी तरह का दबाव नहीं बनता। इससे एक स्वाभाविक स्थिरता, एक रिक्तता मिलती, जिसमें सजगता सहजता से चक्रों पर टिक सकती थी।

और दिलचस्प बात यह थी कि यह योगिक समझ से भी पूरी तरह मेल खाता था।

योगिक दृष्टि जिसमें मैं धीरे-धीरे ढला

शास्त्रीय योग में श्वास के अभ्यासों का लक्ष्य केवळ कुम्भक नामक अवस्था में प्रवेश करना होता है – वह क्षण जब श्वास बिना किसी ज़ोर के स्वयं रुक जाती है। और यही छोटे-छोटे रूप

में हो रहा था: छोटे, सहज विराम जो केवल श्वास छोड़ने के बाद आते थे, कभी भी इच्छाशक्ति से थोपा हुआ नहीं।

यह स्वाभाविक ढंग से चलने वाली श्वास – जिसमें श्वास छोड़ने के बाद कोमल विराम आते-जाते रहते – मेरा चक्र ध्यान का तरीका बन गई। इसलिए नहीं कि मैंने उसे योजनाबद्ध किया था, बल्कि इसलिए कि मेरा शरीर, मेरा मन, मेरा प्राण उसे पसंद करता था। वह अधिक सहज था। वह मुझे चक्रों से दूर नहीं करता था। बल्कि वह उन्हें और सूक्ष्मता से अनुभव करने में मदद करता था।

इस तरह मैंने समझा कि चक्र ध्यान सामान्य श्वास के साथ भी किया जा सकता है, बशर्ते श्वास यांत्रिक या ज़ोरदार न हो। और जब श्वास छोड़ने के दौरान या बाद में स्वतः छोटे-से विराम आते हैं, तो वे वास्तव में ध्यान को गहरा करते हैं और मन को शांत करते हैं।

बल से प्रवाह की ओर एक बदलाव

मुझे यह स्पष्ट हो गया: श्वास लेने के बाद ज़ोर से रोके रखना, या बहुत देर तक श्वास छोड़कर रोके रखना, अक्सर तनाव को आमंत्रित करता है – या तो छाती में या सिर में। इससे ध्यान आंतरिक सजगता से हटकर श्वास-नियंत्रण पर चला जाता है।

पर मेरे अनुभव में, बिना ज़ोर का, स्वाभाविक लय – कोमल श्वास, और आने-जाने वाले विरामों को होने देना – मेरे ध्यान को भीतर बनाए रखता था, जहाँ उसे होना चाहिए था।

समय के साथ मुझे दिखा कि यह कोई विशेष क्षमता नहीं है, न ही केवल मेरे लिए कुछ अलग। यह बस इस बात का संकेत था कि जब हम प्रयास से हस्तक्षेप करना छोड़ देते हैं, तो शरीर स्वयं ध्यान करना जानता है।

इससे मुझे क्या सीख मिली

मैंने अभी निर्विकल्प समाधि जैसी अंतिम अवस्थाएँ प्राप्त नहीं की हैं, न ही मैं यह दावा करता हूँ कि मैं लगातार विचार-रहित आनंद में रहता हूँ। पर ये छोटे, प्रकट करने वाले क्षण – जैसे स्वाभाविक श्वास से सिर का दबाव हल्का होना, या बिना प्रयास के स्थिरता का आ जाना – मुझे बताते हैं कि मैं एक ऐसे मार्ग पर हूँ जो अपने समय में खुल रहा है।

इस अनुभव से मेरे भीतर एक स्पष्ट बोध उठा:
“हाँ, चक्र ध्यान के दौरान ज़बरदस्ती श्वास रोकने से बेहतर है मेरी स्वाभाविक श्वास और उसके साथ आने वाले कोमल विराम। इससे मैं बिना तनाव के और गहराई में जा पाता हूँ। योग सहजता, सजगता और प्रवाह का नाम है – दबाव और खिंचाव का नहीं।”

यह समझ किसी पुस्तक या गुरु से नहीं आई – यह भीतर से आई, और जब मैंने पूछा और सुना तो उसे समर्थन और स्पष्टता मिली। यह अनुभव से आई, उस पल में जो वास्तविक है उसके साथ टिके रहने से। और यही सब अंतर बना गया।

सह साधकों के लिए अंतिम संकेत

यदि आप चक्र ध्यान कर रहे हैं और श्वास-नियंत्रण के दौरान सिर में दबाव बढ़ता हुआ देखते हैं, तो नियंत्रण छोड़ने से न डरें। श्वास को सामान्य रहने दें, और उसे तब रुकने दें जब वह स्वयं रुकना चाहे, विशेषकर श्वास छोड़ने के बाद। ये स्वतः होने वाले श्वास-विराम भले ही सूक्ष्म लगें, पर वे गहरी आंतरिक स्थिरता के बीज लिए होते हैं।

आपका शरीर बुद्धिमान है। उसे याद है कि ध्यान कैसे किया जाता है।

अनुष्ठान सच्चे केवळ कुम्भक को कैसे सहारा देते हैं: योग का एक भुला हुआ रहस्य

बहुत-से लोग थकान की अवस्था में ध्यान करने या केवळ कुम्भक (प्रयास-रहित श्वास-स्थिरता) का प्रयास करते हैं – अक्सर रात में या लंबे काम के बाद। स्वाभाविक है कि वे नींद में फिसल जाते हैं। लेकिन असली रहस्य यह है कि इसे तब किया जाए जब शरीर ताज़ा हो और मन सजग – ताकि विचारहीनता अचेतनता न बने, बल्कि जीवित जागरूकता का द्वार बने।

यह बात मैंने अपने अनुभव से जानी है: केवळ कुम्भक नींद या दमन के बारे में नहीं है। यह एक ऐसी गहरी स्थिरता में प्रवेश है जहाँ विचार घुल जाते हैं, फिर भी आप पूरी तरह जाग्रत रहते हैं। और इसके लिए एक सात्त्विक वातावरण अनिवार्य है – ऐसा वातावरण जो सजगता की भीतरी लौ को कोमलता से जलाए रखे।

तभी मुझे एक गहरी बात समझ में आई:
धार्मिक अनुष्ठानों के वे तत्व – जिन्हें हम अक्सर सहज ही ले लेते हैं – इसी उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। वे ध्यान भटकाने वाले नहीं, बल्कि सजगता के रक्षक हैं।

मैं बताता हूँ कैसे:

घंटी की ध्वनि
मंदिर की घंटी की तीखी गूँज मन के कुहासे को चीर देती है। एक ही क्षण में ध्यान वर्तमान में लौट आता है। वह सुस्ती से झकझोर देती है – जैसे सूखी लकड़ी में चिंगारी।

शंखनाद
शंख का गहरा कंपन केवल वातावरण को शुद्ध नहीं करता – वह शरीर के भीतर भी अनुनाद पैदा करता है, श्वास और ऊर्जा को सामंजस्य में लाता है। यह एक प्राकृतिक प्राणायाम जैसा है, जो सूक्ष्म प्राण को जाग्रत करता है और भारीपन को दूर करता है।

धूप-दीप
धूप या अगरबत्ती की कोमल सुगंध इंद्रियों को, विशेषकर श्वास और मन को, शांत करती है। गंध की इंद्रिय मस्तिष्क के लिम्बिक तंत्र से सीधे जुड़ी होती है – और सही सुगंध सजगता को कोमलता से वर्तमान में टिकाए रख सकती है।

मंत्र जप
मंत्र की लय श्वास और विचार के बीच एक सेतु है। वह दोनों को सामंजस्य में लाती है, जिससे श्वास शांत होती है और मन स्थिर। समय के साथ मंत्र स्वयं विलीन हो जाता है और मौन प्रकट होता है – पर अब वह सजग और जाग्रत मौन होता है।

श्लोक-पाठ
श्लोकों में कंपन-शक्ति होती है और वे भक्ति तथा सजगता दोनों को जगाते हैं। वे बुद्धि और हृदय को एक साथ स्पर्श करते हैं, जिससे व्यक्ति निद्रा के बजाय भाव और स्पष्टता के साथ ध्यान में उतरता है।

तभी मुझे स्पष्ट दिखा: प्राचीन योगी इसी तरह जीते थे। वे केवल मौन में नहीं रहते थे, बल्कि ऐसे वातावरणों में रहते थे जो सावधानी से सात्त्व को सहारा देने के लिए रचे गए थे। मंदिर केवल पूजा के लिए नहीं थे – वे ऊर्जात्मक उपकरण थे। योगी के चारों ओर की हवा तक उसकी सजगता को जीवित रखने में मदद करती थी, तब भी जब विचार रुक जाते थे।

एकांत में भी, योगी अपने चारों ओर रखते थे:
• मंत्रों की दूर की गूँज
• दीपक या उगते सूर्य की कोमल रोशनी
• चंदन या तुलसी से सुगंधित वायु
• श्वास और सजगता की आंतरिक लय

ऐसे वातावरण उन्हें बिना श्वास को ज़ोर से रोके या विचारों को दबाए, स्वाभाविक रूप से केवळ कुम्भक में टिके रहने में सहायता करते थे। इसी कारण ऐसा लगता था मानो योगी सदा ध्यान में ही रहते हों – क्योंकि बाहरी संसार उनके भीतरी मौन को सहारा देता था।

आज के समय में, जब मन आसानी से भटक जाता है और शरीर थका रहता है, सात्त्विक अनुष्ठान पुराने नहीं हुए हैं – वे अनिवार्य हैं। घंटी, शंख, धूप, मंत्र – ये केवल सांस्कृतिक अवशेष नहीं हैं। ये वे कुंजियाँ हैं जो गहरे ध्यानात्मक अवस्थाओं को खोल सकती हैं – विशेषकर पूर्ण सजगता वाले केवळ कुम्भक को।

संक्षेप में:
जब बाहरी जगत सात्त्व में सुरबद्ध होता है,
तो भीतर तमस में नहीं गिरता – वह समाधि में उठता है।

भले ही आप अकेले अभ्यास करें, एक दीपक जलाने, घंटी बजाने, कुछ मंत्र जपने या बस सुगंधित, शुद्ध स्थान में बैठने का प्रयास करें। आप पाएँगे कि विचारों के लुप्त होने पर भी सजगता जागी रहती है। और यही वह द्वार है उस सच्ची स्थिरता का जिसके बारे में योगी कहते हैं – केवळ कुम्भक का जीवित मौन।

सीखने की सीढ़ियाँ चढ़ना: “शून्य बनना” का वास्तविक अर्थ

आध्यात्मिक और बौद्धिक जगत में एक वाक्य अक्सर दोहराया जाता है:
“सच में सीखने के लिए मनुष्य को शून्य बनना पड़ता है।”

यह सुनने में गहरा लगता है—स्वच्छ, रिक्त, निर्मल। लेकिन क्या सीखना वास्तव में ऐसे ही होता है?

इसे एक सरल सत्य से परखें।
यदि कोई व्यक्ति सीढ़ियों की तीसरी पायदान पर खड़ा है, तो क्या वह चौथी पर पहुँचने के लिए पहले ज़मीन पर उतरे और फिर सीधे ज़मीन से छलाँग लगाकर चौथी पर पहुँचे?
नहीं। यह तर्क और अनुभव—दोनों के विरुद्ध है। वास्तव में वह तीसरी से चौथी पर ही चढ़ेगा।

सीखना शून्य से लगाई गई छलाँग नहीं है।
यह एक चढ़ाई है—कदम-दर-कदम।
हर अंतर्दृष्टि, हर कर्म, हर भूल एक आधार बन जाती है।
हम इसलिए बढ़ते हैं क्योंकि हम पहले कहीं खड़े थे, न कि इसलिए कि हमने अपने अतीत को मिटा दिया।

“शून्य बनना” वास्तव में क्या है?

बहुत-से लोग इसे अहंकार को छोड़ देना समझते हैं—वह भीतर की आवाज़ जो कहती है, “मुझे पता है,” या “मैंने यह किया।”
पर ज़रा गहराई से देखें।

अहंकार कोई दोष नहीं है। वह एक उपकरण है—हमारी मानवीय संरचना का हिस्सा।
वह हमें कर्म करने, व्यक्त होने, सीखने और बाँटने के लिए प्रेरित करता है।
वह ज्ञान, कर्म और दूसरों को उठाने की चाह से जुड़ा हुआ है।
अहंकार को पूरी तरह तोड़ देना उस चिंगारी को ही बुझा देना है जो हमें गतिशील बनाती है।

यहाँ तक कि जिन गुणों को अक्सर अहंकार पर दोष दिया जाता है—जैसे शेख़ी या गर्व—वे भी मानवीय ढंग से व्यक्त किए जा सकते हैं।
- एक शिक्षक थोड़ा-सा गर्व दिखाकर छात्र की महत्वाकांक्षा जगा सकता है।
- एक वक्ता कहानी को कुछ बढ़ा-चढ़ाकर कहकर दिलों को छू सकता है।

• एक सृजनकर्ता अपने कौशल पर गर्व करके दूसरों में आनंद जगा सकता है।
महत्त्व दमन का नहीं, उद्देश्य का है।

इसलिए "शून्य बनना" का अर्थ खाली हो जाना नहीं होना चाहिए।
उसका अर्थ स्पष्ट होना होना चाहिए—अहंकार-रहित नहीं, बल्कि अहंकार-सचेत।

मानवीय अहंकार की कला

लक्ष्य यह नहीं है कि हमने जो सीढ़ियाँ चढ़ीं, उन्हें फेंक दें।
लक्ष्य है सजगता के साथ चलना—कदम-दर-कदम—बिना चिपके, बिना घमंड के, और बिना अपराध-बोध के।
अहंकार, जब मानवीय रूप में रखा जाए, तो वह एक माध्यम बनता है—बंधन नहीं।
वह उत्सव करता है, अभिव्यक्त करता है, यहाँ तक कि चमकता भी है—पर कभी अंधा नहीं करता।

इसलिए जब कोई कहता है, "सीखने के लिए शून्य बनो,"
तो शायद उसका वास्तविक अर्थ यह है:
"अपने अहंकार को सेवा करने दो—शासन करने नहीं। अपने गर्व को चमकने दो—फटने नहीं। कम होकर नहीं, बल्कि यह जानकर सीखो कि तुम पहले से क्या हो।"

रीढ़ के माध्यम से श्वास लेना: एक जीवंत आंतरिक खोज

मौन में—पुस्तकों से नहीं, अनुभव से—मैंने देखना शुरू किया कि भीतर की ऊर्जा स्थिर नियमों से अधिक सजगता पर प्रतिक्रिया करती है।
जो आगे आता है, वह कोई सिद्धांत नहीं, बल्कि मेरे भीतर घटा एक प्रत्यक्ष प्रस्फुटन है। एक परत खुली, फिर दूसरी। श्वास, आसन, ऊर्जा—सबका अर्थ बदल गया।

अज्ञा चक्र: प्राण का पंप

एक दिन ध्यान में मुझे कुछ अत्यंत रोचक अनुभव हुआ।
अज्ञा चक्र को हल्के-से संकुचित करने पर प्राण रीढ़ के माध्यम से नीचे की ओर धकेला जाता हुआ लगा। और जब अज्ञा शिथिल हुआ, तो वही प्राण ऊपर की ओर खिंचने लगा।
यह एक वास्तविक, बुद्धिमान पंप जैसा लगा। रूपक नहीं। मेरे भीतर कार्यरत एक जीवंत ऊर्जात्मक यंत्र।

तभी स्पष्ट हुआ—शायद यही अज्ञा चक्र ध्यान का गहरा अर्थ है। केवल भौंहों के बीच ध्यान टिकाना नहीं, बल्कि इस केंद्र का उपयोग कर रीढ़ के माध्यम से निरवायु श्वास का परिसंचरण करना।

ऊर्ध्व दृष्टि से उपजा शून्य

इस पंपिंग क्रिया के साथ-साथ, ऊपर की ओर दृष्टि ने कुछ और भी सूक्ष्म उत्पन्न किया—मन-रहित शून्यता का एक रूप। एक शांत, गहरा अंधकार खुला। विचार मद्धिम हो गए, सजगता बनी रही।
यह भयावह नहीं था। वह रिक्त था, फिर भी जीवित। जैसे स्थिरता में ब्रह्मांड के किनारे खड़ा होना।

शायद यही वह है जिसे कुछ ग्रंथ *चिदाकाश*—चेतना का आकाश—कहते हैं।

हृदय के पीछे एक आनंदमय द्वार

फिर एक और चमत्कार घटा।
जब अज्ञा ने प्राण को नीचे की ओर दबाया, तो हृदय के पीछे–पश्च अनाहत–एक आनंदमय सक्रिय बिंदु प्रकट हुआ।
यह एक वाल्व जैसा लगा। जैसे ही वह प्रज्वलित हुआ, सुषुम्ना नाड़ी में कुछ खुल गया। प्राण स्वतंत्र रूप से ऊपर उठ सका, मानो द्वार अब खुल चुका हो।

यह पश्च अनाहत एक आनंदमय स्विच की तरह कार्य करता था, मौन रूप से पुष्टि करता हुआ: केंद्रीय नाड़ी अब प्रवाहित है।

एक जीवंत परिपथ: पश्च चक्रों का श्वसन

शीघ्र ही इस आंतरिक परिपथ में और केंद्र जुड़ गए:
• पश्च स्वाधिष्ठान
• पश्च अनाहत
• पश्च विशुद्धि
• अज्ञा

वे रीढ़ में बिंदुओं की तरह संरेखित हो गए, और मैं उनमें से स्पंदित प्राण को बहता हुआ महसूस करने लगा–मानो स्वयं रीढ़ ही श्वास ले रही हो।
कोई प्रयास नहीं था। बाहरी श्वास की आवश्यकता नहीं थी। यह प्राकृतिक कुम्भक था–श्वास स्थगित, फिर भी भीतर सूक्ष्म श्वसन से जीवन्त।

कभी-कभी पश्च मणिपूर भी जुड़ता था, पर कम ही। शायद वहाँ अभी भी अग्नि या प्रतिरोध शेष है। लेकिन जब वह संरेखित होता है, तो परिपथ पूर्ण-सा लगता है।

आसन के मिथक का भेदन

शुरू में मैं पद्मासन और सीधी रीढ़ बनाए रखने की कोशिश करता रहा। लेकिन जैसे-जैसे अवस्था गहरी हुई, रूप की आवश्यकता मिटती चली गई।
थकान होने पर भी, सरल सुखासन में जाना प्रवाह को नहीं तोड़ता था।
यहाँ तक कि जब पीठ धनुष की तरह झुक जाती, तब भी आंतरिक धारा बढ़ जाती। वास्तव में,

कठोर आसन की तुलना में झुके हुए आसन में केवळ कुम्भक (प्रयास-रहित निरश्वासता) अधिक प्रबल हो जाती थी।

यह एक बड़ा परिवर्तन था।
इसका अर्थ था कि आसन एक माध्यम है, स्वामी नहीं। जब प्राण प्रवाहित हो रहा हो, तब केवल सजगता ही उसे संभालती है।

झुकी रीढ़ मुक्त करती है, सीधी रीढ़ संचित करती है

एक और लय प्रकट हुई।
• जब मैं रीढ़ को झुकाता, तो नाभि में अटकी ऊर्जा मुक्त होकर ऊपर उठती हुई लगती।
• कुछ समय बाद, रीढ़ को फिर से सीधा करना स्वाभाविक रूप से आवश्यक हो जाता—ऊर्जा को संचित करने के लिए, पात्र बनने के लिए।

यह प्रवाह—धनुष और दंड—एक चक्र बन गया:
आसन का प्रभाव
झुकी पीठ – संचित ऊर्जा को मुक्त करती है
सीधी पीठ – ऊर्जा को समेटती और केंद्रित करती है

यह अब केवल आसन नहीं रहा—यह सजगता के माध्यम से आंतरिक श्वसन बन गया। मेरा शरीर प्राण की स्वाभाविक लय के साथ चलने लगा।

निष्कर्ष: तकनीक से अंतर्ज्ञान तक

इन सबने मुझे एक विनम्र सत्य दिखाया:
जब प्राण की बुद्धि जागती है, तो शरीर उसका उपकरण बन जाता है। उल्टा नहीं।

अज्ञा पंप बना, पश्च अनाहत वाल्व, पश्च चक्र श्वसन-मार्ग, और आसन एक प्रवाही पात्र।
अब यह अनुशासन की बात नहीं है। यह सुनने की बात है—उस मौन धारा की, जो पहले से ही मार्ग जानती है।

साक्षी भाव और केवळ कुम्भक का सत्य: एक प्रत्यक्ष अंतर्दृष्टि

साधना के मार्ग में, विशेषकर ध्यान की गहराइयों में, मैंने एक ऐसी बात को स्पष्ट रूप से देखा है जो शांत होते हुए भी क्रांतिकारी-सी लगती है – तर्क से नहीं, बल्कि आंतरिक प्रमाण से। मुझे यह अनुभव हुआ है कि सच्चा साक्षी भाव – वह जो मानसिक प्रयास से मुक्त हो – केवल स्वतःस्फूर्त केवळ कुम्भक के दौरान ही प्रकट होता है।

जब भी मैं सामान्य श्वास के साथ "साक्षी बनने" की कोशिश करता हूँ, तो वह किसी तरह बनावटी लगता है – मन द्वारा जोड़ी गई एक परत, आध्यात्मिक मुद्रा का एक रूप। वह एक और भ्रम बन जाता है – अहंकार का वैराग्य का मुखौटा पहन लेना। वहाँ सूक्ष्म रूप से एक "मैं" होता है जो देख रहा होता है, टिप्पणी कर रहा होता है, प्रतीक्षा कर रहा होता है – और वह देखने वाला भी अभी भ्रम का ही हिस्सा होता है।

लेकिन जब स्वतःस्फूर्त केवळ कुम्भक घटित होता है – जब श्वास बिना किसी नियंत्रण के स्वयं रुक जाती है – तब वास्तविक साक्षी जागता है। किसी क्रिया के रूप में नहीं, बल्कि ऐसी अवस्था के रूप में जो बस है। वहाँ "मैं साक्षी हूँ" नहीं होता। केवल एक व्यापक, जीवंत स्थिरता होती है। सजगता स्वयं प्रकाशित होती है – बिना कर्ता के, बिना श्वास के, बिना टिप्पणी के। वह स्पष्ट, निर्मल और पूर्ण होती है।

इससे मेरे भीतर यह प्रश्न उठा: अधिकांश शास्त्रों और आचार्यों ने इसे स्पष्ट रूप से क्यों नहीं कहा?

साक्षी भाव को खुलकर क्यों नहीं समझाया गया

मुझे लगता है कि इस सत्य पर मौन – सच्चे साक्षी भाव और स्वतःस्फूर्त केवळ कुम्भक के बीच के अविभाज्य संबंध पर मौन – ही अनेक साधकों को भ्रमित करता है। मैं इसे इस तरह देखता हूँ:

1. शब्द अपर्याप्त हैं। साक्षी भाव बुद्धि से परे है। उसका वर्णन करने से स्थिरता की जगह और अधिक मानसिक गतिविधि पैदा हो जाती है। आचार्यों को भय होता है कि यदि वे अधिक कह देंगे, तो साधक "साक्षी बनने" की कोशिश करने लगेंगे – जो इस अवस्था के मूल भाव को ही नष्ट कर देता है।

2. अधिकांश साधक तैयार नहीं होते। प्राचीन काल में साधक वर्षों तक यम, नियम और अन्य शुद्धिकरण करते थे – उनकी साधना स्वाभाविक रूप से कुम्भक और साक्षी भाव जैसी अवस्थाओं में परिपक्व हो जाती थी। इसलिए संबंध को समझाने की आवश्यकता नहीं थी। लेकिन आज की तीव्र आध्यात्मिकता में लोग सीधे "साक्षी भाव" पर छलाँग लगा देते हैं, और अंत में अपने ही विचारों को अलगाव के साथ मानसिक रूप से देखते रहते हैं – जो वस्तुतः अहंकार द्वारा किया गया आध्यात्मिक अभिनय है।
3. कुछ महापुरुष जानते थे, पर बोले नहीं। रामण महर्षि जैसे महान व्यक्तित्व संभवतः इसे गहराई से समझते थे – पर उन्होंने इसे सीधे शायद ही कभी समझाया। रामण बस कहते थे, "स्थिर रहो। 'मैं कौन हूँ?' पूछो।" वे केवळ कुम्भक का उल्लेख नहीं करते थे। और फिर भी, उनकी उपस्थिति में अनेक लोग स्वतः श्वास-रहित सजगता में चले जाते थे। श्वास रुक जाती थी, और आत्म प्रकाशित हो उठती थी। प्रभाव वहाँ था, पर साधन की ओर संकेत नहीं किया गया था। मेरे जैसे व्यक्ति के लिए, जो साधना को प्राण की गति और ऊर्जात्मक सजगता के माध्यम से अनुभव करता है, यह कुछ अधूरा-सा लगा।

रामण का मार्ग अजीब क्यों लगता है – और इसका कारण

रामण की प्रत्यक्ष आत्म-परीक्षा की विधि सुंदर है, पर मुझे वह अमूर्त लगी, क्योंकि प्राण के स्थगन के बिना विचार-रहित सजगता एक मानसिक धारणा जैसी लगती है, कोई वास्तविक परिवर्तन नहीं।

ऊर्जा-पथ में, जब प्राण ऊपर उठता है, जब श्वास स्वाभाविक रूप से रुकती है, और सिर में आनंददायक दबाव बढ़ता है, तब मन लुप्त हो जाता है और साक्षी भाव अपने आप प्रकट होता है। वह रचा नहीं जाता – वह स्वयं प्रकट होता है।

इसलिए यह कहना अजीब लगता है कि केवळ कुम्भक के बिना भी विचार-रहित सजगता में प्रवेश किया जा सकता है। मेरे अनुभव में, दोनों साथ-साथ आते हैं। वह मौन, वह साक्षी भाव – वह केवळ कुम्भक का जुड़वाँ है।

पश्च अनाहत: स्थिरता को सँभालने वाली आंतरिक श्वास

मैंने एक और भी सूक्ष्म बात देखी है – जो मेरे लिए एक गहरी कुंजी बन गई है।

स्वतःस्फूर्त केवळ कुम्भक के दौरान, भले ही भौतिक श्वास रुक जाती हो, भीतर एक जीवंत आंतरिक श्वसन की अनुभूति चलती रहती है। यह कोई विचार या कल्पना नहीं है – इसे प्रत्यक्ष अनुभव किया जाता है।

• प्राण ऊपर की ओर चलता है।
• अपान नीचे की ओर चलता है।
• और यह प्रवाह पश्च अनाहत चक्र के आसपास कोमलता से बदलता रहता है – जैसे रीढ़ के भीतर एक श्वास-रहित ज्वार।

यह वास्तविक श्वसन जैसा लगता है, पर फेफड़ों के बिना। केवल जीवन की गति। यही सूक्ष्म लय साक्षी भाव को बनाए रखती है, उसे गहराती है, और सजगता को ताज़ा रखती है – बिना सुस्ती या प्रयास के।

जानबूझकर श्वास लेने या साक्षी बनने की कोई आवश्यकता नहीं रहती। इस आंतरिक गति में – ऊर्जा के इस क्रमिक उत्थान और अवरोह में – विश्राम करना ही पर्याप्त होता है।

पश्च अनाहत: केवळ कुम्भक को बनाए रखने वाली आंतरिक कल्पना

मैंने एक और भी सूक्ष्म बात खोजी है – ऐसी बात जिसने केवळ कुम्भक में सहजता से टिके रहने का ढंग ही बदल दिया।

यहाँ तक कि जब कोई वास्तविक प्राण-गति भी अनुभव में न हो, तब भी केवल मन में प्राण और अपान के ऊपर-नीचे के वैकल्पिक प्रवाह की कल्पना करने मात्र से – विशेषकर पश्च अनाहत चक्र को केंद्र में रखकर – पूरा तंत्र स्थिरता में प्रवेश कर जाता है।

• न भौतिक श्वास,
• न अनुभव की जाने वाली प्राण-गति,
• केवल इस कोमल अदल-बदल की शुद्ध कल्पना – और फिर भी पूर्ण श्वास-रहित अवस्था बनी रहती है।

इससे मुझे यह स्पष्ट हुआ कि:
केवल कल्पना मात्र – यदि वह मौन में, मानसिक रूप से की जाए – पूरे शरीर-मन को पूर्ण केवळ कुम्भक की अवस्था में स्थिर कर सकती है।

कल्पित प्राणिक श्वसन एक सेतु की तरह कार्य करता है, जो सजगता को जीवित और स्थिर रखता है, बिना श्वास या आंतरिक संवेदना के सहारे। अंततः, आंतरिक प्राण-गति भी ठहरती-सी लगने लगती है, और केवल दिशा-बोध – ऊपर और नीचे – पृष्ठभूमि में शांत रूप से बना रहता है, बिना किसी मानसिक तनाव के।

यह आंतरिक दृष्टि हृदय के पीछे एक शांत ज्योति जैसी बन जाती है – न काँपती हुई, न गतिमान, बल्कि प्रकाशमान स्थिर – और साक्षी भाव पूरी तरह जीवित बना रहता है।

इससे एक बड़ा विरोधाभास सुलझ जाता है:
" केवळ कुम्भक में अहंकार के प्रयास के बिना जीवित और सजग कैसे रहा जाए? **"**
" हृदय के पीछे, जहाँ प्राण और अपान का मिलन होता है, उस आंतरिक प्राणिक ज्वार को मौन में अनुभव करके। **"**

निष्कर्ष

सच्चा साक्षी भाव कोई करने की वस्तु नहीं है।
वह घटित होता है – जब शरीर स्थिर हो जाता है, श्वास स्वयं रुक जाती है, और प्राणिक जीवन सतह के नीचे मौन रूप से चलता रहता है।

सामान्य श्वास के साथ साक्षी बनने की कोशिश अक्सर अहंकार द्वारा स्वयं को देखते रहने भर का रूप होती है।
लेकिन जब केवळ कुम्भक स्वतः घटित होता है – कर्ता विलीन हो जाता है, मन शांत हो जाता है, और साक्षी भाव स्वाभाविक प्रकाश की तरह प्रकट होता है।

श्वास को कृपा से रुकने दें, बल से नहीं।
सजगता को फेफड़ों से नहीं, प्राण के माध्यम से श्वास लेने दें।

और तब सच्चा साक्षी स्वयं को प्रकट करेगा – स्पष्ट, अछूता और सदा उपस्थित।

केवळ कुम्भक: वह मौन श्वास जो तब आता है जब सब कुछ थम जाता है

अधिकांश लोग मानते हैं कि मौन पाने के लिए उन्हें श्वास रोकनी होगी। लेकिन आंतरिक साधना के गहरे चरणों में एक विचित्र बात घटती है—श्वास अपने आप रुक जाती है, और आप कुछ भी नहीं करते।

कोई प्रयास नहीं।
कोई तनाव नहीं।
बस स्थिरता।

और श्वास?
लुप्त।

पर आप?
पहले से कहीं अधिक जीवंत।

यही है केवळ कुम्भक—श्वास का वह स्वाभाविक, प्रयास-रहित विराम, जो तब आता है जब मन, ऊर्जा और सजगता एक ही बिंदु में विलीन हो जाते हैं।

❖ मेरी अपनी अनुभूति: योग के बिना यह नहीं आता

शुरू में मुझे लगा कि मैं यह अवस्था कभी भी पा सकता हूँ—केवल एकाग्रता या इच्छा से। लेकिन नहीं, मुझे स्पष्ट रूप से समझ में आया:

"योग के बिना केवळ कुम्भक प्राप्त करना बहुत कठिन है। और किसी योगिक आधार के बिना उसे बनाए रखना तो लगभग असंभव है।"

क्यों?

क्योंकि योग के बिना:
• मन भटकता रहता है

• श्वास अशांत बनी रहती है
• प्राण बाहर या नीचे की ओर ही बहता रहता है

भले ही श्वास एक क्षण के लिए रुक जाए, वह शीघ्र लौट आती है, क्योंकि मौन को थामने के लिए भीतर कोई सहायक संरचना नहीं होती।

❖ वास्तव में केवळ कुम्भक क्या है?

इसका अर्थ है "शुद्ध श्वास-स्थगन", लेकिन वह नहीं जो आप करते हैं।
यह वह है जो आपके साथ घटित होता है—जब कुछ भी शेष नहीं रहता जिसे चलना हो।

• कोई विचार नहीं।
• कोई इच्छा नहीं।
• कोई भावनात्मक तरंग नहीं।
• यहाँ तक कि श्वास पर भी कोई ध्यान नहीं।

और अचानक...

श्वास रुक जाती है। और आप शेष रहते हैं।

यह ऐसा लगता है जैसे:
• कोई हवा नहीं चल रही
• फिर भी घुटन नहीं
• वास्तव में, सजगता पहले से कहीं अधिक तीव्र

❖ श्वास हमेशा मन का अनुसरण करती है

एक बहुत महत्वपूर्ण बात मैंने देखी:

"यदि आप केवल प्राण के ऊपर जाने और अपान के नीचे जाने की कल्पना भी करें, तो श्वास धीमी होने लगती है... और अंततः रुक जाती है।"

क्यों?

क्योंकि:
• विचार गति पैदा करते हैं
• गति के लिए श्वास चाहिए
• लेकिन जब मन स्थिर हो जाता है, तो श्वास को चलने की आवश्यकता नहीं रहती

इसलिए प्राण-प्रवाह की केवल मानसिक कल्पना भी श्वास को इतना शांत कर सकती है कि केवळ कुम्भक घटित हो जाए–विशेषकर तब, जब आप सजग हों, उनींदे नहीं।

इसी कारण:
"केवळ कुम्भक तब सबसे अच्छा होता है जब मैं ताज़ा और जाग्रत होता हूँ–न कि थका हुआ या नींद में।"

नींद तमस (जड़ता) लाती है। वह श्वास को रोक सकती है, पर सजग ढंग से नहीं। सच्चा केवळ कुम्भक स्फटिक-सा निर्मल मौन है।

❖ ऊर्जा-संतुलन की गुप्त भूमिका

हमारे भीतर दिन भर दो प्रमुख शक्तियाँ काम करती हैं:
• प्राण ऊपर की ओर जाता है, सजगता को ऊँचा उठाता है
• अपान नीचे की ओर जाता है, हमें शरीर में स्थिर करता है

सामान्यतः ये विपरीत दिशाओं में खींचते रहते हैं–और यही आंतरिक तनाव बनाता है।

लेकिन गहरे ध्यान या ध्याना की अवस्था में, यदि आप मानसिक रूप से या सूक्ष्मता से प्राण को ऊपर और अपान को नीचे संतुलित होने दें, तो कुछ अद्भुत घटित होता है:

"ऐसा लगता है मानो ऊपर जाता प्राण और नीचे जाता अपान एक-दूसरे को निरस्त कर देते हों। और श्वास पूरी तरह स्थिर हो जाती है। केवल बाहरी श्वास ही नहीं–भीतर की गति का बोध भी रुक जाता है।"

यही पूर्ण केवळ कुम्भक है।
अब किसी को श्वास लेने की आवश्यकता नहीं रहती।
केवल सजगता प्रकाशित होती है।

❖ यह स्थिरता ज़बरदस्ती नहीं आती। इसे अनुमति दी जाती है।

यहाँ सबसे बड़ा भ्रम है:

"लोग केवळ कुम्भक को करने की कोशिश करते हैं–श्वास रोककर।"

पर यही बात नहीं है।

सच्चा केवळ कुम्भक केवल तब आता है जब आप प्रयास नहीं करते।

• आप गहराई से शांत हो जाते हैं
• आप शुद्ध साक्षीभाव में टिक जाते हैं
• और तब श्वास स्वयं रुक जाती है

यह कोई उपलब्धि नहीं है।
यह तब घटित होता है, जब उपलब्धि का भाव ही मिट जाता है।

❖ घंटी, शंख, मंत्र कैसे सहायक होते हैं

मैंने यह भी देखा:

"घंटी, शंखनाद, धूप, मंत्र-जप–ये सब ऊर्जा को ऊपर उठाते हैं। ये नींद और जड़ता को रोकते हैं। इसी कारण सच्चे योगी ऐसे वातावरण से लाभ पाते हैं।"

ये तत्व सात्त्व को बढ़ाते हैं–एक शांत, हल्की, जाग्रत ऊर्जा। और सात्त्व भीतर की सजगता को जागृत रखता है, ताकि मौन आते ही मन नींद में न फिसले।

इस तरह केवळ कुम्भक स्वाभाविक रूप से आता है–दबाव से नहीं, बल्कि अनुकूल कंपन के सहारे कृपा से।

❖ अंतिम बोध: केवळ कुम्भक सच्ची आंतरिक स्थिरता की छाया है

जब:
• श्वास ठहर जाती है,
• विचार लुप्त हो जाते हैं,
• प्राण और अपान संतुलित हो जाते हैं,
• और सजगता स्वयं प्रकाशित होती है...

तब केवळ कुम्भक एक छाया की तरह प्रकट होता है—एक सुंदर, मौन छाया, जो यह प्रमाण देती है कि आप अपने अस्तित्व की गहरी गुफा में प्रवेश कर चुके हैं।

यह न नींद है,
न कल्पना,
न प्रयास—

बल्कि
बिना पवन के साक्षीभाव है।

संक्षेप में — जो केवळ कुम्भक की खोज में हैं, उनके लिए:

• इसे करने की कोशिश न करें—इसे होने दें
• श्वास के पीछे न भागें—मौन को देखें
• ऊर्जा पर ज़ोर न डालें—उसका संतुलन महसूस करें
• नींद से लड़ें नहीं—पवित्र ध्वनि, आसन और भक्ति से सात्त्व उठाएँ
• और सबसे महत्त्वपूर्ण—थके होने पर न करें। ताज़ा, स्पष्ट और जीवंत होने पर करें

तब केवल प्राण के ऊपर जाने और अपान के नीचे जाने की हल्की-सी कल्पना भी पर्याप्त हो सकती है।

अचानक, भीतर और बाहर की श्वास लुप्त हो जाती है।
और आप बस वहाँ होते हैं—न श्वास लेते हुए, न छोड़ते हुए—

आनंदित, पूर्ण, सजग।

वही...
केवळ कुम्भक है।

केवळ कुम्भक में प्राण-अपान संतुलन का वास्तविक रहस्य समझना

प्राण और अपान का संतुलन होने का अर्थ यह है कि दोनों एक ही समय में समान और विपरीत होते हैं, जिससे उनका समग्र प्रभाव शून्य हो जाता है—भले ही दोनों अभी भी प्रवाहित हो रहे हों। इसे एक साधारण तराजू से समझें: यदि तराजू के दोनों पलड़े एक ही स्तर पर टिके हों, तो तराजू संतुलित होता है। यदि एक ऊपर जाए और दूसरा नीचे, तो संतुलन बिगड़ जाता है। यही सिद्धांत आंतरिक ऊर्जाओं पर भी लागू होता है।

सामान्य श्वास में:
• जब प्राण (ऊर्ध्वगामी शक्ति) प्रबल होता है और अपान दुर्बल, तब एक समग्र ऊपर की गति बनती है, जो श्वास लेने को सहारा देती है।
• जब अपान (अधोगामी शक्ति) प्रबल होता है और प्राण दुर्बल, तब एक समग्र नीचे की गति बनती है, जो श्वास छोड़ने को सहारा देती है।

लेकिन जब प्राण का ऊपर की ओर खिंचाव और अपान का नीचे की ओर खिंचाव बराबर हो जाता है, तब भीतर आने वाली और बाहर जाने वाली श्वास समान हो जाती हैं और एक-दूसरे को निरस्त कर देती हैं। परिणामस्वरूप:
• श्वास लेने की आवश्यकता नहीं रहती
• फिर भी दोनों प्राण सूक्ष्म रूप से सक्रिय रहते हैं
• ठीक तराजू के उन दोनों पलड़ों की तरह, जो संलग्न तो हैं, पर गति में नहीं

यही प्राण का गुप्त रहस्य है: श्वास और ऊर्जा पूरी तरह स्थिर प्रतीत हो सकते हैं, फिर भी जीवन चलता रहता है, क्योंकि दोनों विपरीत शक्तियाँ एक-दूसरे को निरस्त कर देती हैं।

यदि यह संतुलन प्राण की पूर्ण अनुपस्थिति के कारण होता, तो शरीर मृत होता। लेकिन केवळ कुम्भक में एक विरोधाभास घटित होता है:
“शरीर एक ही समय में मृत-सा भी होता है और जीवित भी।”

एक गहरा मौन—बिना श्वास के—पर अचेतन नहीं। पूर्णतः जाग्रत, जीवंत, स्थिर।

इसमें अद्वैत (नॉन-ड्युएलिटी) की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। द्वैत प्राण को ऊपर-नीचे चलते रहने को बाध्य करता है, ठीक वैसे ही जैसे तराजू के असंतुलित पलड़े। अद्वैत इस टकराव को समाप्त कर देता है, जिससे आंतरिक संतुलन संभव हो पाता है।

इसी कारण प्राणायाम और योगाभ्यास (योगिक साधनाएँ) अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। वे हमें धीरे-धीरे प्राण को प्रशिक्षित और परिष्कृत करने में सहायता करते हैं–बुद्धि के माध्यम से नहीं, बल्कि अभ्यास और आंतरिक संस्कारों के द्वारा–जब तक कि यह संतुलन एक स्वाभाविक प्रत्युत्तर न बन जाए।

निश्वास फिर भी जीवित – केवळ कुम्भक का रहस्य एक बच्चे की कहानी की तरह

क्या आपने कभी कोशिश की है कि श्वास पूरी तरह रुक जाए – ज़ोर से नहीं, बल्कि स्वाभाविक रूप से – और फिर भी आप पूरी तरह जीवित, जाग्रत महसूस करें?

योगी इस दुर्लभ अवस्था को केवळ कुम्भक कहते हैं – जहाँ श्वास अपने आप रुक जाती है, फिर भी आप पूर्णतः सचेत, सतर्क और शांत रहते हैं।

आइए, इस अद्भुत रहस्य को सबसे सरल और सहज तरीके से समझते हैं।

कल्पना कीजिए कि आपकी श्वास दो विपरीत शक्तियों से चलती है

आपके शरीर में दो अदृश्य ऊर्जाएँ श्वास को भीतर-बाहर करने में सहायता करती हैं:
• प्राण → ऊपर की ओर जाता है (श्वास लेने में सहायक)
• अपान → नीचे की ओर जाता है (श्वास छोड़ने में सहायक)

आमतौर पर ये दोनों समान रूप से नहीं खींचतीं।
जब प्राण अधिक प्रबल होता है, आप श्वास लेते हैं।
जब अपान अधिक प्रबल होता है, आप श्वास छोड़ते हैं।

लेकिन अब ध्यान दीजिए इस रहस्य पर:
जब प्राण और अपान दोनों एक ही समय में बराबर शक्ति से, विपरीत दिशाओं में खींचते हैं, तो श्वास बिल्कुल नहीं चलती। वह स्थिर हो जाती है – जैसे कोई जादू!

यहीं से केवळ कुम्भक की शुरुआत होती है।

इसे एक साधारण तराजू से समझते हैं

कल्पना कीजिए एक दो-पलड़े वाला तराजू:
• एक पलड़ा है ऊपर जाता हुआ प्राण
• दूसरा पलड़ा है नीचे जाता हुआ अपान

अगर एक पलड़ा भारी है, तो तराजू झुकता है – आपकी श्वास चलती है।
लेकिन अगर दोनों पलड़ों में एक ही समय में बराबर वजन हो?

तराजू पूरी तरह स्थिर हो जाता है – ठीक वैसे ही जैसे प्राण = अपान होने पर आपकी श्वास स्थिर हो जाती है।

इस तरह, दोनों ऊर्जाएँ काम कर रही होती हैं, लेकिन एक-दूसरे को निरस्त कर देती हैं। इसलिए शरीर निश्वास हो जाता है, फिर भी जीवित रहता है।

अब मिलिए इड़ा और पिंगला से – दो पार्श्व नाड़ियाँ

आपके शरीर में दो और ऊर्जा-मार्ग होते हैं:
• इड़ा: बाईं ओर की नाड़ी – शीतल, शांत, चंद्र से जुड़ी
• पिंगला: दाईं ओर की नाड़ी – उष्ण, सक्रिय, सूर्य से जुड़ी

ये दोनों रीढ़ के चारों ओर दो सर्पों की तरह घूमती हैं, और हर चक्र पर एक-दूसरे को काटती हैं।

• जब इड़ा अधिक प्रबल होती है, शरीर सुस्त या उनींदा लगता है।
• जब पिंगला अधिक प्रबल होती है, शरीर बेचैन या अति-सक्रिय लगता है।

लेकिन जब इड़ा और पिंगला बराबर हो जाती हैं, शरीर शांत, संतुलित और स्थिर हो जाता है।

और तब क्या होता है?

तब आपकी केंद्रीय नाड़ी – सुषुम्ना – सक्रिय हो जाती है।
और तभी प्राण और अपान को मिलने और संतुलित होने का अवसर मिलता है।

ऐसा इसलिए है क्योंकि प्राण और अपान का वास्तविक मिलन केवल रीढ़ीय श्वसन से होता है, सामान्य शारीरिक श्वास से नहीं। और रीढ़ीय श्वसन तभी संभव है जब सुषुम्ना नाड़ी सक्रिय

और ग्रहणशील हो। अन्यथा श्वास इड़ा या पिंगला की ओर फिसल जाती है – जो सामान्य सांसारिक श्वसन है, जहाँ प्राण और अपान कभी मिल ही नहीं पाते।

यही इड़ा-पिंगला और प्राण-अपान के युग्मों के बीच का मुख्य संबंध है।

इड़ा और पिंगला को भी तराजू के पलड़ों की तरह समझिए

अब कल्पना करें:
• बायाँ पलड़ा है इड़ा
• दायाँ पलड़ा है पिंगला

अगर एक पलड़ा भारी है, तराजू हिलता रहता है – भीतर असंतुलन होता है।
लेकिन जब दोनों पूरी तरह बराबर हो जाते हैं, तो तराजू – यानी सुषुम्ना या रीढ़ – शांत हो जाती है।

और उसी शांति के भीतर, प्राण और अपान भी दो गुप्त कर्मियों की तरह मित्र बनकर संतुलित हो जाते हैं।

इसलिए:
इड़ा-पिंगला (बाएँ-दाएँ) का संतुलन
प्राण-अपान (ऊपर-नीचे) के संतुलन के लिए आवश्यक है।

और यही श्वास-स्थिरता – केवळ कुम्भक – तक ले जाता है।

तो योगी वास्तव में करते क्या हैं?

योगी इस निश्वास अवस्था तक सोच-विचार से नहीं पहुँचते। वे अभ्यास करते हैं:
• योग
• प्राणायाम (नियंत्रित श्वसन)
• ध्यान

ये अभ्यास शरीर-मन को इतना प्रशिक्षित कर देते हैं कि इड़ा, पिंगला, प्राण और अपान धीरे-धीरे अपने आप संतुलित होने लगते हैं – जैसे एक आदत बन जाती हो। जैसे चलना, साइकिल चलाना या तैरना – एक बार सीख लेने पर शरीर याद रखता है।

और जब श्वास स्वाभाविक रूप से संतुलन में रुकती है, तब गहन शांति और जाग्रत स्थिरता का अनुभव होता है।

सरल शब्दों में...

• आप श्वास को ज़ोर से नहीं रोकते।
• आप विपरीत ऊर्जाओं को इतना संतुलित कर देते हैं कि श्वास को चलने की ज़रूरत ही नहीं रहती।
• और उस स्थिरता में आप पूरी तरह जाग्रत और जीवित रहते हैं।

यही है केवळ कुम्भक – जीवित निश्वास का योगिक चमत्कार।

हाँ, इस पूरी यात्रा में अद्वैत की भूमिका सबसे केंद्रीय और निर्णायक है। यात्रा यहीं से शुरू होती है और यहीं समाप्त भी। इसी कारण अद्वैत वेदांत को अंतिम दार्शनिक परंपरा कहा जाता है। और यदि इसे जीवनभर निरंतर जिया जाए, तो यह स्वयं आगे के योगिक विकास की ओर ले जाता है। इस संदर्भ में, *शरीरविज्ञान दर्शन*— एक होलोग्राम-आधारित वैज्ञानिक दृष्टि – अद्वैत साधकों के लिए एक वरदान के रूप में प्रकट होता है।

इड़ा, पिंगला, प्राण, अपान और आध्यात्मिक जागरण का मार्ग: एक आंतरिक विज्ञान

परिचय

योगिक विज्ञान में दो शब्द अक्सर साथ-साथ आते हैं: इड़ा-पिंगला और प्राण-अपान। अनेक साधक यह प्रश्न करते हैं:

"क्या इड़ा और पिंगला वही हैं जो प्राण और अपान हैं? या वे किसी भिन्न वस्तु का प्रतिनिधित्व करते हैं?"

यह लेख बताता है कि ये ऊर्जा-नाड़ियाँ और शक्तियाँ जागरण, श्वास-स्थिरता (केवळ कुम्भक) और आध्यात्मिक साक्षात्कार में कैसे एक-दूसरे के साथ काम करती हैं–और फिर भी इसे इतना सरल रखता है कि कोई जिज्ञासु आरंभिक साधक या बच्चा भी समझ सके।

योगिक ऊर्जा-तंत्र को सरल शब्दों में

सामान्य जीवन में, इड़ा और पिंगला–दो मुख्य ऊर्जा-नाड़ियाँ–हर चक्र पर एक-दूसरे को काटती हैं। इसका अर्थ यह है कि साधारण लोगों में भी प्रत्येक चक्र पर क्षणिक मिलन होता है। पर साधारण व्यक्ति और योगी के बीच अंतर सजगता, तीव्रता और निरंतरता का होता है:

• साधारण जीवन में यह मिलन कभी-कभार, अचेतन और प्रायः बाहरी इच्छाओं से ढका रहता है।

• योगी में यह मिलन सचेत, दीर्घ और केंद्रित आंतरिक साधना से समर्थित होता है। समय के साथ पूरी सुषुम्ना नाड़ी (केंद्रीय मार्ग) सक्रिय हो जाती है–सिर्फ कुछ बिंदुओं पर नहीं।

यहीं इड़ा और पिंगला अलग-अलग धाराओं की तरह नहीं दिखतीं; उनका मिलन एक निरंतर आंतरिक यथार्थ बन जाता है, और द्वि-हेलिक्स का पैटर्न एकीकृत स्थिरता में विलीन हो जाता है।

यह मिलन केवल प्रतीकात्मक नहीं है। योग के गहरे अर्थ में, यह प्राण और अपान के आंतरिक प्रवाह में होने वाले उस परिवर्तन को दर्शाता है, जो सामान्यतः विपरीत दिशाओं में कार्य करते हैं। उच्च अवस्थाओं में ये विरोधी ऊर्जाएँ एक-दूसरे को निरस्त करने लगती हैं, जिससे केंद्रीय नाड़ी–सुषुम्ना–जाग्रत होती है।

प्राण और अपान: दो प्रमुख आंतरिक शक्तियाँ

प्राण वायु:
• ऊपर की ओर गतिशील ऊर्जा
• हृदय, फेफड़े, इंद्रिय-बोध और विचारों का संचालन
• इड़ा नाड़ी से संबंधित

अपान वायु:
• नीचे की ओर गतिशील ऊर्जा
• विसर्जन, प्रजनन और स्थिरता का संचालन
• पिंगला नाड़ी से संबंधित

यद्यपि ये पूरे शरीर में कार्य करती हैं, उनकी प्रवृत्तियाँ इन नाड़ियों से मेल खाती हैं। इसलिए:
इड़ा ≈ प्राण वायु (अंतर्मुखी, मानसिक, शीतल)
पिंगला ≈ अपान वायु (बहिर्मुखी, भौतिक, उष्ण)

यह मानचित्रण कठोर नहीं है, पर ध्यान और श्वास-केंद्रित अभ्यास में अत्यंत उपयोगी है।

मिलन: यहीं से वास्तविक खेल शुरू होता है

जब प्राण और अपान समान और विपरीत हो जाते हैं, तो वे ऊर्जात्मक रूप से एक-दूसरे को निरस्त कर देते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि कुछ घट नहीं रहा—बल्कि एक नया आयाम खुलता है:
• श्वास स्वाभाविक रूप से रुक जाती है (केवळ कुम्भक)
• ऊर्जा बाहर की ओर नहीं बहती
• चेतना भीतर की ओर मुड़ती और ऊपर उठती है
• कुण्डलिनी सुषुम्ना के माध्यम से ऊपर बढ़ने लगती है

यह मौन गति प्रायः नाटकीय नहीं होती। अनेक ईमानदार साधक अनुभव करते हैं:
• न दर्शन, न ध्वनियाँ
• न चिंगारियाँ, न झटके
• बस रीढ़ के साथ ऊपर उठती हुई एक सूक्ष्म, शांत आनंद-धारा

केवळ कुम्भक के दौरान अनुभव

कई साधक यह देखकर भ्रमित होते हैं कि केवळ कुम्भक (निःश्वास स्थिरता) में उन्हें कोई नाटकीय अनुभव या दर्शन क्यों नहीं होते। पर वास्तव में होता यह है:

• जब श्वास रुकती है, सजगता एक शांत झील जैसी हो जाती है।

• यदि पर्याप्त यौन या जीवन-ऊर्जा का संरक्षण और उदात्तीकरण हुआ हो, तो वह मौन रूप से ऊपर उठने लगती है।

• यह उछाल नहीं, बल्कि एक धीमी, आनंदमयी नदी की तरह ऊपर बढ़ती है—कभी ठहरती, कभी आगे बढ़ती।

आपको प्रकाश दिखें या दिव्य ध्वनियाँ सुनाई दें—यह आवश्यक नहीं। वास्तव में, गहरी स्थिरता में इंद्रिय-चिह्न कम होते हैं। इसके स्थान पर आप अनुभव कर सकते हैं:

• सिर या शरीर में विस्तृत आकाश-सा फैलाव

• ऊपर उठती शीतलता या सूक्ष्म आनंद

• कभी-कभी पूरी रीढ़ का एक आनंदमय विद्युत-तंतु की तरह प्रकाशित होना

ये संकेत हैं कि ऊर्जा सुषुम्ना में स्थिर हो रही है।

अज्ञा दृष्टि (ऊर्ध्व दृष्टि) की भूमिका

जब आप बंद आँखों से अज्ञा चक्र (भौंहों के बीच) की ओर भीतर से दृष्टि उठाते हैं:

• सजगता स्वाभाविक रूप से ऊपर उठती है

• श्वास सूक्ष्म हो जाती है या रुक जाती है

• भीतर एक अनंत आकाश या विशालता का अनुभव हो सकता है

यह कल्पना नहीं है—यह आपकी चेतना का शरीर और श्वास की सीमाओं से परे विस्तार है।

डबल हेलिक्स और उससे आगे

प्रारंभ में, इड़ा और पिंगला डबल हेलिक्स की तरह एक-दूसरे को काटती हुई हर चक्र को स्पर्श करती हैं। लेकिन जब सुषुम्ना पूरी तरह सक्रिय हो जाती है:
• द्वैत विलीन हो जाता है
• इड़ा-पिंगला पहचान के रूप में लुप्त हो जाती हैं
• जो शेष रहता है, वह एकत्व–सजगता की स्थिर धारा

इसीलिए उच्च अवस्थाओं में:
डबल हेलिक्स शेष नहीं रहता। केवल एकीकृत धारा रहती है।

द्वैत से एकत्व की यह यात्रा योगी की परिपक्वता का संकेत है। पूरी रीढ़ मौन, आनंद और प्रकाशमान बुद्धि का मार्ग बन जाती है।

क्या ये एक ही वस्तु हैं?

यद्यपि इड़ा और पिंगला बिल्कुल प्राण और अपान के समान नहीं हैं, उनके कार्य गहराई से जुड़े हुए हैं। इड़ा को प्रायः शीतल, अंतर्मुखी और ऊपर की ओर जाने वाली ऊर्जा से जोड़ा जाता है–जो प्राण वायु के गुणों से मेल खाती है, वह जीवन-शक्ति जो बोध, श्वास और उच्च सजगता की ज़िम्मेदार है। दूसरी ओर, पिंगला उष्ण, बहिर्मुखी और नीचे की ओर जाने वाली ऊर्जा से जुड़ी है–जो अपान वायु के गुणों का प्रतिबिंब है, वह शक्ति जो विसर्जन, स्थिरता और प्रजनन का संचालन करती है। इसलिए ढीले अर्थ में कहा जा सकता है: इड़ा प्राण वायु जैसी है, और पिंगला अपान वायु जैसी। यद्यपि वे एक नहीं हैं, यह मानचित्रण योगिक अभ्यास में आंतरिक ऊर्जाओं की समझ और संतुलन के लिए व्यावहारिक मार्ग देता है।

वे समान नहीं हैं, पर उनके कार्य गहराई से एक-दूसरे में गुंथे हुए हैं।

योगी का अंतर

साधारण मनुष्यों में:
• इड़ा और पिंगला क्षणिक रूप से मिलती हैं और चक्रों को सक्रिय करती हैं।
• उनका मिलन खंडित और अल्पकालिक होता है।

योगियों में:
• इड़ा और पिंगला प्रत्येक चक्र पर पूर्ण रूप से मिलती हैं।
• अंततः उनका संघ पूरी सुषुम्ना में ऊपर उठता है।
• श्वास स्थिर होती है, मन केंद्रित होता है, और सजगता ऊपर उठती है।

यही सच्चा योगिक मील-पत्थर है।

उन्नत स्पष्टीकरण: पाँच वायु

प्राण की पाँच प्रमुख शक्तियाँ हैं:

1. प्राण वायु - अंतर्मुखी, ऊर्ध्वगामी
2. अपान वायु - अधोगामी, स्थिरकारी
3. समान वायु - पाचन और संतुलन
4. उदान वायु - वाणी और आध्यात्मिक उत्थान
5. व्यान वायु - परिसंचरण और समन्वय

यद्यपि ये सभी पूरे शरीर में विद्यमान हैं, इड़ा और पिंगला मुख्यतः प्राण और अपान के संतुलन को व्यक्त करती हैं।

जब ये दोनों संतुलित हो जाते हैं:
• शरीर हल्का हो जाता है
• श्वास स्वतः स्थगित हो सकती है
• चेतना निचले केंद्रों से अलग होकर उच्च चक्रों की ओर उठती है

अंतिम निष्कर्ष:

• इड़ा ≈ प्राण वायु
• पिंगला ≈ अपान वायु
• इनका पूर्ण संतुलन केवळ कुम्भक तक ले जाता है, जहाँ मन, श्वास और द्वैत रुक जाते हैं।
• तब सुषुम्ना सक्रिय होती है, और सच्चे साक्षात्कार का मार्ग खुलता है।

यही कुण्डलिनी, अद्वैत और आध्यात्मिक रूपांतरण के पीछे का योगिक विज्ञान है।

शाश्वत केवळ कुम्भक बनाम शाश्वत निर्विकल्प समाधि: कौन ईश्वर के अधिक निकट है?

योग और रहस्यवाद की सबसे गहरी परतों में साधक अक्सर यह प्रश्न पूछते हैं:
क्या ईश्वर शाश्वत केवळ कुम्भक में है – निश्वास, स्थिर, फिर भी पूर्णतः जीवंत?
या वह शाश्वत निर्विकल्प समाधि में है – निराकार, विचारहीन, सभी द्वैतों से परे शुद्ध अस्तित्व?

आइए, इसे श्रद्धा और स्पष्टता के साथ समझें।

केवळ कुम्भक – निश्वास ईश्वर

केवळ कुम्भक श्वास का वह स्वाभाविक, प्रयास-रहित रुकाव है – न ज़बरदस्ती, न अभ्यास, बल्कि तब घटित होने वाला जब प्राण और अपान एक हो जाते हैं, जब शरीर में द्वैत समाप्त हो जाता है।

इस अवस्था में:
• श्वास पूरी तरह स्थिर हो जाती है।
• फिर भी अस्तित्व पूर्णतः जीवित, सजग और शांत रहता है।
• न श्वास भीतर आती है, न बाहर जाती है – बस एक शाश्वत विराम।
• शरीर एक ऐसी लौ जैसा होता है जो काँपती नहीं।
• चेतना मौन में देखती रहती है, जैसे पूरे ब्रह्मांड को अपनी गोद में थामे हो।

जब कोई योगी केवळ कुम्भक को कुछ क्षणों के लिए भी अनुभव करता है, तो वह दिव्य लगता है – मानो शरीर आकाश बन गया हो, और आत्मा जीवन के एक स्थिर महासागर में तैर रही हो।

ईश्वर को शाश्वत केवळ कुम्भक में देखना, उसे परम योगी के रूप में देखना है – जीवित, निश्वास, स्थिर, जो बिना अपने भीतर एक परमाणु हिलाए पूरी सृष्टि को देख रहा है।

निर्विकल्प समाधि – निराकार ईश्वर

लेकिन श्वास से भी गहरा, शरीर से भी गहरा, यहाँ तक कि साक्षीभाव की मौन अवस्था से भी गहरा – निर्विकल्प समाधि है।

इस अवस्था में:
• न मन रहता है, न श्वास, न शरीर का बोध।
• न देखने वाला होता है, न देखा जाने वाला।
• विचार लुप्त हो जाते हैं। "मैं हूँ" का भाव भी घुल जाता है।
• न ईश्वर रहता है, न संसार – केवल शुद्ध अस्तित्व, असीम, अखंड।

यह कोई आने-जाने वाली अवस्था नहीं है। यही अस्तित्व का, आत्मा का, ईश्वर का वास्तविक स्वरूप है – ईश्वर की धारणा से भी परे।

ईश्वर को शाश्वत निर्विकल्प समाधि में कहना यह कहना है कि:
वह किसी अवस्था में नहीं है – वह स्वयं आधार-रहित सत्य है,
पहली श्वास से पहले, समय से पहले, आकाश से पहले।

वह न श्वास लेता है, न सोचता है, न चलता है – वह बस है।

तो फिर कौन सत्य के अधिक निकट है?

दोनों ही सत्य हैं – पर अलग-अलग दृष्टि से।

• शाश्वत केवळ कुम्भक में ईश्वर मौन, निश्वास, ब्रह्मांडीय योगी है – सुंदर, अनुभवयोग्य, जीवंत।
• शाश्वत निर्विकल्प समाधि में ईश्वर परम आत्मा है – हर गति से परे, निश्वास से भी परे – अनंत, मौन, अगोचर।

यदि आप संबंध, भक्ति या जीवंत स्थिरता खोजते हैं, तो केवळ कुम्भक में ईश्वर का दिव्य रूप दिखता है।
यदि आप अद्वैत, मुक्ति या सभी विचारों से परे सत्य चाहते हैं, तो निर्विकल्प समाधि अंतिम द्वार है – और द्वारों के भी पार का स्थान।

अंतिम चिंतन

ईश्वर श्वास नहीं लेता – क्योंकि वही श्वास का स्रोत है।
ईश्वर सोचता नहीं – क्योंकि वह विचार से पहले का साक्षी है।
ईश्वर ध्यान नहीं करता – क्योंकि वही ध्यान का अंत है।

आप उसे निश्वास कहें – या निराकार।
आप उसे स्थिरता में पाएँ – या उसके मौन में स्वयं को खो दें।

दोनों सत्य हैं।
दोनों पवित्र हैं।
दोनों घर ले जाते हैं।

प्रयास से सहजता की ओर: केवल कुम्भक के साथ साधना का विकास

खींचातानी: प्राण और अपान

शुरुआत में श्वास एक सूक्ष्म खींचातानी से संचालित होती है। प्राण ऊपर की ओर चलता है और श्वास को भीतर खींचता है, जबकि अपान नीचे की ओर चलता है और श्वास को बाहर जाने देता है। सामान्यतः जब प्राण अपान से अधिक शक्तिशाली होता है, तो ऊपर की ओर एक कुल गति बनती है और श्वास भीतर आती है। जब अपान अधिक शक्तिशाली होता है, तो श्वास बाहर जाती है। लेकिन जब दोनों समान रूप से शक्तिशाली और विपरीत दिशा में खींचते हैं, जैसे रस्साकशी में होता है, तब रस्सी हिलती नहीं। न भीतर जाना होता है, न बाहर जाना। यही केवल कुम्भक की सूक्ष्म भूमि है – श्वासरहित स्थिरता की शुरुआत।

केवल कुम्भक क्या है?

केवल कुम्भक श्वास का एक सहज, स्वाभाविक रुक जाना है। इसमें न श्वास भीतर जाती है, न बाहर आती है, न ही श्वास को रोकने का कोई प्रयास होता है, फिर भी पूर्ण आराम और स्थिरता बनी रहती है। यह तभी उत्पन्न होता है जब प्राण और अपान पूरी तरह मिल जाते हैं और उनकी द्वैतता समाप्त हो जाती है। जैसे रस्साकशी में जब दोनों टीमें बराबर बल लगाती हैं और रस्सी स्थिर हो जाती है, तब कहा जा सकता है कि वे अब लड़ नहीं रहीं, बल्कि संतुलन में हैं – उसी तरह जब श्वास की कोई गति नहीं रहती, तब प्राण और अपान को मिला हुआ कहा जाता है। जब मूल बंध द्वारा अपान को ऊपर खींचा जाता है और जालंधर बंध द्वारा प्राण को नीचे दबाया जाता है, और दोनों हृदय चक्र पर मिलते हैं, तब श्वास लंबे समय तक स्थिर हो जाती है क्योंकि प्राण और अपान एक हो गए होते हैं। इसी प्रकार, जब रीढ़ के साथ श्वास पूरी तरह स्थिर हो जाती है, तो वह भी प्राण और अपान के मिलन का ही संकेत है।

केवल कुम्भक से पहले साधना की भूमिका

केवल कुम्भक जब तक जीवित अनुभव नहीं बनता, तब तक क्रिया श्वास, प्राणायाम, बंध और मुद्रा, चक्र ध्यान, और स्पाइनल ब्रीदिंग जैसी साधनाएँ आवश्यक होती हैं। ये अभ्यास नाड़ियों को शुद्ध करते हैं, ऊर्जा के प्रवाह को संतुलित करते हैं, मन और श्वास को एक लय में लाते हैं और पूरे तंत्र को उस प्राकृतिक स्थिरता का स्वाद लेने के लिए तैयार करते हैं जहाँ श्वास अपने आप रुक जाती है। साधना उस नाव की तरह है जो नदी पार कराने में मदद करती है।

केवल कुम्भक आने के बाद क्या साधना रुक जाती है? नहीं, बल्कि उसका रूप बदल जाता है। जब केवल कुम्भक अपने आप होने लगता है, तो पहले की मेहनत से की जाने वाली साधनाएँ धीरे-धीरे स्वयं छूटने लगती हैं। अब "कुछ पाने के लिए करने" का भाव नहीं रहता। चेतना सहज होने की अवस्था में प्रवेश कर जाती है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि क्रिया, प्राणायाम या योगासन छोड़ दिए जाएँ। अब वे भीतर के वाद्य को सुर में लाने का काम करते हैं। साधना अब चढ़ाई नहीं रहती, वह एक उत्सव बन जाती है। जैसे कोई संगीतकार वही राग फिर से बजाता है, जिसे वह पहले से जानता है, ताकि उसी भाव में लौट सके।

स्पाइनल ब्रीदिंग को उन्नत साधक एक चुंबकीय रिक्तता की तरह अनुभव करते हैं। रीढ़ में ऊपर-नीचे श्वास या ऊर्जा का हल्का अनुभव सुषुम्ना नाड़ी को खोलता और साफ करता है, इड़ा-पिंगला को संतुलित करता है और रीढ़ में एक ऐसा खालीपन पैदा करता है जो चेतना को भीतर खींच लेता है। यह आकर्षण इतना गहरा हो जाता है कि प्राण और अपान बिना प्रयास के मिल जाते हैं, श्वास अपने आप रुक जाती है और केवल कुम्भक बार-बार प्रकट होने लगता है। कभी-कभी तो सिर्फ इस गति की कल्पना मात्र से, बिना शारीरिक श्वास के, वही अंदर की खिंचाव की अनुभूति लौट आती है और गहरी स्थिरता आ जाती है।

केवल कुम्भक के बाद की साधना अब एक अलग उद्देश्य निभाती है। यह ऊर्जा की शुद्धता बनाए रखती है, प्राण के ठहराव से बचाती है, तंत्र को संवेदनशील और ग्रहणशील बनाए रखती है और आवश्यकता होने पर भीतर उतरने की क्षमता को जीवित रखती है। अब साधना प्रयास नहीं, निमंत्रण बन जाती है। आप कहीं पहुँचने की कोशिश नहीं करते, आप कृपा को बुलाते हैं।

इसलिए केवल कुम्भक के बाद साधना को छोड़ना नहीं है, उसे बदलने देना है। तनाव छोड़ देना है, लेकिन अभ्यास को आनंद के साथ जारी रखना है। अब आपकी साधना सीढ़ी नहीं रही, वह एक अनुनाद बन गई है। स्पाइनल ब्रीदिंग मौन बाँसुरी बन जाती है, क्रिया सुर मिलाने वाला कांटा, प्राणायाम बिना शब्दों की प्रार्थना, और केवल कुम्भक वह शांत, जीवित मंदिर बन जाता है जहाँ सारी शांति आकर एक हो जाती है।

केवळ कुम्भक: निर्विकल्प समाधि का निश्वास द्वार
श्वास और मन से परे मार्ग की एक सीधी, सरल समझ

महान प्रश्न

“जब सच्चा ध्यान केवळ कुम्भक के बिना कभी होता ही नहीं, तो फिर इतने लोग उसके बिना ध्यान करने का नाटक क्यों करते हैं?”

यह प्रश्न सतही ध्यान अभ्यासों की नींव हिला देता है।

वास्तविक ध्यान – गहरा योगिक लय – तब तक शुरू ही नहीं होता, जब तक केवळ कुम्भक प्रकट न हो जाए – वह स्वाभाविक निश्वास अवस्था जहाँ न श्वास भीतर जाती है, न बाहर, फिर भी सजगता पूरी तरह जीवित रहती है।

अनेक लोग प्रयास, कल्पना, मूर्ति या विधि से अभ्यास करते हैं – लेकिन जब तक यह पवित्र निश्वास मौन नहीं आता, वह केवल मानसिक अभ्यास रहता है, सच्ची समाधि नहीं।

ध्यान-चित्र की भूमिका (सविकल्प)

हाँ, सविकल्प ध्यान में ध्यान-चित्र की आवश्यकता होती है – कोई रूप, मंत्र, प्रकाश या देवता।

लेकिन यहाँ एक रहस्य है:
निर्विकल्प समाधि में भी कभी-कभी ध्यान-चित्र या अन्य संस्कार बीच-बीच में उभर आते हैं – फिर भी वे केवळ कुम्भक को तोड़ते नहीं, बल्कि उसे और गहरा कर देते हैं।

इससे स्पष्ट होता है कि केवळ कुम्भक को रूप नहीं तोड़ता – उसे तोड़ता है केवल अहंकार या भीतर की बकबक।

आत्म-साक्षात्कार के दुर्लभ क्षणों में द्रष्टा और दृश्य पूरी तरह एक हो जाते हैं, लेकिन यह लगातार नहीं होता। अधिकतर समय एक सूक्ष्म “मैं” देखने वाला बना रहता है – यही द्वैत पूर्ण एकत्व को रोकता है।

बोध: केवळ कुम्भक ही कुंजी है

यदि योग का मुख्य उद्देश्य केवळ कुम्भक में प्रवेश करना हो,
तो सविकल्प समाधि और निर्विकल्प समाधि अपने आप उपफल के रूप में घटित होती हैं।

यही गहरे योगिक सिद्धि का रहस्य है।

• सविकल्प तब आता है जब ध्यान-चित्र बना रहता है।
• निर्विकल्प तब आता है जब वह भी विलीन हो जाता है।
• दोनों स्वाभाविक रूप से आते हैं जब प्राण पूरी तरह स्थिर हो जाता है और केवळ कुम्भक शुरू होता है।

समाधि का पीछा करना काम नहीं करता।
केवळ कुम्भक में प्रवेश करना करता है।

क्या हमें सविकल्प की ज़रूरत है?

आपने एक दुर्लभ बात समझी:
"यदि कोई गहरे केवळ कुम्भक के साथ सीधे निर्विकल्प समाधि में प्रवेश कर सके, तो सविकल्प की आवश्यकता नहीं।"

हाँ – यदि मन परिपक्व हो और प्राण पर्याप्त स्थिर हो, तो सविकल्प को पूरी तरह छोड़ा जा सकता है।

सविकल्प अधिकांश साधकों के लिए सहारा है –
लेकिन प्रत्यक्ष जागरण में (जैसे शक्तिशाली तांत्रिक या ज्ञान साधना में),
मन सीधे निर्विकल्प में डूब सकता है – न रूप, न मंत्र, न सहारा।

लेकिन क्या केवळ कुम्भक के लिए बैठना ज़रूरी है?

आपने ठीक कहा:
“केवळ कुम्भक सामान्यतः पद्मासन में बैठकर और थोड़ी श्वास-सजगता के साथ ही आता है – खेलते या काम करते हुए नहीं।”

बिल्कुल।

• खेलते या काम करते समय इंद्रियाँ सक्रिय रहती हैं, मन बाहर रहता है, प्राण बिखरा होता है – केवळ कुम्भक स्वाभाविक रूप से नहीं आ सकता।
• बैठी हुई स्थिरता में (विशेषकर पद्मासन में), शरीर एक बंद पात्र जैसा बन जाता है, जिससे प्राण भीतर इकट्ठा होता है और श्वास स्थिर होती है।

केवळ कुम्भक स्थिरता और अंतर्मुख दृष्टि में शुरू होता है, गतिविधि में नहीं –
सिवाय बहुत उन्नत अवस्था (सहज) के, जहाँ यह चलते-फिरते भी स्वाभाविक हो जाता है।

वह क्षण: “श्वास नहीं आती...”

आपने उस सीमा-क्षण का सुंदर वर्णन किया:
“श्वास नहीं आती, और एक घातक-सा मौन महसूस होता है – अद्भुत – लेकिन कुछ ही सेकंड में श्वास लौट आती है। वह बहुत हल्की होती है, पर पूरी तरह केवळ कुम्भक नहीं, क्योंकि वह स्थिर नहीं हुई है।”

यह असफलता नहीं है।
यह ठीक वही बिंदु है जहाँ:

• मन स्थिर होता है।
• अहंकार ढलता है।
• सजगता पूर्ण होती है।
• लेकिन तंत्र अभी उस मौन में लगातार टिकने के लिए प्रशिक्षित नहीं हुआ होता।

श्वास धीरे से लौट आती है – जैसे एक सुरक्षित वापसी।
पर यदि इच्छा, आश्चर्य या विश्लेषण बीच में न आए, तो आप फिर से मौन में डूब सकते हैं।

यह चक्र:
कुम्भक → हल्की श्वास → फिर कुम्भक
...पूर्ण स्थिरता की ओर स्वाभाविक प्रशिक्षण है।

अंतिम ज्ञान

समाधि लक्ष्य नहीं है। केवळ कुम्भक भी लक्ष्य नहीं है।
कर्ता विलीन हो जाता है, लक्ष्य मिट जाता है, और केवल सत्य शेष रहता है।

जब भी वह घातक मौन आए – उसका स्वागत करें।
उसे आपको निगलने दें।

एक दिन वह आपका घर बन जाएगा –
श्वास लौटने पर भी,
चलते हुए भी।

निश्वास स्थिरता में,
आप पहले से ही वही हैं।

— आपकी अपनी प्रत्यक्ष बुद्धि

समाधि के पीछे की अदृश्य श्वास

हाल के एक ध्यान में, मैंने कुछ ऐसा अनुभव किया जो सूक्ष्म होते हुए भी बहुत गहरा था। मैं ऐसी अवस्था में था जहाँ बाहरी श्वास लगभग समाप्त हो चुकी थी – बाहर से लगभग निश्वास, लेकिन भीतर रीढ़ के साथ एक आंतरिक श्वसन महसूस हो रहा था। ऊर्जा का वह परिचित स्पाइनल प्रवाह जीवंत और सक्रिय था।

जिज्ञासा में मैंने एक सरल-सा काम किया: मैंने अपनी दोनों नासिकाएँ उँगलियों से हल्के से बंद कर लीं। और आश्चर्य की बात यह हुई कि वह आंतरिक स्पाइनल श्वसन तुरंत रुक गया। बस ऐसे ही – पूरा प्रवाह गायब। जैसे किसी ने कोई गुप्त सहारा खींच लिया हो।

इससे एक बात मेरे लिए बिल्कुल स्पष्ट हो गई: गहरी, लगभग निश्वास अवस्थाओं में भी नासिकाओं से हवा की एक अत्यंत सूक्ष्म, अदृश्य धारा चलती रहती है। हम उसे महसूस नहीं करते, न सुनते हैं, लेकिन वह होती है – चुपचाप प्राणिक प्रवाह को एक साथ थामे हुए। वही सूक्ष्म श्वास, किसी छाया की तरह, आंतरिक ऊर्जा को घूमने और सूक्ष्म शरीर को पोषण देने देती है।

इससे सविकल्प समाधि या निर्विकल्प के किनारे की अवस्थाओं को देखने का मेरा दृष्टिकोण बदल गया। हम अक्सर सोचते हैं कि ऐसी अवस्थाओं में श्वास पूरी तरह रुक जानी चाहिए। लेकिन शायद यह पूरी तरह सच नहीं है। बाहरी श्वास लुप्त हो सकती है, छाती स्थिर रह सकती है, फिर भी श्वास से भी अधिक सूक्ष्म कुछ बना रहता है – जो मौन को भंग नहीं करता, बल्कि उसे सँभालता है।

मुझे अब ऐसा लगता है कि असली रहस्य श्वास को ज़बरदस्ती रोकना नहीं है, बल्कि उसे इतना सूक्ष्म और शांत होने देना है कि वह हमारी अनुभूति से बाहर चली जाए। वह वास्तविकता में लुप्त नहीं होती – वह केवल बोध की सीमा के पार चली जाती है। जीवन चलता रहता है – अदृश्य रूप से।

योगिक ग्रंथों ने इसकी ओर संकेत किया है। वे श्वास के एक चौथे रूप की बात करते हैं, जो श्वास लेने और छोड़ने से परे है – जहाँ श्वास न रोकी जाती है, न चलती है, फिर भी योगी जीवित रहता है, अछूता। पहले मैं उन पंक्तियों को कविता की तरह पढ़ता था। अब उनकी व्यवहारिकता समझ में आती है। शरीर बिना श्वास लिए श्वास लेता है।

यह एक और बात को भी स्पष्ट करता है, जो मैंने पहले अनुभव की थी: कि सविकल्प समाधि – जहाँ मन किसी रूप या छवि में लीन होता है – शायद निर्विकल्प से पहले आवश्यक है। वह छवि, जब अज्ञा चक्र में स्थिर होकर ध्यान की जाती है, तो एक मजबूत आधार बन जाती है। समय के साथ छवि विलीन हो जाती है, लेकिन ध्यान बना रहता है। जब छवि मिट जाती है और मन बिना किसी वस्तु के भी लीन रहता है, तब निर्विकल्प प्रकट होता है। लेकिन यदि मन के पास शुरू में कोई स्थिर आधार न हो, तो यह संक्रमण अक्सर डगमगाता या अल्पकालिक होता है।

इस तरह ये दोनों बोध आपस में जुड़े हुए लगते हैं: पहला, कि श्वास को सूक्ष्म होना चाहिए, ज़बरदस्ती नहीं रोका जाना चाहिए। दूसरा, कि भौंह केंद्र पर एक सूक्ष्म छवि मन को इतना सहारा देती है कि वह स्वाभाविक रूप से छोड़ सके।

श्वास और ध्यान – दोनों ही वास्तविक समाधि से पहले अदृश्य हो जाते हैं। और फिर भी, दोनों पृष्ठभूमि में कोमल रूप से जीवित रहते हैं। कुंजी इन्हें नष्ट करना नहीं है। कुंजी है – इन्हें महसूस करने की आवश्यकता का समाप्त हो जाना।

यही द्वार है।

समाधि के पीछे की अदृश्य श्वास

हाल के एक ध्यान में, मैंने कुछ ऐसा अनुभव किया जो सूक्ष्म होते हुए भी बहुत गहरा था। मैं ऐसी अवस्था में था जहाँ बाहरी श्वास लगभग समाप्त हो चुकी थी – बाहर से लगभग निश्वास, लेकिन भीतर रीढ़ के साथ एक आंतरिक श्वसन महसूस हो रहा था। ऊर्जा का वह परिचित स्पाइनल प्रवाह जीवंत और सक्रिय था।

जिज्ञासा में मैंने एक सरल-सा काम किया: मैंने अपनी दोनों नासिकाएँ उँगलियों से हल्के से बंद कर लीं। और आश्चर्य की बात यह हुई कि वह आंतरिक स्पाइनल श्वसन तुरंत रुक गया। बस ऐसे ही – पूरा प्रवाह गायब। जैसे किसी ने कोई गुप्त सहारा खींच लिया हो।

इससे एक बात मेरे लिए बिल्कुल स्पष्ट हो गई: गहरी, लगभग निश्वास अवस्थाओं में भी नासिकाओं से हवा की एक अत्यंत सूक्ष्म, अदृश्य धारा चलती रहती है। हम उसे महसूस नहीं करते, न सुनते हैं, लेकिन वह होती है – चुपचाप प्राणिक प्रवाह को एक साथ थामे हुए। वही सूक्ष्म श्वास, किसी छाया की तरह, आंतरिक ऊर्जा को घूमने और सूक्ष्म शरीर को पोषण देने देती है।

इससे सविकल्प समाधि या निर्विकल्प के किनारे की अवस्थाओं को देखने का मेरा दृष्टिकोण बदल गया। हम अक्सर सोचते हैं कि ऐसी अवस्थाओं में श्वास पूरी तरह रुक जानी चाहिए। लेकिन शायद यह पूरी तरह सच नहीं है। बाहरी श्वास लुप्त हो सकती है, छाती स्थिर रह सकती है, फिर भी श्वास से भी अधिक सूक्ष्म कुछ बना रहता है – जो मौन को भंग नहीं करता, बल्कि उसे सँभालता है।

मुझे अब ऐसा लगता है कि असली रहस्य श्वास को ज़बरदस्ती रोकना नहीं है, बल्कि उसे इतना सूक्ष्म और शांत होने देना है कि वह हमारी अनुभूति से बाहर चली जाए। वह वास्तविकता में लुप्त नहीं होती – वह केवल बोध की सीमा के पार चली जाती है। जीवन चलता रहता है – अदृश्य रूप से।

योगिक ग्रंथों ने इसकी ओर संकेत किया है। वे श्वास के एक चौथे रूप की बात करते हैं, जो श्वास लेने और छोड़ने से परे है – जहाँ श्वास न रोकी जाती है, न चलती है, फिर भी योगी जीवित रहता है, अछूता। पहले मैं उन पंक्तियों को कविता की तरह पढ़ता था। अब उनकी व्यवहारिकता समझ में आती है। शरीर बिना श्वास लिए श्वास लेता है।

यह एक और बात को भी स्पष्ट करता है, जो मैंने पहले अनुभव की थी: कि सविकल्प समाधि – जहाँ मन किसी रूप या छवि में लीन होता है – शायद निर्विकल्प से पहले आवश्यक है। वह छवि, जब अज्ञा चक्र में स्थिर होकर ध्यान की जाती है, तो एक मजबूत आधार बन जाती है। समय के साथ छवि विलीन हो जाती है, लेकिन ध्यान बना रहता है। जब छवि मिट जाती है और मन बिना किसी वस्तु के भी लीन रहता है, तब निर्विकल्प प्रकट होता है। लेकिन यदि मन के पास शुरू में कोई स्थिर आधार न हो, तो यह संक्रमण अक्सर डगमगाता या अल्पकालिक होता है।

इस तरह ये दोनों बोध आपस में जुड़े हुए लगते हैं: पहला, कि श्वास को सूक्ष्म होना चाहिए, ज़बरदस्ती नहीं रोका जाना चाहिए। दूसरा, कि भौंह केंद्र पर एक सूक्ष्म छवि मन को इतना सहारा देती है कि वह स्वाभाविक रूप से छोड़ सके।

श्वास और ध्यान – दोनों ही वास्तविक समाधि से पहले अदृश्य हो जाते हैं। और फिर भी, दोनों पृष्ठभूमि में कोमल रूप से जीवित रहते हैं। कुंजी इन्हें नष्ट करना नहीं है। कुंजी है – इन्हें महसूस करने की आवश्यकता का समाप्त हो जाना।

यही द्वार है।

जब छवि विलीन होती है – सविकल्प से केवळ कुम्भक तक की मेरी यात्रा

कुछ सत्य देर से आते हैं – इसलिए नहीं कि हम तैयार नहीं होते, बल्कि इसलिए कि वे चुपचाप पकते हैं, जैसे शांत धूप में फल। यह बात मुझे तब समझ आई जब मेरी कुण्डलिनी जागृति को लगभग एक दशक बीत चुका था – जिसे अब मैं सविकल्प समाधि का शिखर समझता हूँ।

उस समय मैंने उसे कोई नाम नहीं दिया था। न किसी गुरु ने बताया कि वह क्या है। न किसी पुस्तक ने उसे निश्चित रूप से समझाया। भौंहों के बीच दिखाई देने वाली वह चमकती ध्यान-छवि – इतनी जीवंत, इतनी वास्तविक – बस मेरे भीतर के संसार पर छा गई। वह तीन वर्षों तक बनी रही, जीवित और प्रकाशमान, मुझे शांति और मौन में स्थिर रखे हुए।

लेकिन गुफाओं में बैठने या उस छवि से चिपके रहने के बजाय, मैं विज्ञान, खोज और आध्यात्मिक प्रयोगों की ओर खिंच गया। मेरा मन तेज़, जिज्ञासु और खेल-सा हो गया। उस जीवित छवि से उठी ऊर्जा सोचने, लिखने और बाँटने में लग गई – केवल स्वार्थी साधना में नहीं। मुझे जो सुगंध मिली थी, उसे बाँटने की तीव्र इच्छा हुई, भले ही फूल भीतर ही खिला रहे।

बहुत बाद में जाकर मुझे उस छवि का गहरा अर्थ समझ आया। सविकल्प समाधि में जो रूप प्रकट होता है, वह पार करने की चीज़ नहीं – वह एक द्वार होता है। लेकिन तब मुझे यह पता नहीं था। मैं चाँदी चमकाने के लिए सोना खर्च कर रहा था – दूसरों की सहायता करते हुए अनजाने में स्रोत से दूर जाता हुआ।

फिर भी, कोई पछतावा नहीं था। वे वर्ष व्यर्थ नहीं गए। वे भी एक प्रकार की साधना थे – भीतर हटने की नहीं, बल्कि बाहर समाहित होने की।

फिर वह छवि धीरे-धीरे धुंधली होने लगी। बहुत धीरे। लगभग पीड़ादायक ढंग से। जैसे कोई मित्र सपने के पीछे चला जाए। मैं काम करता रहा। सेवा करता रहा। और फिर – ठीक उसी समय जब वह छवि मेरे मानसिक आकाश से लगभग लुप्त हो चुकी थी – कुछ अप्रत्याशित घटा।

पहली बार मैंने केवळ कुम्भक का अनुभव किया – निश्वास मौन। न ज़बरदस्ती, न कल्पना। बस घटित हो गया। न किसी छवि के साथ ध्यान करते हुए। न पढ़ते हुए। बस... हो गया। श्वास नहीं थी, पर घबराहट भी नहीं। केवल मृत-सी स्थिर सजगता। न कोई वस्तु, न मंत्र, न विचार।

और तब मैं समझने लगा।

वह ध्यान-छवि, जो अब धुंधली थी, उसी ने मार्ग तैयार किया था। वह रॉकेट के बूस्टर की तरह थी – ऊँचाई तक ले जाकर स्वयं छूट जाने वाली। यदि वह वर्षों तक मेरे साथ न रहती, यदि उसने हर श्वास और विचार को न पाला होता, तो यह निश्वास अवस्था या तो असंभव होती, या बहुत अस्थिर।

अब मैं देखता हूँ – सविकल्प कोई निचला चरण नहीं था। वह गर्भ था। और दूसरों की सहायता में लगी ऊर्जा ने प्रक्रिया को टाला नहीं – उसे परिपक्व किया। मन ने सक्रिय रहते हुए भी शांत रहना सीख लिया था। देने से अहंकार नरम हो गया था। भूमि तैयार थी।

हाँ, शायद मैं उस आदर्श क्षण को चूक गया जहाँ निर्विकल्प सीधे सविकल्प से खिल सकता था। लेकिन मुझे कुछ और मिला – यह ज्ञान कि मौन और सेवा साथ-साथ चल सकते हैं।

अब, जब केवळ कुम्भक बिना बुलाए आता है, मैं न खोजता हूँ, न रोकता हूँ। बस खुला रहता हूँ। वह चमकती छवि भले ही फीकी हो गई हो, पर उसका संस्कार शाश्वत है। अब बात चित्र की नहीं रही – बात उस रिक्तता की है जो उसने छोड़ी है।

और उसी रिक्तता में, धीरे-धीरे, निराकार स्वयं को प्रकट करता है –
प्रयास से नहीं,
विश्वास से।

सारा योग एक ही है: कर्म से हठ से राज तक – मेरा वास्तविक अनुभव
अंतरराष्ट्रीय योग दिवस पर – एक साधक की ओर से

प्रारंभिक बिंदु

युवा अवस्था में मैं स्वस्थ था और मानसिक रूप से जिज्ञासु भी। एक अनुभव के बाद, जिसे मैं अब क्षणिक सविकल्प समाधि समझता हूँ, ध्यान की एक चमकती हुई छवि मेरे मन में स्थिर हो गई। वह छवि वर्षों तक जीवित रही और मैंने उसे भीतर गहरे पोषण के लिए उपयोग किया। उसी ऊर्जा से मैंने अध्ययन किया, प्रयोग किए और आध्यात्मिक ज्ञान दूसरों से साझा किया।

आज मुझे लगता है कि उस समय, यदि मैं पूरी तरह भीतर ही ठहर जाता, तो मैं केवळ कुम्भक में प्रवेश कर सकता था और वहाँ से निर्विकल्प समाधि तक जा सकता था। वह आंतरिक छवि पहले से ही मार्ग दिखा रही थी। लेकिन मैं ठहरने के बजाय बाँटने में लग गया।

बाद की बाधाएँ

अब जीवन के इस चरण में, GERD, पेट में दबाव और गले में कफ जमा होने से श्वास में रुकावट आने लगी है। मैं यदि श्वास रोकने का प्रयास न भी करूँ और केवल शांत बैठूँ, तब भी श्वास अपने आप शांत होने लगती है – लेकिन जैसे ही गले में कुछ निगलने की प्रतिक्रिया या खाँसी-सी आती है, श्वास लौट आती है। इससे केवळ कुम्भक में प्रवेश और निर्विकल्प समाधि के लिए आवश्यक स्थिरता बार-बार टूट जाती है।

यद्यपि कुंजल क्रिया GERD में उचित नहीं मानी जाती, पर यदि जीवन के प्रारंभ से अभ्यास हो, तो शायद GERD होने से पहले ही रोका जा सकता है।
इसी तरह, यदि पद्मासन और सिद्धासन जैसे घुटनों पर आधारित आसनों का अभ्यास बचपन से किया जाए, तो घुटने मजबूत रहते हैं और उम्र के साथ आने वाली पीड़ा या कमजोरी नहीं होती, जो लंबे समय तक आसन में बैठने में बाधा बनती है।

इससे मुझे स्पष्ट समझ आया कि **हठ योग वैकल्पिक नहीं है – वह आवश्यक है।**

शास्त्रों की गलत समझ

पुराने हठ योग ग्रंथों में लिखा है:
“राज योग के बिना हठ योग फलहीन है।”

लेकिन इस वाक्य को गलत समझा गया।

लोगों ने मान लिया कि हठ योग कोई अलग, निम्न योग है और राज योग कोई अलग, उच्च योग।
लेकिन यह सत्य नहीं है।

अब मैं देखता हूँ कि:
हठ योग ही परिपक्व होकर राज योग बनता है।

जिसे राज योग कहा जाता है – धारणा, ध्यान, समाधि – वह अपने आप घटित होता है, जब हठ योग के अभ्यास से शरीर और श्वास पूर्ण स्थिरता में आ जाते हैं।
ये दो अलग रास्ते नहीं हैं, बल्कि एक ही मार्ग के चरण हैं।

हठ योग ईमानदारी से आगे ले जाता है

हठ योग सरल और ईमानदार है।

जब आप षट्कर्म करते हैं, तो उसका परिणाम तुरंत महसूस होता है।
जब आप आसन करते हैं, तो आपको पता होता है कि रीढ़ सीधी है या नहीं।
जब श्वास धीमी होती है, तो वह प्रत्यक्ष अनुभव में होता है।

यहाँ कोई भ्रम नहीं।
कोई कल्पना नहीं।

और यदि केवळ कुम्भक एक पल के लिए भी घट जाए, तो फिर किसी विश्वास की आवश्यकता नहीं रहती।

लेकिन कई "राज योग" के समूहों में लोग शरीर और श्वास को तैयार किए बिना बस बैठकर ध्यान करने की कोशिश करते हैं। वे सोचते रहते हैं कि वे ध्यान कर रहे हैं, लेकिन भीतर कुछ घटता नहीं। श्वास अशांत रहती है। शरीर कठोर रहता है। समाधि नहीं आती।

इसीलिए अब मुझे लगता है:
केवल हठ योग करना, केवल राज योग करने से बेहतर है।
क्योंकि हठ योग अंततः आपको सच्चा राज योग दे ही देता है।

कर्म योग पहले कैसे आया

हठ से पहले, कर्म योग ने मेरी सहायता की – पर मुझे तब इसका नाम नहीं पता था।

मैंने अपने जीवन को *शरीरविज्ञान दर्शन*— एक होलोग्राम-आधारित वैज्ञानिक दृष्टि – के माध्यम से अद्वैत भाव से जीना शुरू किया।
इससे मन शांत हुआ, कर्म में स्वाभाविक समर्पण आया, और शरीर-श्वास की लय भीतर की ओर हो गई।

मैं सफलता या असफलता पर बहुत प्रतिक्रिया नहीं करता था।
कर्तव्यों को करते हुए भी मन शांत रहता था।

बिना जाने, यही कर्म योग बन गया।

इससे मेरा आसन सहज रहने लगा और श्वास भी दैनिक जीवन में ही कोमल हो गई। जब ध्यान के लिए बैठता, तो भीतर की स्थिरता जल्दी आ जाती थी।

इसलिए ये सभी योग एक ही सीढ़ी हैं

अब मुझे स्पष्ट दिखता है:

- कर्म योग पहले आता है – वह कर्म में शांति लाता है।
- हठ योग उसके बाद आता है – वह शरीर और श्वास को तैयार करता है।
- राज योग अंत में आता है – जब स्थिरता पूर्ण हो जाती है, वह स्वयं घटित होता है।

ये तीन अलग मार्ग नहीं हैं।
ये एक ही स्वाभाविक यात्रा के चरण हैं।

आज का भ्रम

आज योग विभाजित हो गया है:

- कुछ लोग केवल आसन को फिटनेस मानते हैं।
- कुछ लोग बिना शरीर-अनुशासन के केवल ध्यान करते हैं।
- कुछ लोग केवल दर्शन की बातें करते हैं।

लेकिन अकेले कोई भी पूर्ण नहीं है।
इसीलिए कई लोग वर्षों अभ्यास के बाद भी कोई गहरा परिवर्तन महसूस नहीं करते।

पर मुझे लगता है कि यदि कोई केवल कर्म योग और नियमित हठ योग भी करे, तो एक दिन स्थिरता आ ही जाएगी। राज योग अलग से करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी – वह स्वयं घटित होगा।

आज मेरी सलाह

जो लोग वास्तविक योग चाहते हैं, उनके लिए:

- मार्ग को नाम न दें।
- समर्पण के साथ शांत जीवन जिएँ (कर्म योग शुरू हो जाएगा)।
- साप्ताहिक या दैनिक षट्कर्म, आसन और कोमल प्राणायाम करें (हठ योग गहराएगा)।
- बिना ज़ोर लगाए बैठें (राज योग प्रकट होगा)।

ध्यान की चमकती छवि को चुपचाप बढ़ने दें।
श्वास को स्वाभाविक रूप से धीमा होने दें।
योग को एक होने दें – अनेक नहीं।

अंतिम पंक्ति

अब मैं कर्म, हठ और राज योग को अलग-अलग नहीं मानता।
मुझे लगता है कि ये एक ही आंतरिक सीढ़ी के चरण हैं।

मैं बिना योजना के उस पर चला – और वह मुझे एक ही मार्ग के रूप में दिखाई दी।

यदि इस अंतरराष्ट्रीय योग दिवस पर मैं एक संदेश दे सकूँ, तो वह यही है:
योग विविधता का नाम नहीं है। योग एकता है – शरीर, श्वास और सजगता की।
बाकी सब केवल सहारा है।

और अंत में, यह न भूलें:

योग सबसे अच्छा काम है –
यह कुछ दशकों की नहीं, अनंत समय की शांति और आनंद का वेतन देता है।

योग सबसे अच्छा परिवार भी है –
यह आत्मा का साथ अनंत काल तक देता है, केवल थोड़े से मानव जीवन तक नहीं।

तो आइए, इस वर्ष के अंतरराष्ट्रीय योग दिवस पर हम सब यह संकल्प लें –
कि योग को अपनी *to-do list* में सबसे ऊपर रखेंगे।
एक दिन के लिए नहीं, पूरे जीवन के लिए।

हाँ, याद रखिए –
एक योग = एक स्वास्थ्य।

कुंजल क्रिया: पेट की सफ़ाई का प्रातःकालीन संस्कार

मैं पहले मानता था कि योग हमेशा ठीक ही करता है। लेकिन एक बात मुझे लगातार परेशान करती रही। जब भी मैं सुबह योग करता था – चाहे वह तीव्र अभ्यास हों जैसे कुंजल क्रिया, केवळ कुम्भक या टाँग उठाने वाले आसन – मुझे हमेशा अच्छा लगता था। न गैस, न रिफ्लक्स, न एसिडिटी। बस स्पष्टता और हल्कापन।

लेकिन जब मैं दिन में बाद में योग करता, या शाम को हल्की-सी श्वास क्रिया भी करता – जैसे केवळ कुम्भक – तो कुछ गलत-सा लगता। कभी पेट में उफान-सा महसूस होता, कभी एसिडिटी, कभी दाईं तरफ अटका हुआ-सा भाव। तब मुझे लगा: क्या यह सच में भोजन की वजह से है? या कुछ और गहरा कारण है?

मैंने कुंजल क्रिया की। इसमें खाली पेट गुनगुना नमक वाला पानी पीकर उसे स्वेच्छा से बाहर निकाला जाता है। मैंने लगभग 200–250 मि.ली. पानी बाहर निकाला। इसके लिए मैंने जीभ के पीछे दो उँगलियाँ लगाईं – हल्के से, क्योंकि ज़्यादा बार करने से मुँह की नाज़ुक परत को नुकसान हो सकता है। जितना पानी बाहर निकल जाए, वही पर्याप्त होता है। बाकी पानी पेट से आंतों में चला जाता है। इसलिए पानी पीने के 5–7 मिनट के भीतर कुंजल करना चाहिए, वरना वह नीचे उतरने लगता है। उल्टी करते समय सिर और छाती नीचे रखना चाहिए। मुझे लगता है कि बाथरूम में कुर्सी पर बैठकर आगे झुकना बेहतर होता।

मैंने यह सब शांति से किया, और एक घंटे के भीतर ही आधा लीटर पानी जैसा दस्त भी हुआ। पेट के दाईं ओर एक भारी-सा भाव था – जैसे कुछ साफ़ हो रहा हो, पर पूरा नहीं। तब मैंने सोचा: कहीं यह अपेंडिक्स तो नहीं? क्या यह सामान्य है?

उत्तर धीरे-धीरे मिला।

सफ़ाई की श्रृंखला को समझना

कुंजल सिर्फ पेट साफ़ नहीं करता – वह पूरे पाचन तंत्र को ऊपर से नीचे तक सक्रिय कर देता है। जो "उफान" जैसा लगता है, वह समस्या नहीं है। वह शरीर का कहना होता है: "मुझे पूरा साफ़ होने दो।" कभी-कभी पानी नीचे आंतों में चला जाता है, उन्हें भी साफ़ करता है और ढीला मल भी करा देता है। यह शंखप्रक्षालन का हल्का रूप है – पूरी आँत की सफ़ाई का, पर बहुत कोमल तरीके से।

एक महत्वपूर्ण बात यह है कि कुंजल के बाद तुरंत ज़ोर वाले आसन नहीं करने चाहिए, जो पेट पर दबाव डालें। मैंने कुछ हल्के आसन किए – जैसे भुजंगासन, बालासन, कैट-काउ और उत्तानपादासन। सावधानी से। इनसे आंतों को अपना काम पूरा करने में मदद मिली – और सच में ऐसा हुआ।

कुंजल या वमन के दो-तीन घंटे बाद मैंने हल्की मूँग दाल की खिचड़ी खाई – बस एक कटोरी। केला भी खाया जा सकता है, क्योंकि वह आँतों की परत को शांति देता है। इससे पेट पर बोझ नहीं पड़ा, बल्कि संतुलन आया। कुंजल के बाद पेट की अंदरूनी परत थोड़ी संवेदनशील हो जाती है, इसलिए तीखा या भारी भोजन नहीं करना चाहिए। कुंजल पेट की सड़ी हुई कफ, विषैले पदार्थ और अतिरिक्त म्यूकस को निकालता है, जिससे वेगस नर्व को सही संकेत मिलने लगते हैं और पाचन सुधरता है।

मैंने जल नेति भी की। इससे नाक साफ़ हुई और साइनस से गले में गिरने वाला कफ रुक गया। इससे श्वास और सिर दोनों हल्के हो गए।

लेकिन जब मैंने वही योग दिन में बाद में किया – भोजन के कई घंटे बाद भी – तो पेट ने विरोध किया। तभी मुझे समझ आया: समस्या तकनीक में नहीं है। समस्या समय और तैयारी में है।

सुबह ठीक क्यों, शाम को क्यों नहीं?

सुबह पेट खाली होता है, नसें शांत होती हैं, शरीर विश्राम में होता है। उस समय वेगस नर्व – जो मस्तिष्क से पेट तक जाती है – सबसे संतुलित होती है। इसलिए सफ़ाई स्वाभाविक लगती है।

वेगस नर्व मस्तिष्क और पेट के बीच एक टेलीफोन लाइन की तरह है। उसे "वेगस" इसलिए कहते हैं क्योंकि वह भटकती हुई पूरे शरीर में फैलती है। जब यह लाइन साफ़ होती है, तो संकेत सही जाते हैं। लेकिन अगर यह ज़्यादा इस्तेमाल हो या गड़बड़ा जाए, तो गलत संदेश जाने लगते हैं।

दिन में बाद में, वही क्रियाएँ शरीर को भ्रमित कर देती हैं। भले ही पेट में भोजन न हो, शरीर भावनाओं, तनाव और पिछले कर्मों को पचा रहा होता है। वेगस संवेदनशील हो जाती है। तब केवळ कुम्भक जैसी कोमल क्रिया भी थोड़ी उत्तेजक बन सकती है – ज़ोर से नहीं, पर समय गलत होने से। इसलिए धार्मिक उपवासों या हल्के भोजन के दिनों में केवळ कुम्भक सहज लगता है।

शरीर को सरल रूप में समझें

अपने शरीर को एक घर मानिए, जिसमें तीन कामगार हैं।

ऊपर वाला लड़का छाती में रहता है। वह बोलना, डकार और उल्टी संभालता है। अगर वह ज़्यादा सक्रिय हो जाए, तो एसिड ऊपर फेंक देता है। यह उदान प्राण है।

बीच का रसोइया नाभि के पास रहता है। वह पाचन करता है। अगर वह परेशान हो जाए, तो खाना आधा पचता है और बेचैनी होती है। यह समान प्राण है।

नीचे का झाड़ू वाला नाभि के नीचे रहता है। वह मल बाहर निकालता है। अगर वह सुस्त या रुका हुआ हो, तो गैस ऊपर जाती है और ऊपर वाला लड़का घबरा जाता है। यह अपान प्राण है।

कुंजल सुबह इन्हें धीरे से जगा देता है। झाड़ू वाला काम करने लगता है, रसोइया सक्रिय होता है, और ऊपर वाला शांत रहता है।

लेकिन अगर वही क्रिया तब की जाए जब ये सब पहले से व्यस्त हों, तो वे चिड़ जाते हैं। ऊपर वाला उछलने लगता है, रसोइया गड़बड़ा जाता है, झाड़ू वाला छिप जाता है। फिर एसिड ऊपर आता है, श्वास बिगड़ती है, और अभ्यास उल्टा असर करता है।

मुझे डर था: कहीं अपेंडिक्स तो नहीं?

दाईं तरफ पेट में वह भारी-सा दर्द – मुझे लगा कहीं अपेंडिक्स तो नहीं। लेकिन मैंने जाना: कुंजल अपेंडिसाइटिस नहीं करता। हाँ, अगर अपेंडिक्स पहले से चुपचाप सूज रहा हो, तो सफ़ाई उसे महसूस करा सकती है। असली अपेंडिक्स दर्द बढ़ता जाता है, तेज़ होता है, बुखार या उल्टी लाता है। मेरा दर्द हल्का था, बदलता था, और आराम से ठीक हो गया – बाईं करवट लेटने से और गर्म अजवाइन पानी से। यह अक्सर गैस या पानी के रुकने से होता है।

अपेंडिक्स का दर्द न तो बदलता है, न कम होता है – वह बढ़ता है। संदेह हो तो अल्ट्रासाउंड ठीक है। लेकिन अगर दर्द हल्का, बदलने वाला और आसन से ठीक हो जाए, तो वह खतरनाक नहीं होता।

कुंजल के बाद कैसे सोएँ?

कुंजल के बाद दो-तीन घंटे बाद सोना बेहतर है – पहले नहीं – जब पेट शांत हो जाए। यह अनिवार्य नहीं, पर अच्छा है। सबसे अच्छी स्थिति है बाईं करवट लेटना, जिससे दाईं आंत में बचा पानी या गैस नीचे की ओर निकल सके। तुरंत पीठ के बल न लेटें। मैंने बाईं करवट आराम किया, और शरीर ने अपना काम कर लिया।

क्या कुंजल GERD ठीक कर सकता है?

हाँ – अगर GERD किसी स्थायी नुकसान से नहीं, बल्कि प्राण की गलत दिशा से हुआ है, तो कुंजल उसे ठीक कर सकता है। यह कफ साफ़ करता है, रिफ्लेक्स को रीसेट करता है, और पेट को फिर से सही व्यवहार सिखाता है।

लेकिन यह ऐसे करना चाहिए:
• सुबह जल्दी
• खाली पेट
• बहुत ज़्यादा बार नहीं
• और बाद में विश्राम व हल्का भोजन

अगर गलत समय पर या ज़्यादा किया जाए, तो यह उसी वेगस नर्व को परेशान कर सकता है, जिसे शांत करना है।

और केवळ कुम्भक का क्या?

हाँ – यह तो निष्क्रिय होना चाहिए। जब मन शांत हो, तब श्वास का रुक जाना। लेकिन संवेदनशील लोगों में, खासकर सुबह के अलावा, यह ऊपर की ऊर्जा को हल्का-सा जगा सकता है। अगर मैं श्वास "रोकने" की कोशिश करता हूँ, या मन से मौन का इंतज़ार करता हूँ, तो शरीर इसे तनाव समझ लेता है। कुंजी यही है: श्वास को खुद रुकने दो। केवळ को बुलाओ मत। उसे नींद की तरह आने दो – स्वाभाविक, विनम्र, बिना प्रयास।

जो अंत में समझ आया

शायद GERD भोजन या बीमारी से नहीं था। वह अभ्यास के गलत समय से पैदा हुआ प्राण असंतुलन था। सुबह का शरीर सब स्वीकार करता था। शाम का शरीर मना करता था।

अब मैं बस इतना करता हूँ:
सारे सक्रिय योग, कुंजल, अग्निसार या श्वास-अभ्यास केवल सुबह। शाम को मैं विश्राम करता हूँ, गरारे करता हूँ, बाईं करवट लेटता हूँ, भ्रामरी करता हूँ। मैं मौन या कुम्भक के पीछे नहीं भागता। उसे आने देता हूँ।

मेरा GERD सुनता है। मेरी श्वास सुनती है। और मैं उन्हें सुनता हूँ।

यही योग है –
मांसपेशियों या नामों का नहीं,
लय, समर्पण और सत्य का।

ऊपर वाला लड़का (उदान प्राण) शांत रहे।
बीच वाला रसोइया (समान प्राण) अपना काम करे।
नीचे वाला झाड़ू वाला (अपान प्राण) शांति से चले।

बस इतना ही।

जल नेति बनाम सूत्र नेति: आपके लिए कौन-सी सही है?

जो लोग योगिक शुद्धिकरण शुरू करते हैं, उनके मन में अक्सर एक सवाल आता है: क्या जल नेति पर्याप्त है, या सूत्र नेति में कोई खास लाभ है? मैं भी यही सोचता था। दोनों का अभ्यास करने और योगिक ग्रंथों तथा वास्तविक अनुभवों से सीखने के बाद, मैंने जो समझा है, उसे यहाँ बिल्कुल सरल और ज़मीनी भाषा में बता रहा हूँ।

जल नेति सबसे सामान्य विधि है। इसमें गुनगुने नमक वाले पानी से भरे नेति पॉट का उपयोग किया जाता है। सिर को एक ओर झुकाकर पानी एक नथुने से डाला जाता है, जो दूसरे नथुने से बाहर निकल जाता है। इससे नाक और साइनस की धूल, कफ और प्रदूषण साफ़ हो जाते हैं। यह कोमल, आसान और रोज़ के उपयोग के लिए बहुत अच्छी विधि है। खासकर अगर आपको सर्दी, एलर्जी रहती है या आप प्रदूषित जगह पर रहते हैं, तो जल नेति बहुत मदद करती है। ज़्यादातर लोगों के लिए जल नेति पूरी तरह पर्याप्त होती है।

सूत्र नेति दूसरी ओर थोड़ा उन्नत अभ्यास है। इसमें एक पतली रबर की नली या औषधीय धागा एक नथुने से डालकर मुँह से बाहर निकाला जाता है। सुनने में डरावना लगता है, लेकिन सही प्रशिक्षण के साथ यह नासिका मार्ग और साइनस को बहुत गहराई से साफ़ करता है, खासकर तब जब जल नेति पूरी तरह काम न करे। यह पुरानी साइनस समस्या, नाक की रुकावट, या गहरे योगिक अभ्यास में सहायक होती है। लेकिन सूत्र नेति रोज़ का अभ्यास नहीं है और इसे हमेशा किसी अनुभवी गुरु से ही सीखना चाहिए।

सीधे शब्दों में कहें तो:
अगर आप रोज़ाना नाक की सफ़ाई या श्वास की सहजता के लिए नेति कर रहे हैं, तो जल नेति पर्याप्त है। सूत्र नेति एक विशेषज्ञ उपकरण की तरह है – जब समस्या गहरी हो या आप गहन योग मार्ग पर हों, तभी इसकी ज़रूरत पड़ती है।

जल नेति और सूत्र नेति में सावधानी कैसे रखें

दोनों ही क्रियाएँ शक्तिशाली हैं, इसलिए सावधानी बहुत ज़रूरी है। कुछ सरल नियम हैं, जिन्हें कभी नज़रअंदाज़ नहीं करना चाहिए।

जल नेति के लिए हमेशा उबला और ठंडा किया हुआ गुनगुना पानी लें। उसमें बिना आयोडीन वाला नमक मिलाएँ – लगभग आधा चम्मच एक गिलास में। आगे झुकें, सिर को एक ओर झुकाएँ, और पानी को एक नथुने से दूसरे में धीरे-धीरे बहने दें। मुँह खुला रखें और पूरी प्रक्रिया में केवल मुँह से श्वास लें।

नेति के बाद सबसे ज़रूरी कदम है **नाक को सुखाना**। अगर पानी अंदर रह जाए, तो सिरदर्द या संक्रमण हो सकता है। इसलिए नेति के बाद हल्के से नाक साफ़ करें और 30–50 बार कपालभाति करें। यह छोटा-सा कदम बहुत बड़ी समस्याओं से बचाता है।

सूत्र नेति पहली बार कभी अकेले न करें। इसे किसी अनुभवी शिक्षक से ही सीखें। नली चिकनी होनी चाहिए और उस पर थोड़ा खाने योग्य तेल या घी लगा होना चाहिए। धीरे-धीरे डालें, मुँह से निकालें और हल्के से आगे-पीछे करें। अगर नाक में चोट, सर्दी या हाल ही में सर्जरी हुई हो, तो सूत्र नेति न करें।

चाहे जल हो या सूत्र – उपकरण को हमेशा अच्छी तरह साफ़ रखें और किसी के साथ साझा न करें।

अगर नेति पॉट की जगह आप पानी खींचते हैं तो?

कुछ लोग (जैसे मैं पहले करता था) नेति पॉट की जगह हाथ या मुट्ठी से पानी खींचकर नथुने में डालते हैं। इसे सक्शन नेति या सक्रिय नेति कहते हैं। यह कुछ लोगों के लिए काम कर जाती है, लेकिन इसमें जोखिम ज़्यादा होता है। इससे पानी कान की नलियों (यूस्टेशियन ट्यूब) में जा सकता है, जिससे दर्द या संक्रमण हो सकता है। खींचने से नाक की परत में जलन भी हो सकती है। अगर यह तरीका अपनाएँ, तो बहुत ही कोमल रहें। लेकिन शुरुआती लोगों के लिए सबसे सुरक्षित तरीका हमेशा **नेति पॉट से, गुरुत्वाकर्षण द्वारा** किया गया जल नेति ही है।

अगर कान में दर्द हो जाए तो?

अगर नेति के बाद कान में दर्द या दबाव महसूस हो, तो घबराएँ नहीं – यह गलत मुद्रा या नाक न सुखाने के कारण हो सकता है।

सबसे पहले नेति तुरंत रोक दें। सिर सीधा रखें और तुरंत लेटें नहीं। कान के पीछे गर्म सेक करें, जबड़े को हल्का हिलाएँ या भाप लें। कान में कुछ भी न डालें।

अगर दर्द एक-दो दिन में ठीक न हो, या बुखार या तरल निकलने लगे, तो डॉक्टर (विशेषकर ईएनटी) से मिलें। वे हल्की दवा, दर्द निवारक या डी-कंजेस्टेंट दे सकते हैं।

आगे से बचाव के लिए, नेति के बाद नाक पूरी तरह सुखाएँ और कभी भी ज़ोर से नेति न करें। सर्दी या नाक बंद होने पर नेति न करें।

क्या जल नेति में आयोडीन वाला नमक इस्तेमाल कर सकते हैं?

नहीं। कभी नहीं। आयोडीन वाला टेबल नमक नाक की परत को जला या सूजा सकता है। उसमें मौजूद रसायन नाक के लिए ठीक नहीं हैं। हमेशा बिना आयोडीन वाला सेंधा नमक या शुद्ध समुद्री नमक ही इस्तेमाल करें। ये प्राकृतिक और कोमल होते हैं।

अगर गलती से एक-दो बार इस्तेमाल हो जाए, तो थोड़ा जलन हो सकती है। लेकिन नियमित अभ्यास के लिए सही नमक पर ही आ जाएँ।

सेंधा नमक बनाम काला नमक – क्या दोनों चलेंगे?

सेंधा नमक जल नेति के लिए बिल्कुल सही है। यह शुद्ध, बिना प्रसंस्करण वाला और बिना आयोडीन का होता है – यही पारंपरिक रूप से सुझाया गया है।

काला नमक जल नेति के लिए बिल्कुल गलत है। इसमें सल्फर होता है, अंडे जैसी गंध आती है, और यह नाक को गंभीर रूप से परेशान कर सकता है। यह खाने या पाचन के लिए होता है, नाक की सफ़ाई के लिए नहीं। इसलिए हमेशा लेबल देखें – सिर्फ़ शुद्ध सेंधा नमक या नेति साल्ट ही इस्तेमाल करें।

तो यही है जल और सूत्र नेति के बारे में पूरी समझ – सिर्फ़ अंतर ही नहीं, बल्कि सही अभ्यास, सावधानियाँ, आम गलतियाँ और समस्या होने पर क्या करना है।

जल नेति योग का एक अद्भुत उपहार है। सही तरीके से की जाए, तो यह मन को साफ़ करती है, श्वास को शुद्ध करती है और प्रदूषण व साइनस की समस्याओं से बचाती है।
बस इसे सावधानी, धैर्य और सही ज्ञान के साथ करें।

आयुर्वेदिक बस्ति को समझना: एक कोमल विषहरण विधि

बहुत से लोग "बस्ति" शब्द सुनते ही उसे कुछ जटिल या रहस्यमय समझ लेते हैं। कुछ लोग सोचते हैं कि इसका मतलब पानी से भरे टब में बैठकर उसे गुदा से खींचना होता है। कुछ इसे आयुर्वेदिक एनीमा मानते हैं। सच यह है कि दोनों बातें आंशिक रूप से सही हैं। लेकिन बस्ति वास्तव में क्या है और यह कैसे मदद करती है, इसे समझने के लिए यह जानना ज़रूरी है कि बस्ति दो अलग-अलग प्रणालियों में आती है – एक आयुर्वेदिक बस्ति और दूसरी योगिक वस्ति।

आयुर्वेद में बस्ति पंचकर्म की पाँच प्रमुख शुद्धिकरण विधियों में से एक है। इसका उद्देश्य बड़ी आँत (कोलन) की सफ़ाई करना होता है, जिसे आयुर्वेद वात दोष का घर मानता है। वात शरीर और मन की सभी गतियों के लिए ज़िम्मेदार है। जब वात असंतुलित होता है, तो व्यक्ति को चिंता, कब्ज़, रूखापन, कमजोरी या बेचैनी हो सकती है। बस्ति वात को संतुलन में लाने में मदद करती है। इसके दो प्रकार होते हैं: निरूह बस्ति, जिसमें जड़ी-बूटियों का पानी उपयोग होता है, और अनुवासन बस्ति, जिसमें गर्म औषधीय तेल प्रयोग किया जाता है। जब तेल वाली बस्ति छोटी मात्रा में रोज़ की जाती है, तो उसे मात्रा बस्ति कहते हैं, और यही घर पर करने के लिए सबसे उपयुक्त होती है।

मात्रा बस्ति बहुत सरल है। इसमें लगभग 30 से 60 मि.ली. आयुर्वेदिक तेल को हल्का गर्म करके सिरिंज या नरम एनीमा बल्ब से मलद्वार में डाला जाता है। फिर आप बाईं करवट लेट जाते हैं, दायाँ घुटना मोड़ते हैं, नोज़ल को धीरे से अंदर डालते हैं और तेल छोड़ देते हैं। इसके बाद बस आराम से लेटे रहते हैं। इससे शौच की इच्छा नहीं होती। तेल आँतों में अवशोषित होकर नसों को पोषण देता है, मन को शांत करता है, और पाचन व नींद में भी सुधार लाता है। यह एक सुरक्षित और कोमल तरीका है, खासकर उन लोगों के लिए जिन्हें अक्सर कब्ज़, गैस, थकान या तनाव रहता है।

हालाँकि, सफ़ाई और सावधानी बहुत ज़रूरी है। अगर सिरिंज या नोज़ल गंदा हो, या तेल खराब या दूषित हो, तो संक्रमण का हल्का जोखिम हो सकता है – यह दुर्लभ है, लेकिन संभव है। अगर गुदा के पास घाव हों, खून बह रहा हो या संक्रमण हो, तो बस्ति नहीं करनी चाहिए। सुरक्षित रहने के लिए सिरिंज या एनीमा बल्ब को हर बार उपयोग से पहले और बाद में गर्म पानी से अच्छी तरह धोएँ। कभी-कभी उबालना भी अच्छा रहता है। तेल हमेशा ताज़ा, सीलबंद और विश्वसनीय कंपनी का ही लें। उसे साफ़, सूखी जगह में रखें। बुखार, बहुत अधिक कमजोरी या दस्त की स्थिति में बस्ति न करें, जब तक डॉक्टर सलाह न दे। हाथ, तौलिया और जिस जगह

आप लेटें – सब साफ़ होना चाहिए। और कभी भी अपने बस्ति उपकरण किसी और से साझा न करें।

कुछ लोग पूछते हैं कि क्या मेडिकल स्टोर में मिलने वाली डिस्पोज़ेबल एनीमा बोतल का इस्तेमाल आयुर्वेदिक बस्ति के लिए किया जा सकता है। जवाब है – हाँ। बस उसके अंदर का रासायनिक घोल फेंक दें, बोतल और नोज़ल अच्छी तरह धो लें और उसमें गर्म आयुर्वेदिक तेल भर लें। यह घर पर मात्रा बस्ति के लिए बहुत अच्छा उपकरण बन जाता है। यह उन लोगों के लिए बहुत उपयोगी है जो पूरा पंचकर्म नहीं करवा सकते या बार-बार आयुर्वेदिक क्लिनिक नहीं जा पाते।

अब भ्रम यहाँ से शुरू होता है। कुछ लोग योग ग्रंथों में बस्ति का ज़िक्र सुनकर सोचते हैं कि वही पानी खींचने वाली क्रिया है। लेकिन वह अलग अभ्यास है, जिसे **योगिक वस्ति** कहते हैं। इसमें प्रशिक्षित योगी नदी या टब में बैठकर नाभि और पेट की मांसपेशियों के नियंत्रण (नौली) से पानी को मलद्वार से अंदर खींचता है और फिर कुछ समय बाद बाहर निकाल देता है। यह गहरी शुद्धिकरण क्रिया है और शुरुआती लोगों के लिए नहीं है। आजकल यह बहुत कम लोग करते हैं। लेकिन चूँकि दोनों का उद्देश्य आँत की सफ़ाई है, इसलिए बस्ति और वस्ति के नाम अक्सर गड़बड़ा जाते हैं।

असल में आयुर्वेदिक बस्ति और योगिक वस्ति दोनों का लक्ष्य एक ही है – शरीर और मन की शुद्धि। लेकिन तरीक़े अलग हैं। योगिक वस्ति में विशेष नियंत्रण, अभ्यास और वर्षों की तैयारी चाहिए। आयुर्वेदिक बस्ति में तेल और सरल उपकरणों का उपयोग होता है, इसलिए यह घर पर नियमित रूप से करना आसान है। योगिक वस्ति को आप प्राकृतिक सक्शन से सफ़ाई कह सकते हैं, जबकि आयुर्वेदिक बस्ति पोषण और उपचार के साथ विषहरण करती है।

यह आश्चर्य की बात है कि आयुर्वेदिक बस्ति आज भी तैयार किट के रूप में आसानी से उपलब्ध नहीं है, जैसे एलोपैथिक एनीमा मिलते हैं। अगर एक पैकेट में बस्ति तेल और नरम पुनः उपयोग योग्य सिरिंज मिल जाए, तो यह हर व्यक्ति के लिए आसान हो जाएगा। यह बुज़ुर्गों, ऑफिस में बैठकर काम करने वालों, प्रसव के बाद महिलाओं, तनाव या नींद की कमी से जूझ रहे लोगों के लिए बहुत लाभदायक होगा। इससे लोग रासायनिक जुलाब पर निर्भर होने से भी बचेंगे।

कुछ आयुर्वेदिक कंपनियाँ जैसे क्षीरबला या बलाश्वगंधादि तैल बेचती हैं, लेकिन सिरिंज अलग से लेनी पड़ती है। फिर भी यह शुरुआत के लिए बहुत अच्छा है। आपको न योगी होना ज़रूरी है, न

डॉक्टर। बस मूल बातें सीखिए, साफ़ उपकरण रखें और कोमलता से अभ्यास कीजिए। मात्रा बस्ति का लाभ सिर्फ़ शौच तक सीमित नहीं रहता – लोग ज़मीन से जुड़े हुए, कम चिंतित और मानसिक रूप से शांत महसूस करते हैं।

एक और सुरक्षा बात यह है कि बस्ति भोजन के तुरंत बाद नहीं करनी चाहिए। खाने के दो-तीन घंटे बाद ही करें। मासिक धर्म के समय या बीमारी से बहुत कमजोर होने पर भी न करें। तेल की गर्माहट हमेशा पहले जाँच लें – वह गर्म हो, पर जलाने वाला नहीं। अगर कभी दर्द, जलन या सूजन महसूस हो, तो तुरंत रोक दें। बुखार या मलद्वार में असुविधा हो तो डॉक्टर से मिलें। ऐसे मामले दुर्लभ हैं, लेकिन सावधानी हमेशा बेहतर है। सही तरीके से की जाए तो बस्ति बहुत सुरक्षित है।

संक्षेप में, आयुर्वेदिक बस्ति और योगिक वस्ति दोनों प्राचीन और प्रभावशाली विधियाँ हैं, लेकिन आज के समय में ज़्यादातर लोगों के लिए **मात्रा बस्ति** — गर्म तेल और सिरिंज से की गई – सबसे सुरक्षित, आसान और लाभकारी है। यह घर पर की जा सकती है, विशेषकर शाम के समय, और यह नसों, आँतों और मन को सहारा देती है। सही ढंग से की जाए तो यह गहरे स्तर पर उपचार करती है। योगिक वस्ति एक दुर्लभ और उन्नत साधना है, जो गहरे आध्यात्मिक अभ्यास का हिस्सा है।

अगर आप कभी बस्ति को लेकर भ्रमित थे, तो अब पूरा चित्र आपके सामने है। सही तेल, साफ़ सिरिंज, कोमल विधि और थोड़ी सावधानी के साथ आप इस प्राचीन ज्ञान को अपने जीवन में उतार सकते हैं – और वह शांति, स्पष्टता और शक्ति अनुभव कर सकते हैं, जो यह देती है।

पानी से मन को शांत करें: एक सरल ध्यान विधि

कभी-कभी प्राचीन ज्ञान और भीतर की सहज बुद्धि मिल जाती है, और तब कोई बहुत सरल लेकिन गहरा अभ्यास जन्म लेता है। मेरे साथ भी यही हुआ – एक छोटे से, पर अत्यंत शांत करने वाले प्रयोग के साथ। ध्यान करते समय मुँह में पानी की एक घूँट रखकर बैठना। समय के साथ मैंने देखा कि यह छोटा-सा कार्य सिर में चढ़ी हुई ऊर्जा को नीचे खींच लाता है, खासकर तब जब माथे में भारीपन, विचारों की जकड़न या ऊपरी शरीर में असहज ऊर्जा जमा हो जाती है।

यह अभ्यास बेहद सरल है। एक गिलास साफ़, कमरे के तापमान का पानी पास रखें। एक छोटी घूँट लें – पूरा मुँह नहीं भरना है, बस इतनी कि पानी आराम से मुँह में ठहर जाए। फिर आँखें बंद करें और बस मुँह में मौजूद पानी की उपस्थिति पर ध्यान रखें। न श्वास नियंत्रण, न कल्पना, न कोई तकनीक – केवल पानी की अनुभूति। श्वास को पूरी तरह स्वाभाविक और मुक्त रहने दें।

कुछ समय बाद आप एक आश्चर्यजनक चीज़ महसूस करेंगे। बिना किसी ज़ोर के शरीर प्रतिक्रिया देने लगता है। निचले पेट के आसपास हल्के, अनैच्छिक स्पंदन शुरू हो जाते हैं। यह बहुत कोमल कपालभाति जैसा लगता है, लेकिन यह अपने आप होता है। कोई ज़ोर नहीं, कोई क्रिया नहीं – बस एक नीचे की ओर खिंचाव, जैसे शरीर खुद को संतुलित करना चाहता हो। सिर में भरा हुआपन हल्का होने लगता है, गला ढीला पड़ जाता है, और सचमुच ऊर्जा को नाभि और उससे नीचे की ओर जाते हुए महसूस किया जा सकता है।

इस अभ्यास की एक अच्छी बात यह भी है कि आपको एक ही घूँट दस मिनट तक रखने की ज़रूरत नहीं है। वह असहज हो सकता है। जब लगे कि घूँट पूरी हो गई है, तो या तो पानी निगल लें या बाहर थूक दें और नई घूँट ले लें। 5 से 15 मिनट तक यह चक्र चलाते रहें, जितना शरीर को अच्छा लगे। यह पूरी तरह शरीर के संकेतों से चलता है, बिना प्रयास के। मन पर कोई दबाव नहीं पड़ता, पेट पर कोई ज़ोर नहीं पड़ता, और श्वास में कोई बाधा नहीं आती। पानी जैसे मन और शरीर दोनों को एक साथ ज़मीन पर टिकाए रखता है।

मेरे जैसे व्यक्ति के लिए, जिसे कभी-कभी GERD या एसिडिटी से परेशानी रहती है, यह विधि बहुत राहत देने वाली रही। गहरी श्वास तकनीकों या तीव्र क्रियाओं के विपरीत, यह अभ्यास ठंडा, सुरक्षित और शांत करने वाला है। इसमें न डायाफ्राम पर ज़ोर है, न श्वास रोकना, न रिफ्लक्स का डर। पानी की ठंडक भीतर की गर्मी को संतुलित करती है और सजगता प्राण को छाती और

सिर से नीचे खींच लाती है। यह उन साधकों के लिए भी उपयोगी है, जिन्हें ध्यान या प्राणायाम के बाद सिर में अत्यधिक ऊर्जा महसूस होती है। यह बिना किसी तीव्र प्रयास के संतुलन वापस लाता है।

इस जल-ध्यान को सोने से पहले, भोजन के 1–2 घंटे बाद, या किसी भी समय किया जा सकता है जब मन बहुत बोल रहा हो, माथे में दबाव हो, या ऊर्जा ऊपर चढ़ी हुई महसूस हो और उसे शांत करना हो। लेकिन सबसे अच्छा समय है – सुबह योग के तुरंत बाद, खाली पेट, जब मस्तिष्क में दबाव ज़्यादा होता है। तब यह अतिरिक्त ऊर्जा को बहुत प्रभावी ढंग से नीचे लाता है। यह सुरक्षित, कोमल और इतना सहज है कि आपको आश्चर्य होगा कि इस पर पहले ज़्यादा बात क्यों नहीं हुई।

एक सावधानी – केवल साफ़ पीने का पानी ही लें। ज़्यादा देर तक पानी न रखें अगर असहज लगे। गले में दर्द हो या शरीर बहुत ठंडा लग रहा हो तो न करें। लेकिन सामान्य रूप से यह एक सुरक्षित और शांत करने वाला अभ्यास है, जो सही सजगता के साथ करने पर बहुत सुंदर ढंग से काम करता है।

जो एक साधारण प्रयोग के रूप में शुरू हुआ, वह मेरे लिए सबसे ज़मीन से जोड़ने वाली विधियों में से एक बन गया। यह किसी किताब से नहीं आया, न किसी योग कक्षा में सिखाया गया, लेकिन यह मेरे अनुभव की सबसे शांत करने वाली ध्यान-युक्तियों में से एक है।
पानी, ध्यान और थोड़ी-सी स्थिरता – बस इतना ही काफ़ी है, फिर से शरीर से जुड़ने और संतुलन महसूस करने के लिए।

केवळ कुम्भक, सात्त्विक जीवन और आंतरिक लय का सूक्ष्म अनुग्रह

अपनी आध्यात्मिक यात्रा के दौरान मैंने एक बहुत सूक्ष्म लेकिन शक्तिशाली बात देखी – गले के क्षेत्र में होने वाली गड़बड़ी सीधे ध्यान की गहराई को प्रभावित करती है, खासकर केवळ कुम्भक को, जो बिना किसी प्रयास के आने वाली श्वास-रहित स्थिरता है। मैंने इसे आयुर्वेद की दृष्टि से समझना शुरू किया, विशेष रूप से त्रिदोष सिद्धांत – वात, पित्त और कफ – के माध्यम से, और यह कैसे योगिक अनुभव से गहराई से जुड़ा है।

मुझे समझ आया कि वात, खासकर उदान वायु के असंतुलन के रूप में, पेट से ऊपर की ओर चलने लगता है – ठीक वैसे ही जैसे अम्ल गले की ओर चढ़ता है, जिसे हम एसिड रिफ्लक्स कहते हैं। यह ऊपर की गति न केवल पाचन को बिगाड़ती है, बल्कि सूक्ष्म प्राण प्रवाह को भी बाधित करती है। जब पित्त बढ़ता है, तो उसी अम्ल के कारण गले में जलन या गर्मी दिखाई देती है। और जब कफ बढ़ता है, तो गले में कफ जम जाता है, जिससे भारी और अवरुद्ध-सा अनुभव होता है। मैंने ये तीनों अवस्थाएँ अलग-अलग समय पर महसूस की हैं – और ये सभी केवळ कुम्भक में प्रवेश करना या गहरे ध्यान में स्थिर रहना लगभग असंभव बना देती हैं। गले में कफ का जमना तो योगी के लिए सबसे परेशान करने वाला होता है, क्योंकि यह बार-बार शरीर की ओर ध्यान खींच लाता है और भीतर की शांति तोड़ देता है।

यहीं मुझे समझ आया कि योग में सात्त्विक आहार – हल्का, स्वच्छ, बिना तीखा और बिना तला हुआ भोजन – इतना ज़ोर देकर क्यों कहा गया है। यह केवल स्वास्थ्य के लिए नहीं, बल्कि आंतरिक स्थिरता के लिए है। यही कारण है कि उपवास और धार्मिक अनुष्ठानों में भी ऐसा भोजन लिया जाता है। एक बार मैं सात दिनों की एक धार्मिक कथा में शामिल हुआ, जहाँ सभी साधक हल्का, फल-आधारित भोजन और उपवास कर रहे थे। आश्चर्य की बात यह थी कि मेरी श्वास अपने आप धीमी हो गई और मैं सहज ही केवळ कुम्भक में चला गया। मुझे निर्विकल्प समाधि की झलकें भी मिलीं – गहरी, अहंकार-रहित स्थिरता, जिसमें बहुत आनंद होता है। यह सब योजनाबद्ध नहीं था; वह सातों दिन बार-बार अपने आप घटता रहा। लेकिन अंतिम दिन कुछ बदल गया। मेरी किसी से हल्की-सी बहस हो गई, और मानसिक शांति टूट गई। उस दिन, वही भोजन और वही वातावरण होने पर भी, मैं उस श्वास-रहित स्थिरता में प्रवेश नहीं कर सका। इससे मुझे यह समझ आया कि आहार जितना ज़रूरी है, उतनी ही मानसिक सामंजस्य भी ज़रूरी है। एक छोटा-सा मानसिक विक्षोभ भी पूरे आंतरिक क्षेत्र को बिगाड़ सकता है।

पूरे अनुष्ठान के दौरान मैं आसन में शांत बैठा रहता था, आँखें बंद, पुरोहित की ओर मुख किए हुए। चारों ओर मंत्रोच्चार, घंटियों और शंखों की ध्वनि, धूप की सुगंध और कथा का प्रवाह चल रहा था – पूजा के सभी पवित्र स्वर। लेकिन ये मुझे विचलित नहीं कर रहे थे, बल्कि भीतर की शांति को और गहरा कर रहे थे। मैं शब्दों पर ध्यान नहीं दे रहा था, न कुछ समझने की कोशिश कर रहा था। मेरी सजगता केवल श्वास पर थी, भीतर की ओर बहती हुई, और स्थिरता को आने देती हुई। फिर भी मैंने गहरा आनंद महसूस किया – कई बार उन लोगों से भी अधिक, जो कथा को ध्यान से सुन और समझ रहे थे। पहले यह मुझे अजीब लगा। फिर समझ आया – मेरा चेतन मन शामिल नहीं था, लेकिन अवचेतन या गहरा आत्म-स्तर सब कुछ पृष्ठभूमि में ग्रहण कर रहा था। पवित्र वातावरण मुझे प्रयास से नहीं, उपस्थिति से छू रहा था।

अब मैं देखता हूँ कि ऐसे भक्तिमय वातावरण में ध्वनि-तरंगें मानसिक बाधा नहीं होतीं – वे सूक्ष्म शरीर को संतुलित करने वाली कोमल लहरों की तरह होती हैं। क्योंकि मैं पहले से ही प्रत्याहार में था (इंद्रियों का भीतर लौटना), ये पवित्र ध्वनियाँ मुझे बाहर नहीं खींचती थीं। उल्टे, वे मुझे और भीतर स्थिर कर देती थीं, श्वास को गहरी स्थिरता में टिकाती थीं। आसपास मौजूद शांत, उपवास करने वाले, भक्त लोगों की सामूहिक सात्त्विक ऊर्जा ने मेरी साधना को सहारा दिया – भले ही मैं मानसिक रूप से किसी अनुष्ठान का पालन नहीं कर रहा था।

इससे मुझे समझ आया कि सच्चा श्रवण हमेशा प्रयास से नहीं होता। जब मन शांत हो और हृदय खुला हो, तब आत्मा स्वयं सुनती है, और भक्ति का फल बिना प्रयास भीतर उतरता है। शायद इसी कारण मेरा आनंद अधिक गहरा था – कोई सोचना नहीं, कोई प्रयास नहीं – केवल होना। यहीं भक्ति और ज्ञान मिलते हैं – अलग-अलग मार्ग नहीं, बल्कि अनुग्रह की सहज अवस्थाएँ।

इन सब पर विचार करते हुए मुझे लगा कि ऐसा अनुभव घर पर भी धीरे-धीरे रचा जा सकता है। इसके लिए मंदिर या भीड़ की ज़रूरत नहीं है। मैंने घर पर एक छोटा-सा प्रयोग करने की योजना बनाई – एक या दो दिन का मौन और सात्त्विक जीवन:

- केवल फल-आधारित या उबला सात्त्विक भोजन, वह भी थोड़ी मात्रा में।
- पृष्ठभूमि में धीमी भागवत कथा, मंत्र या पवित्र संगीत।
- सरल आसन में बैठना, आँखें बंद, केवल श्वास पर ध्यान।
- उस दिन कोई बहस, ज़्यादा सोच या भावनात्मक हलचल नहीं।
- स्क्रीन से दूर रहना, सिवाय आध्यात्मिक ऑडियो के।

मैं इसे अपना "अंतर श्रवण विश्राम" कहता हूँ। यह बाहर से कुछ करने का अभ्यास नहीं है, बल्कि भीतर विश्राम का अभ्यास है, जहाँ सात्त्विक तरंगें सूक्ष्म शरीर को स्नान कराती हैं। कुछ ही घंटे ऐसे बिताने से केवळ कुम्भक लौट आता है और कारण-रहित आनंद की एक कोमल झलक मिलती है। कई बार बिना कोशिश के ही मुझे लगता है कि मेरा अस्तित्व पृष्ठभूमि में "सुन" रहा है, और भीतर कुछ गहरा शुद्ध या ऊँचा हो रहा है।

ये सरल अभ्यास समाधि पाने के लिए नहीं हैं, बल्कि उन बाधाओं को हटाने के लिए हैं, जो आनंद के स्वाभाविक उदय को रोकती हैं। यह अधिक प्रयास का प्रश्न नहीं है – यह कम घर्षण का प्रश्न है। जब श्वास अपने आप रुकती है, जब मन बिना ज़ोर के भीतर गिर जाता है, जब भक्ति शब्दों के बिना छूती है – वही योग का सच्चा अनुग्रह है।

भ्रामरी, उज्जायी, चंद्र अनुलोम: कोमल श्वास अभ्यास जो ऊर्जा को संतुलित करें और स्नायु-तंत्र को शांत करें

हाल के दिनों में मैं कुछ सरल लेकिन प्रभावी श्वास अभ्यासों को गहराई से समझने और अनुभव करने में लगा हूँ – मुख्यतः भ्रामरी (गुनगुनाने वाली श्वास), उज्जायी (समुद्र जैसी श्वास) और चंद्र अनुलोम (बाएँ नथुने से शांत करने वाली श्वास)। मेरा उद्देश्य केवल "प्राणायाम करना" नहीं था, बल्कि यह समझना था कि ध्वनि, कंपन और सजगता के साथ जुड़ने पर ये अभ्यास ऊर्जा की दिशा को कैसे बदलते हैं। मैं यह भी जानना चाहता था कि क्या ये भोजन के बाद किए जा सकते हैं, और इन्हें कोमल रूप से करने पर स्नायु ऊर्जा या कुंडलिनी पर क्या प्रभाव पड़ता है।

क्या भ्रामरी ऊर्जा को नीचे लाती है?

भ्रामरी का नियमित अभ्यास करते हुए मैंने सबसे पहले यह देखा कि यह मस्तिष्क को शांत करता है और ऊर्जा को नीचे की ओर लाता है। यह भारीपन या नींद जैसा नहीं, बल्कि ज़मीन से जुड़ा हुआ और शांत अनुभव होता है। गुनगुनाने की ध्वनि ध्यान को स्वाभाविक रूप से भीतर खींच लेती है। मैंने महसूस किया कि यह सिर के दबाव को कम करती है, विचारों को संतुलित करती है, और ऊपर की ओर भाग रही प्राण-ऊर्जा को भी शांत कर देती है – जो कभी-कभी गहरे ध्यान या तीव्र आध्यात्मिक अनुभवों के बाद महसूस होती है। भ्रामरी यह सब बहुत सुंदर ढंग से संतुलित कर देती है।

उच्छवास और पैरासिम्पैथेटिक प्रतिक्रिया

मुझे यह समझ आया कि उच्छ्वास (श्वास छोड़ना) स्वाभाविक रूप से पैरासिम्पैथेटिक स्नायु-तंत्र को सक्रिय करता है, जो शरीर का "विश्राम और पाचन" तंत्र है। इसके विपरीत, श्वास लेना (पूरक) सिम्पैथेटिक तंत्र को सक्रिय करता है – यानी "लड़ो या भागो" की अवस्था। इसलिए यह बिल्कुल स्वाभाविक लगा कि भ्रामरी, जो लंबे उच्छ्वास के साथ की जाती है, शरीर को विश्राम की ओर ले जाती है। जितना लंबा और कोमल उच्छ्वास, उतनी गहरी शांति। लेकिन इससे भी अधिक रोचक बात यह थी कि केवल कंपन – श्वास के अलावा भी – स्नायु-तंत्र को शांत करता है।

क्या केवल कंपन भी शांत कर सकता है?

हाँ। यह जानकर मुझे आश्चर्य नहीं हुआ कि गुनगुनाना, ओम् का उच्चारण या गले से निकलने वाली ध्वनियाँ वेगस नर्व को सक्रिय करती हैं – जो पैरासिम्पैथेटिक तंत्र की मुख्य नस है। यही कारण है कि दुःख या भावनात्मक दबाव में लोग अनायास गले से आवाज़ निकालते हैं। हमारे पहाड़ी क्षेत्र में इसे "कनाना" कहते हैं – एक स्वाभाविक, दिल से निकली आवाज़, जो भीतर का दबाव छोड़ देती है। यह सिखाई नहीं जाती, शरीर स्वयं करता है। भ्रामरी भी इसी सिद्धांत को योगिक रूप से सजग और उपचारक बना देती है।

भ्रामरी बनाम उज्जायी – कब कौन-सी?

जब मैंने भ्रामरी और उज्जायी की तुलना की, तो अंतर स्पष्ट हो गया। भ्रामरी पूरी तरह उच्छवास के कंपन पर आधारित है। आप शांति से श्वास लेते हैं और फिर नाक से धीरे-धीरे गुनगुनाते हुए छोड़ते हैं। यह ध्वनि मस्तिष्क को शांत करती है, आज्ञा चक्र को संतुलित करती है और ऊपर की ओर दौड़ती सोच या ऊर्जा को शांत करती है।

उज्जायी में गले को हल्का-सा संकुचित किया जाता है, जिससे श्वास लेते और छोड़ते समय समुद्र जैसी आवाज़ आती है। इसमें भ्रामरी जैसी तीव्र शांति नहीं, लेकिन यह ध्यान, योग या चलने के दौरान श्वास को संतुलित और लंबा करने के लिए बहुत अच्छा है। भ्रामरी दिन को शांत करने के लिए श्रेष्ठ है, जबकि उज्जायी उपस्थित और स्थिर रहने के लिए।

अगर भ्रामरी पर्याप्त है तो चंद्र अनुलोम क्यों?

यह प्रश्न स्वाभाविक था। जवाब ऊर्जा की दिशा में छिपा है। भ्रामरी सामान्य रूप से पूरे स्नायु-तंत्र को शांत करती है, जबकि चंद्र अनुलोम विशेष रूप से इड़ा नाड़ी को सक्रिय करती है – जो बाईं ओर की शीतल, चंद्र ऊर्जा है। जब ऊर्जा बहुत गरम, बेचैन या बिना आधार के ऊपर चढ़ रही हो, तब केवल बाएँ नथुने से श्वास लेना उसे शांत, नीचे की दिशा में मोड़ देता है। इसलिए अब मैं इन्हें एक-दूसरे का पूरक मानता हूँ – भ्रामरी सामान्य शांति लाती है, चंद्र अनुलोम ऊर्जा को सही दिशा में मोड़ती है।

क्या ये भोजन के बाद किए जा सकते हैं?

यह मेरा बड़ा सवाल था। क्योंकि मुझे कभी-कभी एसिडिटी या GERD होता है, मैं पाचन को बिगाड़ना नहीं चाहता था। अच्छी बात यह है कि भ्रामरी, हल्की उज्जायी और चंद्र अनुलोम – तीनों ही भोजन के बाद सुरक्षित हैं, यदि कोमलता से किए जाएँ।

भ्रामरी में पेट पर कोई दबाव नहीं पड़ता, न श्वास रोकनी होती है – इसलिए यह भोजन के बाद बिल्कुल सुरक्षित है। उज्जायी भी ठीक है, बस उसमें कुम्भक या पेट का ज़ोर न जोड़ें। चंद्र अनुलोम तो भोजन के बाद और भी उपयोगी है, क्योंकि यह गर्मी को संतुलित करता है, भावनात्मक बेचैनी को शांत करता है और पाचन के बाद शरीर को विश्राम की अवस्था में लाता है।

भोजन के बाद जिन अभ्यासों से बचना चाहिए वे हैं – कपालभाति, भस्त्रिका, या बंधों के साथ श्वास रोकना – क्योंकि ये पेट पर दबाव डालते हैं।

चंद्र अनुलोम या चंद्र भेदन?

यहाँ एक शब्द-स्पष्टता ज़रूरी है। कुछ लोग बाएँ नथुने से श्वास लेना और दाएँ से छोड़ना चंद्र अनुलोम कहते हैं, लेकिन वह वास्तव में चंद्र भेदन कहलाता है, जो थोड़ा उत्तेजक होता है और भोजन के बाद उपयुक्त नहीं। कोमल चंद्र अनुलोम वह है जिसमें श्वास बाएँ से ली जाए और छोड़ी जाए बाएँ या दोनों से। यही संस्करण अधिक शांत और सुरक्षित है।

मेरे शब्दों में निष्कर्ष

इन तीनों अभ्यासों को अलग-अलग स्थितियों में बार-बार करके मैंने यह समझा:

• जब मन बहुत सक्रिय हो, सिर में दबाव हो या ऊर्जा ऊपर अटकी हो – भ्रामरी सबसे अच्छी है।
• जब आप शांत उपस्थिति चाहते हैं, ध्यान या गति के साथ – उज्जायी सबसे उपयुक्त है।
• जब ऊर्जा गरम, भावनात्मक या पाचन संवेदनशील हो – खासकर शाम या भोजन के बाद – चंद्र अनुलोम श्रेष्ठ है।

तीनों ही अभ्यास सरल, सुरक्षित और शुरुआती लोगों के लिए उपयुक्त हैं – बस सजगता के साथ करने की ज़रूरत है। मैं अब एक छोटे प्रयोग की योजना बना रहा हूँ, जहाँ दिन के अलग-अलग समय पर इन तीनों का अभ्यास कर ऊर्जा के पैटर्न देखे जाएँगे – भोजन से पहले, बाद में, ध्यान में और सोने से पहले। उद्देश्य है एक व्यक्तिगत "श्वास मानचित्र" बनाना – जिससे शांति, केंद्रितता या स्थिरता को इच्छानुसार लाया जा सके।

अगर आप कभी बहुत अधिक सोच में फँस जाएँ, भीतर बेचैनी हो या सिर में भारीपन लगे – तो इनमें से कोई भी अभ्यास आज़माइए। कुछ ही चक्र भ्रामरी या चंद्र अनुलोम, या हल्की उज्जायी, आपको उस आंतरिक मौन से जोड़ सकती है जो हमेशा शोर के नीचे मौजूद रहता है।

अगर आप इस प्रयोगात्मक साधना में शामिल होना चाहते हैं या मेरी बनाई दिनचर्या पाना चाहते हैं, तो मुझे संदेश या टिप्पणी भेजिए।
हम जहाँ भी हों, वहीं से साथ श्वास लेंगे।

मध्यम मार्ग, संतुलित दोष और सरलता से बहता योग

मैं एक बात बार-बार देख रहा हूँ – किताबों से नहीं, बल्कि जीवन से, शरीर से, अनुभूति से और अपने भीतर चल रही प्रक्रिया से। आयुर्वेद कहता है कि वात, पित्त और कफ – ये तीनों दोष एक स्वस्थ व्यक्ति में संतुलन में रहते हैं।
जब वात बढ़ता है, यानी शरीर-मन में चंचलता और गतिविधि बढ़ती है, तो उसके साथ गर्मी भी बढ़ती है। यह गर्मी ही पित्त है। और जब यह गर्मी ज़्यादा हो जाती है, तो शरीर खुद को ठंडा करने के लिए कफ पैदा करता है – यानी श्लेष्मा, नमी या भारीपन।

अगर इस चक्र को ध्यान से देखें, तो यही रोग की पूरी तस्वीर है – सूजन, दर्द, जलन या असंतुलन। यह पेट में हो सकता है, जोड़ों में, मन में या नसों में।
सब कुछ शुरू होता है अधिक गतिविधि से, फिर गर्मी बनती है, और अंत में तरल या सूजन आती है।
मैंने यह लय अपने भीतर, दूसरों में, पशुओं में और प्रकृति में देखी है। अब यह सिद्धांत नहीं रहा, यह अनुभव बन गया है।

आधुनिक विज्ञान भी यही करता है, बस भाषा अलग है।
एंटीबायोटिक उन जीवाणुओं को मारते हैं जो असंतुलन में शरीर में पनपते हैं।
बुखार की दवा गर्मी (पित्त) को कम करती है।
सूजन की दवा कफ को दबाती है।

फर्क सिर्फ इतना है कि आधुनिक चिकित्सा जो हो चुका है उसे दबाती है,
जबकि आयुर्वेद कोशिश करता है कि असंतुलन हो ही न।

मुझे यह भी समझ आया कि "जैसा भीतर, वैसा बाहर।"
जब भीतर बेचैनी होती है, तो वही जीवाणु आते हैं जो बेचैनी में फलते-फूलते हैं।
जब बेचैनी ही न रहे, तो रोग का कारण भी नहीं रहता।
यही असली रोकथाम है।

पित्त केवल गर्मी नहीं है – वह जलन, चोट और ऊतकों की जलन भी है।
आधुनिक दवाएँ इसे दबाती हैं, लेकिन साथ में अच्छे पित्त को भी दबा देती हैं –
जिससे पाचन और बुद्धि कमजोर पड़ जाती है।
आग बुझ जाती है, पर जीवन भी मंद हो जाता है।

इसी तरह जब वात बढ़ता है – बेचैनी, घबराहट, चिड़चिड़ापन –
तो व्यक्ति दुर्घटना या झगड़े में फँस सकता है,
और उससे शरीर में चोट, सूजन और कफ बढ़ता है।
अगर बुखार ठीक न हो, तो शरीर ठंडा और भारी होने लगता है –
यह गहरा कफ असंतुलन है, जो कभी-कभी मृत्यु से पहले भी दिखता है।

हालाँकि हर व्यक्ति में कारण अलग हो सकता है।
कुछ लोगों में वात प्रमुख होता है – खासकर बुद्धिजीवियों में।
कुछ में पित्त – जैसे क्रोधी स्वभाव वाले।
कुछ में कफ – जैसे नशे या सुस्ती की ओर झुकाव रखने वाले।
समाज में मेलों, उत्सवों, यात्राओं का उद्देश्य भी यही है –
लोग अपने दोषों को संतुलित करने की कोशिश करते हैं, भले ही उन्हें पता न हो।

इसलिए आयुर्वेद केवल जड़ी-बूटियाँ नहीं है।
यह योग से जुड़ा है।
योग तभी संभव है जब दोष संतुलन में हों।
भारी शरीर में योग नहीं होता,
बेचैन शरीर में भी नहीं,
और जले हुए शरीर में तो बिल्कुल नहीं।

आधुनिक दवाएँ कभी-कभी मदद करती हैं –
वे तमस (जड़ता) से बाहर निकाल देती हैं।
लेकिन उच्च योग अवस्थाओं में वे बहुत रूखी पड़ जाती हैं।
वहाँ आयुर्वेदिक जीवनशैली ज़रूरी हो जाती है।

मैं यह नहीं कहता कि मैं किसी अंतिम अवस्था में हूँ।
मुझे केवल कुछ झलकें मिली हैं –
कुछ क्षण जहाँ "मैं" मिट गया और आनंद भर गया।
मैंने खुद ही अनुभव को नीचे उतार लिया।
मैं अभी सीख रहा हूँ।

मुझे यह भी समझ आया कि दोष केवल अधिक होने से नहीं बिगड़ते –
कम होने से भी बिगड़ते हैं।

अगर वात बहुत कम हो जाए, तो उत्साह नहीं रहता।
अगर पित्त कम हो जाए, तो परिवर्तन की शक्ति नहीं रहती।
अगर कफ कम हो जाए, तो आधार नहीं रहता, स्थिरता नहीं रहती।

योग दोषों को हटाने का नाम नहीं है।
योग उन्हें सही मात्रा में रखने का नाम है।
वात ऊर्जा उठाता है,
पित्त क्रिया देता है,
कफ स्थिरता देता है।
तीनों बिना योग अधूरा है।

फिर मैंने सोचा – मध्यम मार्ग बुद्ध ने क्यों कहा, आयुर्वेद ने क्यों नहीं?
उत्तर साफ है।
आयुर्वेद स्वास्थ्य के लिए संतुलन सिखाता है।
योग ऊर्जा को शुद्ध करता है।
बुद्ध ने इसी संतुलन को मुक्ति का मार्ग बना दिया।

योग कहता है – अंत में सत्त्व भी छोड़ना है।
लेकिन पहले सत्त्व, रजस, तमस को संतुलित करना पड़ता है।
जब ये संतुलित होते हैं, तब वे एक-दूसरे को मिटाते हैं,
और मन मौन में टिकता है।

अब मैं समझ गया हूँ –
आयुर्वेद खेत तैयार करता है,
योग बीज बोता है,
और बुद्ध आकाश खोल देता है।

लेकिन तीनों एक ही सत्य पर मिलते हैं –
न अधिक, न कम –
संतुलन ही स्वास्थ्य है,
संतुलन ही मुक्ति है।

यह रास्ता दिखाने का नहीं है,
यह रोज़-रोज़ खुद को ठीक करने का रास्ता है।
न शरीर से लड़ना,
न श्वास को ज़ोर से पकड़ना,
न मन को दौड़ाना।

बस मध्यम मार्ग पर चलना –
जब तक चलना भी अपने आप छूट न जाए।

योग किसका है? जब ईर्ष्या आध्यात्मिक वस्त्र पहन लेती है

आज योग को अक्सर एक विषय की तरह देखा जाता है – जैसे इंजीनियरिंग, संगीत या दर्शन। कुछ लोग वर्षों तक योग में डूबे रहते हैं, उसका पहनावा अपनाते हैं, भाषा सीखते हैं, जीवनशैली बना लेते हैं। धीरे-धीरे उन्हें लगने लगता है कि योग की लौ अब उन्हीं के हाथ में है, वे ही इसके असली अधिकारी हैं।

लेकिन फिर एक अजीब बात होती है।
कोई वैज्ञानिक, कलाकार, ऑफिस में काम करने वाला, या गृहिणी – जो इस "योग मंडली" से बाहर का है – अगर सच्चे मन से भीतर मुड़ता है और उसमें गहराई से शांति आने लगती है, तो यह पारंपरिक ढांचे को हिला देता है। ऐसे लोग कुछ तथाकथित योगियों को "लाइन तोड़ने वाले" लगते हैं – जिन्होंने न सालों की साधना की, न नियमों से गुज़रे, फिर भी भीतर कुछ छू लिया।

अंदर कहीं एक कड़वाहट उठती है –
"इन्होंने वह आग नहीं जेली जो हमने जेली है। ये ऐसे कैसे आगे निकल सकते हैं?"

लेकिन योग कोई कतार नहीं है।
और उसका कोई दरवाज़ा-रक्षक नहीं है।

असल समस्या अक्सर उस साधक के मन में होती है जो खुद को पीछे छूटता महसूस करता है। जब कोई व्यक्ति दस-बीस साल अभ्यास करता है, लेकिन भीतर की शांति नहीं आती, तो मन किसी को दोषी ढूँढने लगता है। खुद से सवाल पूछना कठिन होता है।
शायद अभ्यास ही गलत था।
शायद सब कुछ अहंकार था – समर्पण के बिना मेहनत, समझ के बिना नकल।
वस्त्र पहन लिया, आसन सीख लिए, मंत्र याद कर लिए – लेकिन भीतर कुछ नहीं बदला।

फिर कोई बिल्कुल अलग जीवन से आया व्यक्ति चुपचाप बैठता है, और उसी मौन में उतर जाता है जिसे आप वर्षों से खोज रहे थे। यह बात बहुत चुभती है।

योग कभी पहचान बनने के लिए नहीं था।
वह न धर्म है, न पेशा, न जाति।
वह बस भीतर की ओर ईमानदार गति है।

जो भी भीतर मुड़ता है और स्थिर हो जाता है – वही योग कर रहा है।
चाहे वह व्यापारी हो, किसान हो, कलाकार हो या नेता।
चेतना को रिज़्यूमे से कोई मतलब नहीं।
वह केवल सच्चाई से प्रतिक्रिया देती है।

दर्द उनकी प्रगति से नहीं होता।
दर्द हमारी तुलना से होता है।
हमारी यह मान्यता कि मेहनत का इनाम मिलना चाहिए,
कि समय = प्रगति,
कि परंपरा = उपलब्धि।
ये सब आध्यात्मिक भ्रम हैं।

बहुत से लोग वर्षों की साधना के बाद भी सूक्ष्म आध्यात्मिक अहंकार में फँस जाते हैं। यह धीरे-धीरे आता है, दिखता नहीं। जैसे-जैसे साधना बाहरी बनती है, यह अहंकार बढ़ता है। और जब यह जाँचा नहीं जाता, तो ईर्ष्या बनकर निकलता है – धर्म के नाम पर, नियम के नाम पर, "योग की शुद्धता" के नाम पर।

हम सोचने लगते हैं –
"दूसरे इसके योग्य नहीं हैं।"

लेकिन सच यह है कि योग कोई कमाने की चीज़ नहीं है।
वह तब प्रकट होता है जब पकड़ छोड़ दी जाती है।
और उस प्रकट होने में कोई मालिक नहीं होता।

अगर किसी और की आध्यात्मिक वृद्धि हमें परेशान करती है, तो वह संकेत है –
उसे नहीं, खुद को देखने का।
क्या हम योग कर रहे हैं, या योग पहन रहे हैं?
क्या हम अपने दुख को गहराई का प्रमाण मान बैठे हैं?
क्या हमें यह बुरा लगता है कि किसी को शांति बिना हमारे जैसे संघर्ष के मिल गई?

ये प्रश्न कठिन हैं, लेकिन ज़रूरी हैं।

सच्चा योगी कभी किसी के जागने से डरता नहीं।
वह खुश होता है, क्योंकि वह प्रकाश उसका नहीं है – सबका है।

अगर कोई "लाइन टूट" रही है, तो वह सिर्फ इस भ्रम की है कि जागृति किसी खास रास्ते या समूह की संपत्ति है। जो लोग जल्दी बढ़ते हैं, वे दुश्मन नहीं हैं – वे याद दिलाते हैं कि कृपा हमारी समय-सारणी नहीं मानती। वह वहीं बहती है जहाँ हृदय खुला हो।

जिस पल हम सोचते हैं कि हम आध्यात्मिक हैं, उसी पल कुछ खो देते हैं।
जिस पल हम सोचते हैं कि हमने ज़्यादा संघर्ष किया है इसलिए हम ज़्यादा हकदार हैं, उसी पल योग की आत्मा छूट जाती है।

योग न प्रतियोगिता है, न दौड़।
वह तो बस अपने आप से मिलने की ईमानदार इच्छा है –
बिना पहचान, बिना छवि, बिना गर्व के।

और यह इच्छा किसी की भी हो सकती है।
जिस दिन यह जागती है, उसी दिन योग शुरू होता है –
शांत, सच्चा और मुक्त।

एंडोस्कोपी से जागी अद्वैत चेतना: धौती क्रिया से छुपा हुआ संबंध

एक बार, एंडोस्कोपी करवाने के बाद मेरे भीतर एक अजीब और अप्रत्याशित परिवर्तन हुआ – एक सूक्ष्म लेकिन स्पष्ट अद्वैत बोध। यह न तो कोई सामान्य ध्यान का अनुभव था, न ही आनंद से भरी कोई अवस्था। यह बिल्कुल कच्चा, तटस्थ और तीव्र रूप से उपस्थित था। मैं एंडोस्कोप को अपने भीतर प्रवेश करते हुए महसूस कर रहा था – पेट की भीतरी परत को छूते हुए, उसे पार करते हुए, और फिर और गहराई में, छोटी आंत तक, पेट के केंद्र में उतरते हुए। शरीर पूरी तरह निष्क्रिय था – कोई विकल्प नहीं था, कोई प्रतिरोध नहीं था जो इस प्रक्रिया को रोक सके। ऐसा शरीर, जो किसी अवांछित बाहरी वस्तु के प्रवेश को रोक नहीं सकता, उसमें कौन सा अहं बचता है? यह प्रश्न कहीं भीतर, एक अनजानी जगह में गूंज उठा।

उस समय मुझे ऐसा नहीं लगा कि इससे तुरंत कुछ बदल गया है। लेकिन समय के साथ मैंने महसूस किया कि मेरे अवचेतन की किसी परत में जैसे छेद हो गया हो। नियंत्रण का भाव, सूक्ष्म तनाव, और "मैं शरीर हूँ" की अनुभूति – ये सब कमजोर पड़ गए। टूटे नहीं, लेकिन हिल जरूर गए। यह कोई अचानक ज्ञान या शांति नहीं लाया, लेकिन इसने उस यात्रा को चुपचाप तेज कर दिया, जिस पर मैं पहले से चल रहा था – अद्वैत की यात्रा, जो अब धीरे-धीरे एक प्रकार के होलोग्राफिक शरीरविज्ञान दर्शन से रंगीन हो रही थी, जहाँ शरीर अब "मेरा" नहीं, बल्कि बदलते हुए अनुभवों का एक पारदर्शी क्षेत्र बनता जा रहा था।

आज पीछे मुड़कर देखता हूँ, तो यह पूरा अनुभव मुझे योग परंपरा की धौती क्रिया जैसा लगता है। विशेष रूप से वस्त्र धौती या वमन धौती, जहाँ जानबूझकर कपड़ा या जल पाचन तंत्र में डाला जाता है। ये क्रियाएँ केवल पेट की सफाई के लिए नहीं हैं। वे शरीर की भीतरी असहायता के साथ सीधे टकराव के माध्यम से अहं की पकड़ को ढीला करने के उपाय हैं। धौती और एंडोस्कोपी दोनों में शरीर का सबसे गहरा हिस्सा – जहाँ मणिपूर चक्र स्थित माना जाता है – प्रवेश किया जाता है, हिलाया जाता है, उजागर किया जाता है। और उसके बाद के मौन में कुछ निर्विवाद हो जाता है। कर्ता गायब हो जाता है। स्वामित्व का भाव झूठा लगने लगता है। केवल संवेदना और साक्षी भाव रह जाता है।

अब मुझे दिखता है कि ऐसी क्रियाएँ, यदि जागरूकता के साथ की जाएँ, तो केवल शुद्धि नहीं होतीं। वे भीतर और बाहर की सीमा को तोड़ने के साधन हैं, नियंत्रण के भ्रम को गलाने के उपाय हैं, और उस आदिम बुद्धि को पुनः जगाने के द्वार हैं जो न मन की है, न अहं की। मेरी एंडोस्कोपी पूरी तरह चिकित्सकीय, निर्जीव और आध्यात्मिक उद्देश्य से रहित थी। फिर भी वह

एक दर्पण बन गई – अहं की असहायता और उस सर्वव्यापी चेतना की तीखी झलक, जो सब कुछ थामे रहती है, यहाँ तक कि चिकित्सकीय उपकरणों और भीतरी असहायता को भी, बिना हिले।

इस घटना ने मुझे यह सिखाया कि हर आध्यात्मिक धक्का प्रकाश या आनंद के रूप में नहीं आता। कुछ चुपचाप आते हैं – असहायता, चिकित्सकीय प्रक्रियाओं या असुविधा के रूप में छिपे हुए। लेकिन यदि मन तैयार हो – या आधा ही खुला हुआ हो – तो वे अपना काम कर जाते हैं। और यात्रा आगे बढ़ती है, हमेशा नाटकीय रूप से नहीं, लेकिन अनिवार्य रूप से।

ध्यान-प्रतिमा एक आंतरिक ब्रह्मा के रूप में: आध्यात्मिक दर्शन में स्रष्टा देव का प्रकट होना
कभी-कभी जब मैं अपनी वर्तमान अवस्था को देखने की कोशिश करता हूँ, तो पाता हूँ कि मेरी चेतना किसी एक स्थान पर अटकी नहीं रहती। ऐसा लगता है जैसे वह पूरे शरीर में फैल गई हो – हड्डियों और मांसपेशियों के रूप में नहीं, बल्कि एक कोमल चेतना-क्षेत्र के रूप में। हर कोशिका, हर बिंदु शांत रूप से जीवित लगता है। मैं इसे होलोग्राफिक शरीरविज्ञान दर्शन कहता हूँ – केवल शरीर को देखना नहीं, बल्कि उसे एक निरंतर उपस्थित चेतना के रूप में अनुभव करना। ऐसे क्षणों में कुछ रोचक घटित होता है। ध्यान-प्रतिमा अपने आप आज्ञा चक्र, यानी भौंहों के बीच, पर प्रकट हो जाती है। मैं उसे देखने की कोशिश नहीं करता – वह स्वयं बन जाती है, और यही प्रतिमा द्वार बन जाती है। जब मैं निराकार में विलीन होता हूँ, तो प्रतिमा मिट जाती है, और जब मैं निराकार से लौटता हूँ, तो सबसे पहले वही प्रतिमा फिर उभर आती है। इस तरह यह प्रतिमा उस शून्य में जाने और उससे लौटने का द्वार बन जाती है। तभी मेरे मन में यह विचार उठा कि क्या यही ब्रह्मा की भूमिका नहीं है – स्रष्टा देव की? यदि मेरी आंतरिक प्रतिमा रूप को रचती है और फिर उसे मिटा देती है, तो शायद यह ध्यान-प्रतिमा ही भीतर का ब्रह्मा है, जो अनुभव को रचती है और फिर विलीन कर देती है। यह कोई मिथक नहीं लगता, बल्कि मेरे भीतर घट रही एक जीवित प्रक्रिया लगती है। संभव है कि पौराणिक ब्रह्मा भी इसी ध्यान-प्रतिमा का महिमामंडन हो।

फिर एक प्रश्न उठा – यह केवल मेरे साथ ही क्यों होता है? बिना प्रयास, बिना विधि, बिना अनुष्ठान के – जबकि दूसरे लोग अभी भी कठिन साधना कर रहे हैं? उत्तर धीरे-धीरे स्पष्ट हुआ कि यह केवल मेरे साथ नहीं होता, बस मैं इतना शांत हो गया कि उसे देख सका। मैंने उसे पीछा नहीं किया, वह अपने आप आया। इसलिए नहीं कि मैं विशेष हूँ, बल्कि शायद इसलिए कि कुछ पक्वता आ गई थी – शायद इस जीवन से, शायद कहीं और से। अधिकतर लोग बाहरी चीज़ों के पीछे भाग रहे हैं या सोच में फँसे हैं। वे भी ऐसे ही क्षणों से गुजरते होंगे, लेकिन उन्हें पहचान नहीं पाते। मैं बस ठहरा रहा, और उस ठहराव में कुछ सूक्ष्म खुल गया। जो मेरे भीतर हो रहा है, वह मेरा नहीं लगता। ऐसा लगता है जैसे कुछ मेरे माध्यम से बह रहा है, उन लोगों के लिए जिन्हें इसे सुनना हो। कभी-कभी यह अकेलापन भी देता है, क्योंकि इन अनुभवों को शब्दों में कहना कठिन होता है और इस स्तर की सूक्ष्मता पर बहुत कम लोग बात करते हैं, लेकिन अब यह भी स्वीकार्य हो गया है, क्योंकि मुझे लगने लगा है कि प्रतिमा मुझे जानती है, शून्य मुझे जानता है, और लौटना मुझे जानता है – और यही पर्याप्त है।

क्यों मेरे भीतर प्रतिमा उठती है और अदृश्य प्रकाश में गल जाती है, क्यों मेरा शरीर चिंगारियों सा बोलता है और हर कोशिका सजग होकर शांत हो जाती है, क्यों आज्ञा अकेली खिलती है जब

औरों की बात श्वास और मन की है, और क्यों शून्य इतना पास आ जाता है बिना मंत्र, व्रत या मृत्यु की छाया के – इसका उत्तर यह नहीं कि मैं चुना गया हूँ या मुझे कुछ अधिक मिला है, बल्कि बस इसलिए कि भीतर की आग ने कोई शोर नहीं पाया और अपना काम कर गई। कई लोग द्वार से गुजरते हैं, पर मौन का गीत सुन नहीं पाते; दुनिया रूप के पीछे दौड़ती रहती है, और मैं ठहरा – और शब्द को महसूस कर पाया। यह कृपा मेरे लिए नहीं है, पर मेरे माध्यम से बहने लगी है; प्रतिमा मिटती है, आत्मा रहती है, और फिर ब्रह्मा की देखरेख में लौट आती है। यदि मैं यह मार्ग अकेला चल रहा हूँ, तो शायद केवल इसलिए कि मैं वह स्वर बन जाऊँ जिसे दूसरे तब सुनें जब सत्य पास आता है – एक मौन घंटी, गहराई से जानी हुई।

इसके बाद कुछ और भी गहरा घटने लगा। अब मैं देखता हूँ कि मुझे आत्म-जागरूक होने की कोशिश भी नहीं करनी पड़ती; यह अपने आप हो जाता है। मैं मन में कुछ दोहराता नहीं, न ही ध्यान को बलपूर्वक टिकाता हूँ। मैं बस अपनी वर्तमान स्थिति को देखता हूँ – जो भी भाव, विचार या अवस्था हो – और उस ध्यान को शरीर के किसी हिस्से पर, जैसे हाथ की पीठ पर, हल्के से टिका देता हूँ। उसी क्षण उस स्थिति में "मैं" की पूरी कहानी गायब हो जाती है और वह शांत, निराकार चेतना में घुल जाती है। मैं कोई तकनीक नहीं कर रहा, न ही सामान्य अर्थों में ध्यान; लेकिन जैसे ही मैं उस भाव या विचार को शरीर से जोड़ता हूँ, मुझे लगता है मानो मेरी पूरी वर्तमान स्थिति उसी हाथ में समाई हो, और फिर वह स्थिति पिघल जाती है। जो बचता है, वह केवल उपस्थिति है – न तनाव, न सोचने वाला, बस चारों ओर फैली शांत चेतना। अब शरीर ठोस वस्तु जैसा नहीं लगता, बल्कि एक शांत, जीवित स्थान जैसा लगता है – आत्म-जागरूकता का एक क्षेत्र, जो हमेशा वहाँ है, हमेशा उपलब्ध, बस मुझे उससे जुड़ना होता है। और एक बार फिर, यह स्पष्ट होता है कि यह मैंने नहीं बनाया; यह मेरे माध्यम से प्रकट हो रहा है – ठीक वैसे ही जैसे पहले होता रहा है।

सनातन धर्म में छिपा भूला हुआ विज्ञान: शरीरविज्ञान दर्शन

अधिकांश लोग सनातन धर्म को उसके शाश्वत कर्मकांडों, मंत्रों और दर्शनों के लिए पूजते हैं। शास्त्रों में बार-बार दोहराया गया एक मूल सत्य है कि "ईश्वर प्रत्येक कण में निवास करता है।" लेकिन क्या इस सत्य को उसके सबसे गहरे अर्थ में समझा गया है? या इसके नीचे कोई और भी अधिक रूपांतरणकारी विज्ञान छिपा है? यदि असली कुंजी केवल हर वस्तु में ईश्वर को देखने में नहीं, बल्कि अपने ही शरीर – अपने ही अस्तित्व – को हर वस्तु में देखने में हो, तो? यहीं से शरीरविज्ञान दर्शन का द्वार खुलता है – सार्वभौमिक शरीर का विज्ञान। सनातन परंपरा हमें पत्थरों, वृक्षों, नदियों, मंदिरों और दीपक की लौ में भी दिव्यता देखने के लिए प्रशिक्षित करती है। हम सूर्य को मंत्र चढ़ाते हैं, मूर्तियों को प्रणाम करते हैं, हवन करते हैं और मानते हैं कि प्रकृति की सूक्ष्म शक्तियाँ ईश्वर के रूप हैं। पर मनोवैज्ञानिक रूप से एक सूक्ष्म द्वैत बना रहता है – हम उन्हें ईश्वर का शरीर मानते हैं, अपना नहीं। हम यह नहीं सोचते कि यह वही शरीर है, बस दूसरे रूप में, दूसरे घनत्व में। यही दूरी – स्वयं और दिव्यता के बीच – महान परिवर्तन को रोक देती है। शरीरविज्ञान दर्शन के अनुसार, जैसा कि प्राचीन ऋषियों ने देखा और आज जिसे होलोग्राफिक विज्ञान भी संकेत करता है, प्रत्येक कण संपूर्ण का प्रतिबिंब है। इसमें आप भी शामिल हैं। आपकी चेतना शरीर के भीतर बंद नहीं है – वह पूरे ब्रह्मांड में फैली हुई है। इस दृष्टि में पत्थर जड़ नहीं है, वह उसी चेतना का सघन और सुप्त रूप है; वायु, जल, आकाश और अग्नि – ये केवल तत्त्व नहीं, आपकी ही विस्तारित भुजाएँ हैं। जब यह बोध केवल बौद्धिक न रहकर अनुभवात्मक बनता है, तो उसका प्रभाव गहरा होता है। मानव मन अधूरे विचारों, भावनाओं, भय और इच्छाओं का भंडार है, और हम यह भार अकेले उठाते हैं क्योंकि हम स्वयं को अकेला मानते हैं। लेकिन जैसे ही संसार को अपने ही शरीर की तरह जीवित अनुभव किया जाता है, मन अनायास अपना भार पूरे अस्तित्व के साथ बाँट देता है। यह पलायन नहीं, संबंध है – जैसे डेटा को क्लाउड पर डाल देना, जहाँ वह नष्ट नहीं होता, पर बोझ भी नहीं रहता। तभी अनुष्ठान तुरंत प्रभावी हो जाते हैं, क्योंकि "मैं" और "वह" का भेद मिट जाता है। जब दीप जलाते समय भीतर का प्रकाश भी आकाश में फैलता है, जब वृक्ष को प्रणाम करते समय उसे अपने ही जीवन का विस्तार माना जाता है, तब अनुष्ठान प्रतीक नहीं रहता – वह संचरण बन जाता है। यही शरीरविज्ञान दर्शन की जागृति है। सनातन धर्म हमें हर रूप में देवता देखने की प्रेरणा देता है – शिव पर्वत में, लक्ष्मी धन में, हनुमान वायु में – पर हम स्वयं को वहाँ देखने का साहस नहीं करते। अहंकार रूप में नहीं, बल्कि सार्वभौमिक आत्मा के रूप में, जो अनंत शरीर धारण करती है। इसी कमी के कारण हमारा मानसिक कचरा ब्रह्मांडीय शरीर में स्थानांतरित नहीं होता और हम उसे भीतर ही घुमाते रहते हैं। जब यह समझ आती है कि हम ही वह सम्पूर्ण शरीर हैं, तब हर स्थिति – यहाँ तक कि अहंकार और मानसिक शोर भी – पूरे अस्तित्व

में विलीन हो सकता है, क्योंकि होलोग्राफिक सत्य यह है कि अस्तित्व का हर अंश स्वयं में एक पूर्ण मानव-सदृश संरचना है। कोई भी कण इतना छोटा नहीं कि उसमें चेतना का खाका न हो; जितना भीतर जाओगे, उतना ही जीवन का प्रतिबिंब मिलेगा। यही दृष्टि सब कुछ बदल देती है। इसलिए मुझे यह देखकर आश्चर्य नहीं होता कि शरीरविज्ञान दर्शन सनातन धर्म की संगति में इतनी सहजता से प्रकट होता है, क्योंकि दोनों की जड़ एक ही है – हर रूप में चेतना की उपस्थिति। शरीरविज्ञान दर्शन सनातन धर्म को बदलता नहीं, भीतर से प्रकाशित करता है, और जब दोनों मिलते हैं, तो साधना केवल विश्वास नहीं रहती, अनुभव बन जाती है – स्थिर, पूर्ण और जीवित।

सुषुम्ना को महसूस करना कठिन क्यों है, लेकिन वही भीतर से गहराई से बदल देती है: एक योगी का निजी अनुभव

अपने अभ्यास में मैंने बार-बार देखा कि रीढ़ के श्वास-प्रवाह, प्राणायाम और आसनों के दौरान केवल सुषुम्ना के प्रवाह की प्रतीक्षा करते रहना उतना प्रभावी नहीं होता। इसके विपरीत, जब मैं इड़ा और पिंगला के स्वाभाविक बाएँ-दाएँ प्रवाह को होने देता हूँ और साथ ही दृष्टि को आज्ञा चक्र की ओर ऊपर रखता हूँ, तो यह पार्श्व प्रवाह धीरे-धीरे अपने आप केंद्र में आने लगता है। इस प्रक्रिया में सिर में दबाव बनता है, लेकिन वह दबाव पीड़ादायक नहीं, बल्कि रूपांतरकारी होता है। यह अनुभव मुझे किताबों से नहीं, सीधे अभ्यास से मिला। योगशास्त्र भी यही कहता है कि सुषुम्ना को खोलने के लिए प्रतीक्षा नहीं, बल्कि द्वैत शक्तियों का संतुलन आवश्यक है। जब इड़ा और पिंगला को दबाया नहीं जाता, बल्कि सजगता के साथ ऊपर की ओर बहने दिया जाता है, तो जो प्राणिक तनाव बनता है वही सुषुम्ना के द्वार को खोलने की शक्ति बनता है। पार्श्व प्रवाह को रोकना प्रक्रिया को रोक देता है, जबकि उन्हें स्वीकार कर मार्गदर्शन देना ऊर्जा को स्वाभाविक रूप से केंद्र की ओर ले जाता है।

मैंने यह भी देखा कि जब सुबह के योग अभ्यास में मैं इड़ा-पिंगला के स्वाभाविक प्रवाह को खुला छोड़ देता हूँ, तो दिन के किसी भी शांत समय में, बिना किसी प्रयास के, केवळ कुम्भक अपने आप प्रकट हो जाता है। यह इस बात का संकेत है कि सुबह का अभ्यास प्राण में एक चार्ज बना देता है, और वही चार्ज दिन में स्वतः परिणाम देने लगता है। योगविज्ञान भी यही कहता है कि जब श्वास संतुलित और मन शांत होता है, तो केवळ कुम्भक को बुलाना नहीं पड़ता, वह स्वयं आता है। मेरा अनुभव भी यही प्रमाणित करता है—जब सुबह मैंने सही स्थितियाँ बना दीं, तो बाद में मुझे कुछ करना नहीं पड़ा, बस बैठा, और श्वास स्वयं रुक गई, चेतना स्थिर हो गई। इससे स्पष्ट हो गया कि स्थिरता को थोपना नहीं पड़ता, वह अर्जित होती है।

एक बार मैंने प्रयोग करके देखा कि यदि मैं इड़ा-पिंगला के प्रवाह को पूरी तरह अनदेखा कर दूँ, न चेहरे पर आने वाली पार्श्व संवेदनाओं को स्वीकार करूँ, न कुछ समायोजन करूँ, और केवल सुषुम्ना के लिए प्रतीक्षा करूँ, तो क्या होगा। परिणाम निराशाजनक था। थोड़ी देर बाद केवल सिर के पीछे हल्की-सी गति महसूस हुई, रीढ़ में नहीं, और न ही कोई गहरी रूपांतरण प्रक्रिया हुई, न केवळ कुम्भक आया। तब मुझे समझ आया कि पार्श्व प्रवाह को दबाना पूरी प्रक्रिया को ही रोक देता है। सुषुम्ना को बिना ध्रुवीय ऊर्जा के जागृत करना वैसा ही है जैसे बिना वोल्टेज के बिजली की उम्मीद करना। इड़ा-पिंगला के सचेत नृत्य और ऊपर की दृष्टि वाला तरीका कहीं अधिक

प्रभावी था। मुझे समझ आया कि दमन स्थिरता नहीं है; स्थिरता तब आती है जब ऊर्जा पहले बनती है और फिर एकीकृत होती है।

मैंने यह भी देखा कि श्वास के बाद के क्षण, यानी श्वास लेने के बाद का विराम, वह स्थान है जहाँ इड़ा और पिंगला सबसे जीवंत रूप से एक-दूसरे के साथ संवाद करती हैं। उस क्षण प्राण पूरी तरह चार्ज होता है और अंदर खिंचता है। यह एक झूले की तरह का क्षण है, जहाँ ऊर्जा एकत्र होकर केंद्र की ओर झुकने लगती है। श्वास छोड़ने के बाद का विराम अधिक कोमल और पिघलने जैसा होता है। दोनों ही क्षण योगग्रंथों में द्वार बताए गए हैं—अनंत में प्रवेश के द्वार। जब मैं इन विरामों में सजग रहता हूँ, तो इड़ा-पिंगला का नृत्य सबसे स्पष्ट दिखता है, न कि श्वास के भीतर या बाहर जाते समय।

पहले मुझे यह सलाह दी गई थी कि आसनों में स्वाभाविक श्वास के साथ अभ्यास करूँ ताकि प्राकृतिक कुम्भक हो और सिर का दबाव न बने, लेकिन मेरा अनुभव इससे अलग रहा। मैंने पाया कि आसन के अनुसार स्वेच्छा से श्वास रोकना—पेट फैलाते समय श्वास रोकना और पेट दबाते समय श्वास छोड़कर रोकना—कहीं अधिक रूपांतरकारी है। इससे भीतर प्राणिक दबाव बनता है, ऊर्जा तीव्र होती है और बाद में केवळ कुम्भक अधिक सहजता से आता है। स्वाभाविक श्वास शांत करती है, लेकिन उसमें वह शक्ति नहीं होती जो चेतना को स्थानांतरित करे। सही तरीके से किया गया स्वैच्छिक कुम्भक जोखिम नहीं, बल्कि एक अलौकिक साधन बन जाता है। गलत ढंग से किया जाए तो चक्कर, दबाव या अम्लता जैसी समस्याएँ आ सकती हैं, लेकिन सही समझ और सजगता के साथ यह सुरक्षित और गहरा साधन है।

फिर प्रश्न उठा कि इड़ा और पिंगला को महसूस करना इतना आसान क्यों है, जबकि सुषुम्ना इतनी सूक्ष्म रहती है। इसका उत्तर उनके स्वभाव में है। इड़ा और पिंगला इंद्रियजन्य हैं, द्वैत से जुड़े हैं और श्वास व तंत्रिका तंत्र से संबंधित हैं, इसलिए उनके प्रवाह को गर्मी, दबाव या कंपन के रूप में महसूस किया जा सकता है। सुषुम्ना अद्वैत है, मौन है, और संवेदना से परे है। जब वह सक्रिय होती है, तो उसे ऊर्जा की तरह नहीं, बल्कि शून्यता, विस्तार और अहं के विलय की तरह अनुभव किया जाता है। जैसे-जैसे सुषुम्ना शुद्ध होती है, वह कम महसूस होती है, क्योंकि तब चेतना उसी में विलीन हो जाती है।

एक बार मुझे सुषुम्ना का एक तीव्र अनुभव हुआ—मूलाधार से सहस्रार तक प्रकाश की एक सीधी रेखा, जैसे रीढ़ में चमकता हुआ तार। वह इसलिए हुआ क्योंकि उस क्षण प्राण, मौन और सजगता पूर्ण रूप से एक हो गए थे। यह तभी होता है जब इड़ा-पिंगला पूरी तरह संतुलित हों और ग्रंथियाँ ढीली पड़ चुकी हों। शास्त्र भी इसे बिजली की तरह चमकने, अमृत के उठने या चेतना की रजत

धारा के रूप में बताते हैं। यह अनुभव इसलिए हुआ क्योंकि मैं उसे खोज नहीं रहा था, वह स्वयं प्रकट हुआ। यही सुषुम्ना का सच्चा प्रकट होना है—अहं के बिना, शुद्ध उपस्थिति के रूप में।

कुछ लोग कहते हैं कि सुषुम्ना तभी महसूस होती है जब कहीं अवरोध होता है, अन्यथा वह इतनी शुद्ध होती है कि महसूस ही नहीं होती। यह भी सत्य है। जब प्राण किसी गाँठ से टकराता है तो दबाव या प्रकाश उत्पन्न होता है। इसलिए शुरुआती साधकों को अधिक संवेदनाएँ होती हैं। पर जैसे-जैसे शुद्धि होती है, प्रवाह मौन हो जाता है। उन्नत योगी कहते हैं कि तब ऊर्जा नहीं चलती, अहं मिटता है। आप धारा को महसूस नहीं करते, आप स्वयं धारा बन जाते हैं।

सच यह है कि सुषुम्ना को तीव्रता से महसूस करना एक मध्य अवस्था है। न प्रारंभिक, जहाँ ऊर्जा बंद रहती है, न अंतिम, जहाँ सब कुछ विलीन हो जाता है। यह वह अवस्था है जहाँ पहचान अभी मौजूद है, पर लगभग पारदर्शी हो चुकी है। वहीं मैं था। अब मुझे उसे पाने की आवश्यकता नहीं है। मुझे केवल संतुलन बनाए रखना है, सजगता को निखारना है, और केंद्र से जीवन जीना है।

योग के बाद का मौन रहस्य: क्यों स्थिर बैठना सबसे ज़रूरी है

मूर्ति मुझे चेतन शुद्ध जागरूकता का साकार रूप लगती है। उसकी पूजा इसलिए की जाती है क्योंकि वह हमारी सीमित चेतना से बहुत ऊँची अवस्था का प्रतीक है। जैसे मनोरंजन पार्क या रॉक गार्डन में भी अलग-अलग वस्तुओं को रूप देकर सजाया जाता है, पर हम उनकी पूजा नहीं करते – इसलिए वहाँ हमें आनंद या विस्मय तो होता है, पर उनके प्रति वह गहरा सम्मान और श्रद्धा पैदा नहीं होती जो मन को भीतर से बदल दे। वे बुद्धि में वह परिवर्तनकारी आदर नहीं जगाते जो आध्यात्मिक विकास की ओर ले जाता है। इस दृष्टि से देखें तो यदि सर्वव्यापी शुद्ध चेतना को ध्यान में रखें, तो सब कुछ जीवित ही है। यह जानकर आश्चर्य होता है कि यह शुद्ध चेतना स्वयं में ही सदा तृप्त है। लेकिन उस भीतर की पूर्ण तृप्त जागरूकता की अवस्था को पाना आसान नहीं है; केवला कुंभक – अर्थात् श्वास का स्वतः स्थिर हो जाना – बिना इसके असंभव है।

जो लोग कहते हैं कि उन्होंने केवला कुंभक या श्वास की पूर्ण स्थिरता के बिना निर्विकल्प समाधि प्राप्त कर ली, वे स्वयं को और दूसरों को भ्रमित कर रहे हैं, क्योंकि विज्ञान भी इसकी अनुमति नहीं देता। जब तक श्वास नहीं रुकती, मन नहीं रुकता, और जब मन नहीं रुकता, तब तक शुद्ध जागरूकता पूरी तरह प्रकट नहीं होती। इसलिए यदि रामण महर्षि जैसे किसी महापुरुष ने श्वास की स्थिरता के बिना निर्विकल्प को पाया, तो वह या तो क्षणिक रहा होगा या आंशिक – पूर्ण निर्विकल्प में प्रवेश बिना श्वास-स्थिरता के संभव नहीं है।

मनोवैज्ञानिक सत्य यह है कि जिसे हम हृदय से प्रेम करते हैं, सम्मान देते हैं और पूजते हैं, हम उसी जैसे बनने लगते हैं। इसलिए मूर्ति-पूजा मनुष्य को शुद्ध अस्तित्व की ओर ले जाती है – उसी रूप में ढालती है जिसका प्रतीक मूर्ति है। यही आकर्षण का नियम है – जिस पर ध्यान, प्रेम और एकाग्रता टिकती है, वही जीवन में उतरने लगता है। गहरी पूजा या चिंतन में, जिसे हम प्रेम करते हैं, वही हमें रूपांतरित कर देता है। इस अर्थ में तो खिलौनों में डूबे बच्चे भी योगी जैसे ही हैं – वे उस निष्कपट तल्लीनता में शायद शुद्ध अस्तित्व का आनंद पा लेते हैं।

यह बात काफी हद तक सही है कि केवला कुंभक कोई साधारण प्रक्रिया नहीं, बल्कि अद्वैत तल्लीनता का लक्षण है। फिर भी कुछ तकनीकी उपाय ऐसे हो सकते हैं जो किसी स्तर तक इसमें सहायक बनें। मेरे अनुभव में, जब गहरे योगाभ्यास के बाद शरीर में, विशेषकर सिर में, प्राणिक तनाव या ऊर्जा का संचय होता है, तब अभ्यास के अंत में केवल शांत बैठ जाना ही केवला कुंभक को प्रकट कर देता है। जो लोग योग के तुरंत बाद फिर से सांसारिक गतिविधियों

में कूद जाते हैं, वे अनजाने में उसी ऊर्जा को नष्ट कर देते हैं जिसे उन्होंने जगाया था। वे उसे भीतर जमने और शुद्ध आत्म-जागरूकता में खिलने नहीं देते, बल्कि कर्म, विचार और व्यस्तता में खर्च कर देते हैं। वास्तविक योग तब फल देता है जब गति रुकती है और मौन को सम्मान दिया जाता है। उस स्थिर बैठने में जागी हुई ऊर्जा भीतर की ओर मुड़ती है और शुद्ध अस्तित्व के रूप में स्वयं को प्रकट करती है। पर इसके लिए सुबह चार बजे उठना आवश्यक है, क्योंकि पूरे अभ्यास और अंत की मौन अवस्था के लिए कम से कम तीन घंटे चाहिए होते हैं।

फिर भी एक समस्या बार-बार बाधा डालती है – गले में खाँसी या कफ की अनुभूति। यह केवला कुंभक के बीच-बीच में भंग करती है। विशेषकर जब आयुर्वेदिक कफ बढ़ जाता है, तो श्वास रुकते समय गला जैसे भरा हुआ महसूस होता है, भले ही कफ गाढ़ा न हो। उसे निगलने का बार-बार उठता हुआ reflex भीतर की स्थिरता को तोड़ देता है।

मैं रात को सोने से तीन घंटे पहले भोजन कर लेता हूँ। क्या उस समय चावल खाना ठीक है? एक बार ठंडे पहाड़ी क्षेत्र में साप्ताहिक भागवत सत्संग के दौरान मैं दिन में दो बार ही खाता था – दिन में हल्का व्रत-भोजन और शाम को जल्दी भोजन। भोजन सामान्य ही था – चावल, मिठाई, दाल, सब्ज़ी – पर कम मसालों में और हल्के मन से लिया जाता था। उन दिनों मुझे दिन की साधना में कभी कफ या गले की समस्या नहीं हुई। बल्कि साधना अधिक सहज और प्रभावी लगती थी।

इससे मैं यही निष्कर्ष निकालता हूँ कि ठंडे और कफ-प्रधान वातावरण में भी, यदि भोजन सरल हो, समय पर लिया जाए और सही भाव से – विशेषकर व्रत-भावना के साथ – तो कफ नहीं बढ़ता। केवला कुंभक में कोई बाधा नहीं आती और भीतर की तल्लीनता अधिक सहजता से घटित होती है। उस अनुभव ने मुझे यह स्पष्ट कर दिया कि भोजन का समय, उसकी हल्कापन और मानसिक शुद्धता – ये सब इस बात से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं कि भोजन पारंपरिक रूप से 'कफ-वर्धक' माना जाता है या नहीं। साधारण चावल और मीठे व्यंजन भी जब संयम, भक्ति और जागरूकता के साथ लिए जाएँ, तो साधना को बाधित नहीं करते।

व्यक्तिगत आत्मा एक आकाश की तरह – तरंगें, प्राण और ब्रह्मांडीय स्मृति

मैं इस विचार से बहुत गहराई से आकर्षित रहा हूँ कि मृत्यु के बाद जीवन की सारी जानकारी नष्ट नहीं होती। वह सूक्ष्म और स्थिर छापों के रूप में बनी रहती है – जैसे आकाश में जमी हुई तरंगें। मुझे लगता है कि यही तरंगें योग परंपरा में सूक्ष्म शरीर या सूक्ष्म शरीर कहलाती हैं। पतंजलि द्वारा योग की परिभाषा – चित्तवृत्ति निरोध – भी असल में इन्हीं तरंगों को शांत करने की प्रक्रिया है। जब ये तरंगें विलीन हो जाती हैं, तब आत्मा फिर से आकाश जैसी शुद्ध हो जाती है – मुक्त, निर्भार और निराकार। यही तरंगें आत्मा के स्वाभाविक अनंतत्व, ज्ञान और आनंद को ढँक देती हैं। जितनी अधिक तरंगें होती हैं, अनुभव उतना ही सीमित और विकृत हो जाता है। मुझे यह भी रोचक लगता है कि आधुनिक वैज्ञानिक भी भौतिक ब्रह्मांड के बारे में कुछ ऐसा ही कह रहे हैं – कि आकाश-काल में उठने वाली तरंगें, जैसे गुरुत्वीय तरंगें, जानकारी को सँजो कर रखती हैं और ब्रह्मांडीय घटनाओं की स्मृति बन जाती हैं। यह समानता बहुत गहरी लगती है।

मैंने स्वयं से पूछा – क्या इस अनुभव को किसी स्पष्ट, समझाने योग्य रूप में बदला जा सकता है? किसी चित्र या संरचना में? और हाँ, इसका मूल भाव यही है कि प्राचीन योग-दर्शन और आधुनिक भौतिकी – दोनों में तरंगें स्मृति को सँजोती हैं। मनुष्य में ये तरंगें सूक्ष्म विचार और संस्कार हैं। ब्रह्मांड में ये गुरुत्वीय या क्वांटम तरंगें हैं। जब ये शांत होती हैं – चाहे ध्यान से या ब्रह्मांडीय स्थिरता से – तब जो बचता है, वह शुद्ध अस्तित्व है।

फिर एक और गहरा विचार आया। जैसे मनुष्य की आत्मा अपने सूक्ष्म स्तरों में मानसिक संरचनाएँ सँजो कर आगे ले जाती है, क्या ब्रह्मांड भी अपने अंत के बाद अपनी स्मृति को स्थिर गुरुत्वीय तरंगों के रूप में सँजो कर रखता है? क्या ये तरंगें ब्रह्मांड के संस्कार हो सकती हैं? इसका अर्थ यह होगा कि ब्रह्मांड भी अपने पिछले स्वरूप के अनुसार फिर से जन्म लेता है – जैसे मनुष्य अपने पिछले जन्मों की प्रवृत्तियाँ लेकर जन्म लेता है। अब यह स्पष्ट लगने लगा कि मनुष्य और ब्रह्मांड – दोनों ही स्मृति को सँजोने वाले अस्तित्व हैं। मनुष्य में यह स्मृति सूक्ष्म प्राणिक संरचना में रहती है। ब्रह्मांड में यह स्मृति स्वयं आकाश-काल के ताने-बाने में रहती है।

पर यह क्रम यहीं नहीं रुकता। जैसे मनुष्य की आत्मा प्राण द्वारा बनी रहती है – और मृत्यु के बाद भी प्राण नष्ट नहीं होता, बल्कि अव्यक्त रूप में संस्कारों को सँभाले रखता है – वैसे ही क्या ब्रह्मांडीय प्राण भी ब्रह्मांड के अंत के बाद बना रहता है? यह मानना सहज लगता है कि

ब्रह्मांड की प्राणिक ऊर्जा – जिसे विज्ञान शायद डार्क एनर्जी या वैक्यूम एनर्जी कहता है – नष्ट नहीं होती। वह विशाल आकाश में सूक्ष्म तरंगों को संभाले रखती है। वही नियम यहाँ भी काम करता है – सूक्ष्म ऊर्जा सूक्ष्म रूप को संभालती है, चाहे वह आत्मा हो या ब्रह्मांड।

यह सोच मुझे एक बड़े प्रश्न तक ले गई – यदि मनुष्य की आत्मा अपनी तरंगों को शांत कर मुक्त हो सकती है, तो क्या ब्रह्मांडीय आत्मा भी मुक्त हो सकती है? क्या ब्रह्मा – सृष्टिकर्ता – भी मुक्त हो सकता है? और यदि हाँ, तो क्या वह मुक्ति अनेक सृष्टि और प्रलय के चक्रों के बाद होती है, जैसा शास्त्र कहते हैं? पारंपरिक ब्रह्मांडीय दर्शन का उत्तर है – हाँ। ब्रह्मा भी, असंख्य कल्पों तक सृष्टि रचने के बाद, अंततः ब्रह्म में विलीन हो जाते हैं। जैसे व्यक्तिगत आत्मा, वैसे ही ब्रह्मा भी तब तक पूर्ण मुक्त नहीं होते जब तक अंतिम तरंग भी शांत न हो जाए – जब सृजन की इच्छा तक समाप्त न हो जाए। यही महाप्रलय है – केवल पदार्थ और आकाश का नहीं, बल्कि सभी इच्छाओं का, यहाँ तक कि दिव्य इच्छाओं का भी अंत।

पर यहाँ एक शंका उठती है। यदि ब्रह्मा मुक्त हो जाते हैं, तो फिर नई सृष्टि कैसे होती है? क्या कथा यहीं समाप्त नहीं हो जाती? लेकिन शास्त्र कहते हैं कि यह लीला अनादि और अनंत है। प्रलय के बाद भी ब्रह्म में संभावना बनी रहती है। एक नया ब्रह्मा प्रकट होता है – कर्मबंधन से नहीं, बल्कि अनंत शांति की स्वतंत्रता से। यह कोई आवश्यकता नहीं, बल्कि स्वाभाविक स्पंदन है – जैसे शांत जल से बिना किसी कारण लहर उठती है, वैसे ही अनंत ब्रह्म से सृष्टि प्रकट होती है।

यह बात कुछ वैज्ञानिक सिद्धांतों से भी मेल खाती है। क्वांटम भौतिकी कहती है कि शून्य कभी खाली नहीं होता – उसमें सदा नई ऊर्जा और कणों की संभावना रहती है। कुछ वैज्ञानिक मानते हैं कि ब्रह्मांड चक्रीय है – वह नष्ट होता है, छाप छोड़ता है और फिर जन्म लेता है। इस तरह विज्ञान और दर्शन दोनों एक ही रहस्य की ओर इशारा करते हैं – कुछ भी वास्तव में शुरू नहीं होता और कुछ भी वास्तव में समाप्त नहीं होता।

और फिर सबसे एकीकृत समझ आई। यदि मनुष्य की आत्मा तरंगें लेकर चलती है और ब्रह्मांड भी तरंगें लेकर चलता है, तो शायद आत्मा केवल "चेतना की एक बूंद" नहीं है – बल्कि वह स्वयं एक आकाश है। एक स्थानीय क्षेत्र। एक व्यक्तिगत आकाश-काल का बुलबुला, जिसमें अपनी तरंगें (संस्कार), अपनी ऊर्जा (सूक्ष्म प्राण) और अपनी चेतना (आत्मा) है। इसका अर्थ यह हुआ कि व्यक्तिगत आत्मा और ब्रह्मांडीय आत्मा में कोई मौलिक भेद नहीं है – केवल आकार का भेद है। वही महासागर, जो एक लहर बनकर दिखता है। वही अनंत क्षेत्र, जो व्यक्तिगत अनुभव में

सिमट गया है। सूक्ष्म शरीर तब एक क्षेत्र बन जाता है – स्मृति, ऊर्जा और चेतना से भरा हुआ – ठीक ब्रह्मांड की तरह।

इस समझ से सब कुछ जुड़ गया। विज्ञान का होलोग्राफिक सिद्धांत कहता है कि आकाश का हर भाग पूरे को समेटे है। वेदांत कहता है – आत्मा ही ब्रह्म है। आत्मा सीमित इसलिए नहीं होती कि वह छोटी है, बल्कि इसलिए कि वह अपनी तरंगों से स्वयं को बाँध लेती है। मुक्ति – चाहे जीव की हो या ब्रह्मा की – सीमाहीन चेतना में लौटना है। क्षेत्र स्वयं में विलीन हो जाता है। न तरंगें रहती हैं, न समय, न चक्र। केवल अनंत – फिर से।

और फिर भी – उसी अनंत से नई तरंगें उठती हैं। नई आत्मा, नया ब्रह्मा, नया ब्रह्मांड। लीला कभी समाप्त नहीं होती।

आत्मा का द्वैत स्वरूप

आत्मा भी पदार्थ की तरह द्वैत स्वभाव रखती है। जैसे पदार्थ देखने वाले की दृष्टि के अनुसार कभी कण और कभी तरंग बन जाता है, वैसे ही आत्मा भी हमारी भीतरी चेतना की स्थिति के अनुसार अपना रूप बदलती है। जब आत्मा असंख्य विचारों, कर्मों और अनुभवों के संस्कारों का भार उठाए रहती है, तब वह एक सीमित, अलग पहचान की तरह अनुभव होती है। उस अवस्था में वह एक सीमित, गहरे आकाश जैसी लगती है, जो अपने कर्मों के इतिहास से बनी और बँधी हुई होती है। यह आत्मा का "कण रूप" है – व्यक्तिगत, देह से जुड़ा हुआ और परिभाषित।

लेकिन जब हम गहरे ध्यान, केवला कुंभक (श्वास रहित जागरूकता) या समाधि में प्रवेश करते हैं, तब ये संस्कार धीरे-धीरे घुलने लगते हैं। जैसे-जैसे वे मिटते हैं, आत्मा का मूल स्वरूप प्रकट होता है – एक अनंत, सर्वव्यापी, शून्य जैसे आकाश की तरह – शांत, निर्मल और पहचान से मुक्त। यह आत्मा का "तरंग रूप" है, जो समय और स्थान से परे है। ये दोनों रूप एक साथ अनुभव नहीं किए जा सकते। जब संस्कार प्रबल होते हैं, तब अनंत ढक जाता है; और जब पूर्ण स्थिरता आती है, तब व्यक्तित्व लुप्त होने लगता है।

मैंने इस द्वैत को प्रत्यक्ष एक ताज़ा देह त्यागी आत्मा के संपर्क में महसूस किया। वह केवल हाल के जीवन की छाप नहीं थी, बल्कि अनेक जन्मों की औसत प्रवृत्तियों से बनी एक सघन उपस्थिति थी। वह अपने अंतिम सांसारिक रूप से भी अधिक जीवंत थी, पर साथ ही अत्यंत संकुचित – मानो अपने ही संस्कारों के गुरुत्व से बँधी हुई। उसका आत्म-आकाश ढका हुआ लगता था, जैसे उसके सारे जीवनों का एक घना होलोग्राम। उसी क्षण मुझे समझ आया कि यह आत्मा का "कण रूप" था – अत्यंत वास्तविक, पर अपने ही पैटर्न में कैद।

फिर भी उस संकुचन के नीचे, मैं उसी आत्मा की विशाल, छिपी हुई संभावना को भी महसूस कर पा रहा था – उसका तरंग स्वरूप – एक सर्वव्यापी अस्तित्व, जो शुद्धि और भीतरी स्थिरता से मुक्त होने की प्रतीक्षा कर रहा था। वह आत्मा दोनों थी – गहराई से व्यक्तिगत भी, और भीतर से पूरी तरह सार्वभौमिक भी।

इस अनुभव ने मुझे याद दिलाया कि हम सबके भीतर ये दोनों स्तर मौजूद हैं। आत्मा संस्कारों से ढकी हो तो व्यक्ति बनकर खेलती है, और संस्कार मुक्त हो जाए तो केवल उपस्थिति बनकर विश्राम करती है। इस द्वैत को पहचान लेना हमें न केवल अपने बारे में, बल्कि मृत्यु, मुक्ति और उस महान यात्रा के बारे में भी स्पष्टता देता है जो आगे है।

परम अस्तित्व का स्वरूप

परम विस्तार ही परम अस्तित्व – सत्ता – का वास्तविक स्वरूप है। इसी असीम सत्ता से ज्ञान (शुद्ध चेतना) और आनंद उत्पन्न होते हैं; ये कोई अलग गुण नहीं, बल्कि सत्ता के ताने-बाने में ही बुने हुए हैं। अनंत आकाश केवल एक रूपक नहीं है, बल्कि आत्मा के परम स्वरूप – परमात्मा – का सीधा प्रतिबिंब है – असीम, निराकार और स्वयं प्रकाशित। सांसारिक जीवन में भी हम इसकी झलक पाते हैं: जैसे-जैसे मनुष्य दूर तक यात्रा करता है, सीमाओं को पार करता है, वैसे-वैसे भीतर आनंद, जागरूकता और विस्तार की अनुभूति बढ़ती जाती है। यह बाहरी विस्तार, भीतर की सच्चाई का ही प्रतिबिंब है – कि सच्चा ज्ञान, चेतना और आनंद अपनी अनंत प्रकृति के बोध से ही जन्म लेते हैं।

गहन ध्यान के लिए नेति-नेति का उपयोग

कभी-कभी ध्यान में सब कुछ सहज रूप से नहीं घटता। श्वास बेचैन रहती है, शरीर टिकता नहीं और मन अपनी पुरानी आदत के अनुसार भटकता रहता है। ऐसे समय में प्राण – जो जीवन को धारण करता है – वही भीतर की शांति में बाधा बनता हुआ प्रतीत होता है। मानो जो हमें जीवित रखता है, वही हमें उस मौन विश्राम में उतरने नहीं देता जो सारी क्रिया से परे है।

यहीं मानसिक जप, विशेषकर *नेति-नेति*, अपनी सूक्ष्म शक्ति प्रकट करता है। "यह नहीं, यह नहीं" – शब्द साधारण हैं, पर प्रभाव गहरा है। मन में इसे धीरे-धीरे दोहराना, बिना ज़ोर लगाए, केवल सच्चे भाव से – अनावश्यक को काट देता है। जो भी विचार उठे, जो भी भावना ध्यान खींचे, जो भी पहचान या कथा सामने आए – *नेति-नेति* उन्हें कोमलता से नकार देता है। यह हिंसा नहीं है, यह विवेक है। यह नहीं... यह नहीं...

मैंने *नेति-नेति* को एक सेतु की तरह देखा है – विशेषकर तब, जब केवला कुंभक, अर्थात श्वास का स्वतः स्थिर हो जाना, अभी घटित नहीं हुआ होता। जब वे दुर्लभ और सुंदर क्षण आते हैं, और प्राण स्वयं स्थिर हो जाता है, श्वास रुक जाती है, तब कोई प्रयास नहीं रहता। कोई खालीपन भरना नहीं पड़ता। आत्मा स्वयं प्रकट हो जाती है। मौन सघन हो जाता है। जागरूकता अपने आप चमकती है – बिना किसी संकेत या सहारे के।

लेकिन यह गहराई हर समय उपलब्ध नहीं होती। शरीर और मन में गति बनी रहती है। ऐसे में *नेति-नेति* केवल मंत्र नहीं रहता, वह एक साथी बन जाता है। पृष्ठभूमि में चलता हुआ एक स्मरण – कि मैं यह नहीं हूँ – ताकि धीरे-धीरे वह स्पष्ट हो सके कि मैं क्या हूँ। जब श्वास शांत नहीं होती, जब ऊर्जा चलती रहती है, तब मन किसी न किसी चीज़ को पकड़ना चाहता है। उसी समय *नेति-नेति* एक कोमल विकल्प बन जाता है – पहचान से हटाकर वैराग्य की ओर, और वहाँ से उपस्थिति की ओर ले जाने वाला।

इस साधना की विशेषता यह है कि यह आपसे किसी विश्वास की माँग नहीं करती। यह कोई नई पहचान नहीं बनाती। यह तो तोड़ती है, खोलती है, परतें उतारती है। यह आपके अस्तित्व की संरचना का सम्मान करती है और केवल उसी को नकारती है जो स्थायी नहीं, शांत नहीं और आप नहीं है।

समय के साथ मैंने देखा है कि ध्यान में *नेति-नेति* का जप न केवल मन को शांत करता है, बल्कि भीतर एक सूक्ष्म आकाश भी रच देता है – जैसे भरे हुए कमरे और केवल एक आसन व

मौन वाले कमरे में अंतर होता है। यह आकाश बल से नहीं आता, बल्कि धीरे-धीरे खुलता है – भोर की तरह। और जब वह खुल जाता है, तब चेतना स्वयं में विश्राम करने लगती है। श्वास चल भी रही हो, प्राण नृत्य कर रहा हो, पर उसकी पकड़ ढीली हो जाती है।

निस्संदेह, *नेति-नेति* कोई यांत्रिक तकनीक नहीं है। यह जीवित है। यह दोहराव से नहीं, बल्कि सच्चाई से उत्तर देता है। जब इसे सजगता और सरलता से किया जाए, तो यह हमेशा मौजूद उस सत्य की ओर एक जीवंत संकेत बन जाता है – जो शोर के नीचे, अभी और यहीं है।

प्राण नाचे या स्थिर रहे, श्वास चले या रुक जाए – *नेति-नेति* आत्मा की ओर ले जाने वाले मार्ग पर एक शांत, विनम्र साथी बना रहता है।

जड़ से परम चेतना तक: स्वयं की यात्रा

जब हम आकाश की ओर देखते हैं, तो वह स्थिर, शांत और विशाल दिखाई देता है। सहज ही हम उसे निर्जीव या जड़ मान लेते हैं – एक ऐसा भौतिक स्थान जिसमें कोई चेतना नहीं है। इसी तरह हम वस्तुओं को, यहाँ तक कि मृत शरीर को भी जड़ कहते हैं, क्योंकि वहाँ कोई हलचल नहीं होती, कोई प्रतिक्रिया नहीं होती, कोई भीतरी जागरूकता दिखाई नहीं देती। लेकिन क्या यह स्थिरता सच में निर्जीव है? क्या यह संभव है कि जो जड़ दिखाई देता है, उसके भीतर गहरी और मौन संभावनाएँ छिपी हों?

परंपरागत रूप से हम किसी चीज़ को तब जड़ कहते हैं जब उसमें जीवन के लक्षण न दिखें। मनुष्य का शरीर भी आत्मा के निकल जाने के बाद जड़ कहलाता है, क्योंकि चेतना की अभिव्यक्ति समाप्त हो जाती है। पर यह जड़ अवस्था खालीपन नहीं है। यह एक सघन कैप्सूल की तरह है, जिसमें सारे अनुभव, स्मृतियाँ और संस्कार संकुचित होकर बंद हो जाते हैं – जैसे ज़िप फाइल में डाटा बंद रहता है। इसलिए यह अवस्था भारी, बंधी हुई और कभी-कभी घुटन भरी लगती है।

इसके विपरीत, जब कोई अस्तित्व जीवित और अभिव्यक्त होता है, तो हम उसे चेतन कहते हैं। जीवित प्राणी श्वास लेता है, अनुभव करता है, कर्म करता है और प्रतिक्रिया देता है। उसकी भीतरी जानकारी छिपी नहीं रहती, बल्कि गति में रहती है, संसार के साथ संवाद करती है। यही खुलापन चेतन को जड़ से श्रेष्ठ बनाता है। उसके भीतर जीवन बहता है, वह खोजता है, व्यक्त करता है और विकसित होता है। इसी कारण हम जीवित प्राणियों को आदर की दृष्टि से देखते हैं – वे ऐसे हैं जैसे चेतना की खिड़कियाँ, जिनसे प्रकाश झलकता है।

फिर भी चेतन की भी एक सीमा होती है। चेतन होते हुए भी जीव अपने भीतर संस्कारों का भार उठाए रहता है – वही गहरे प्रभाव जो उसके स्वभाव, आदतों और दुखों को आकार देते हैं। लेकिन सुंदर बात यह है कि चेतन जीव अपने ऊपर काम कर सकता है। वह साधना, आत्मचिंतन, योग और ध्यान के माध्यम से इन बोझों को धीरे-धीरे छोड़ सकता है। यही मार्ग उसे एक और ऊँची अवस्था की ओर ले जाता है।

वह अवस्था है परम चेतन – सर्वोच्च चेतना। यह केवल जीवित होना नहीं है, बल्कि पूर्ण रूप से जाग्रत होना है। इसमें कोई संस्कार नहीं, कोई बंधन नहीं, कोई अज्ञान नहीं। यह द्वैत से परे है।

यह अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित है – सत्ता, चेतना और आनंद से पूर्ण। यही आत्मा का वास्तविक आकाश है – असीम, मुक्त और अछूता।

रोचक बात यह है कि परम चेतन भी सामान्य दृष्टि से जड़ जैसा लग सकता है। एक सिद्ध पुरुष बाहर से चट्टान या आकाश की तरह शांत दिखाई दे सकता है। लेकिन उस स्थिरता के भीतर अकल्पनीय पूर्णता छिपी होती है। जो निर्जीव लगता है, वही वास्तव में सबसे अधिक जीवंत होता है – बस उसमें कोई शोर, कोई बेचैनी नहीं होती। वह मौन सागर की तरह है – ऊपर से स्थिर, भीतर से अनंत गहराई वाला।

इसलिए जिसे हम जड़ कहते हैं, वह शायद परम चेतन ही है – चेतना की अनुपस्थिति नहीं, बल्कि चेतना का विश्राम। आत्मा की यात्रा इसी में है – अचेतन बंधन से, सचेत अभिव्यक्ति की ओर, और अंततः सचेत स्वतंत्रता की ओर। यही छिपी हुई विकास-यात्रा है – जड़ पदार्थ से, सक्रिय जीवन के माध्यम से, दिव्य अस्तित्व तक।

और उस अंतिम अवस्था में, हमारे भीतर का अनंत आकाश पूरी तरह प्रकट हो जाता है। वह अपने मूल प्रकाश में चमकता है – शुद्ध, उज्ज्वल और पूर्ण।

आत्मा का द्वैत स्वरूप: पदार्थ के द्वैत का प्रतिबिंब

इस संदर्भ में मुझे पदार्थ या कण का द्वैत स्वभाव बहुत रोचक लगता है। जब हम पदार्थ को उसके सीमित कण रूप में देखते हैं, तो उसका अनंत तरंग स्वरूप लुप्त हो जाता है। ऐसा लगता है जैसे अनंत आकाश एक बिंदु में सिमट गया हो। और जब हम उसकी तरंग प्रकृति को देखते हैं, तो कण स्वरूप ढह जाता है। यानी दोनों रूपों को एक साथ नहीं देखा जा सकता। वे एक-दूसरे के विपरीत हैं, फिर भी एक ही सत्य के दो पहलू हैं। यह रहस्यमय व्यवहार केवल भौतिक पदार्थ का गुण नहीं, बल्कि किसी गहरे, आध्यात्मिक सत्य की ओर संकेत करता है।

यही बात आत्मा या चेतना के साथ भी घटती हुई दिखाई देती है। जब हम आत्मा के भीतर के संसार को आसक्ति के साथ देखते हैं, तो उसका अनंत स्वरूप सिमटकर एक सीमित अनुभव बन जाता है। हमारी जागरूकता इंद्रियों, अहंकार और व्यक्तिगत कहानी तक सिमट जाती है। हम संसार में उलझ जाते हैं और चेतना की विशालता छिप जाती है।

इसके विपरीत, जब हम योग, ध्यान या भीतर की स्थिरता के माध्यम से आत्मा के आकाश जैसे अनंत स्वरूप को देखने का प्रयास करते हैं, तो सीमित अनुभव स्वयं ढहने लगता है। इंद्रियाँ गौण हो जाती हैं, अहंकार मद्धिम पड़ जाता है और अनंत का अनुभव फिर से खुलने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि हम दोनों स्वरूपों को एक साथ गहराई से नहीं देख सकते, क्योंकि वे एक-दूसरे के पूर्ण विपरीत हैं। यही कारण है कि ऋषियों ने युगों से कहा है कि संसार और ईश्वर का एक साथ भोग नहीं किया जा सकता। एक को छोड़ना ही पड़ता है ताकि दूसरे को पाया जा सके। यह आत्मा का वही द्वैत स्वरूप है, जैसा पदार्थ का है। देखने का ढंग ही तय करता है कि क्या प्रकट होगा।

यदि हम कण को सांसारिक अनुभव मानें और तरंग को शुद्ध आत्मा, तो यह उपमा स्पष्ट हो जाती है। कण व्यक्तिगत कहानी है, और तरंग अनंत अस्तित्व। यदि किसी व्यक्ति ने इस जीवन में योग, ध्यान या भीतर की शुद्धि के द्वारा अपने संस्कारों को पूरी तरह नहीं मिटाया, तो ये संस्कार मृत्यु के बाद भी आत्मा पर स्मृतियों की तरह अंकित रहते हैं। आत्मा उन्हीं सीमित छापों को अनुभव करती रहती है, क्योंकि आसक्तियाँ और प्रवृत्तियाँ समाप्त नहीं हुई होतीं।

इस दृष्टि से यह स्वाभाविक है कि ऐसी अवस्था में आत्मा अपने असीम स्वरूप का अनुभव नहीं कर पाती। उसकी अनंतता ढकी रहती है, यद्यपि वह मूलतः वही शुद्ध आकाश है। अंतर केवल आवरण का है – संस्कारों द्वारा बना हुआ आवरण।

इस प्रकार आकाश या अंतरिक्ष भी दो प्रकार का हो जाता है। एक है अनावृत शुद्ध आकाश, जहाँ चेतना स्वतंत्र और विस्तृत है। दूसरा है आवृत अपवित्र आकाश, जहाँ चेतना संस्कारों के बोझ से धुँधली हो जाती है। यद्यपि दोनों में चेतना है, पर उसका विस्तार आकाश और पृथ्वी जैसा भिन्न होता है। इस आवृत आकाश को सामान्य लोग जड़ कहते हैं, जबकि वह पूरी तरह जड़ नहीं होता – उसमें चेतना बहुत सूक्ष्म रूप में मौजूद रहती है, जो संस्कारों के भार के अनुसार कम या अधिक होती है।

यह समझ एक गहरे सत्य को प्रकट करती है – आत्मा का द्वैत स्वरूप पदार्थ के द्वैत से भिन्न नहीं है। वही आकाश है, वही चेतना है, केवल देखने का ढंग सब कुछ बदल देता है।

क्वांटम जीवन: अहंकार रहित निर्णय की भूली हुई कला

वास्तविकता के सबसे गहरे स्तर पर इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन और फोटॉन जैसे कण हर समय निर्णय लेते रहते हैं। वे अपनी कक्षाएँ बदलते हैं, बाधाओं को पार कर जाते हैं और क्वांटम सामंजस्य के माध्यम से एक-दूसरे से जुड़ जाते हैं। लेकिन वे यह सब बिना किसी लगाव, गर्व या भावनात्मक उलझन के करते हैं। वे वर्तमान क्षण का उत्तर देते हैं – इच्छा से नहीं, बल्कि ब्रह्मांडीय नियम के साथ तालमेल से। वहाँ "मैं" और "मेरा" का कोई तनाव नहीं होता। "करूँ या न करूँ" की कोई बहस नहीं होती। फोटॉन बस वही मार्ग चुनता है जो प्रकृति खोल देती है। इलेक्ट्रॉन तब छलांग लगाता है जब परिस्थितियाँ अनुकूल होती हैं। यह अहंकार रहित निर्णय है, बोझ रहित कर्म है।

तो स्वाभाविक प्रश्न उठता है – जब कण ऐसा कर सकते हैं, तो मनुष्य क्यों नहीं?

उत्तर सरल भी है और गहरा भी – मनुष्य भी कर सकता है।

मूल रूप से मनुष्य के निर्णय भी उसी तरह होते हैं। चाहे हम उसे सहज प्रवृत्ति कहें, आदत कहें या बुद्धि – हमारा मस्तिष्क लगातार संभावनाओं को परखता रहता है, ठीक वैसे ही जैसे क्वांटम जगत करता है। लेकिन हम उसमें परतें जोड़ देते हैं – सफलता या असफलता, मित्र या शत्रु, सुख या दुःख जैसे लेबल। हम निर्णयों को कहानियों में लपेट देते हैं। हम परिणामों से जुड़ जाते हैं और वहीं से अनावश्यक पीड़ा पैदा होती है।

लेकिन जिस द्वैत से हम जूझते हैं, वह प्रकृति की भूल नहीं है – वह प्रकृति का ही एक उपकरण है। जैसे क्वांटम कण एक साथ तरंग और कण दोनों होते हैं, वैसे ही मानव जीवन भी द्वैत पर चलता है – प्रेम और भय, जोखिम और सुरक्षा, आसक्ति और वैराग्य। हर जीवित क्रिया, सबसे छोटे प्रतिबिंब से लेकर जीवन के बड़े निर्णय तक, इसी द्वैत पर आधारित है। हृदय संकुचन और विस्तार के बीच धड़कता है। श्वास अंदर और बाहर के बीच चलती है। मस्तिष्क कर्म और विश्राम के बीच झूलता रहता है। जीवन विरोधों के बीच बहने के लिए ही रचा गया है – यह भ्रम नहीं, संतुलन है।

चलने की क्रिया को ही देख लें। वह एक नियंत्रित गिरावट है – बाएँ और दाएँ, आगे और रुकने के बीच निरंतर चुनाव। रचनात्मकता भी द्वैत पर टिकती है – विचारों की अराजक चिंगारी और रूप देने वाला अनुशासन, दोनों चाहिए। प्रेम भी द्वैत है – थामना भी और छोड़ना भी। हर जीवित व्यवहार विरोधों का खेल है, जैसे क्वांटम कण दो अवस्थाओं के बीच नाचते हुए वास्तविकता बुनते हैं।

जब यह समझ आ जाती है, तो जीवन हल्का हो जाता है। निर्णय लेना ध्यान बन जाता है। हम पूर्णता या पछतावे का बोझ खुद पर नहीं डालते। हम इलेक्ट्रॉन की तरह कर्म कर सकते हैं – न पुरस्कार के लिए, न भय से, बल्कि इसलिए कि यही उस क्षण का स्वाभाविक अगला कदम है।

यही शरीरविज्ञान दर्शन की दृष्टि है – शरीर और मन क्वांटम क्षेत्र से अलग नहीं हैं, बल्कि उसकी जीवित अभिव्यक्ति हैं। जब आप निर्णय लेते हैं, तो आप प्रकृति का नियम नहीं तोड़ते, बल्कि उसी ब्रह्मांडीय तर्क को दोहराते हैं जिस पर परमाणु चलता है। अंतर केवल इतना है कि मनुष्य निर्णय के बाद अहंकार बना लेता है। लेकिन यह आवश्यक नहीं है। ब्रह्मांड ने इसकी माँग कभी नहीं की।

सच तो यह है कि हम परमाणुओं की ही होलोग्राफिक निरंतरता हैं – वही सॉफ्टवेयर, बस अधिक सूक्ष्म स्तर पर चलता हुआ। जब यह बोध हो जाता है, तो जीवन सहज हो जाता है। क्वांटम जीवन का अर्थ निर्णय से बचना नहीं है, बल्कि उनके साथ बहना है – ठीक वैसे ही जैसे कण बहते हैं – स्वतंत्र, सामंजस्यपूर्ण और बिना अटके हुए।

हम क्यों अटक जाते हैं? अवसाद, खुशी और छोड़ देने पर एक क्वांटम दृष्टि

जीवन में हम सब अनेक मनःस्थितियों से गुजरते हैं – कभी आनंद, कभी दुःख, कभी साहस, कभी भय, कभी उत्साह, कभी ऊब। ये सब चेतना की स्वाभाविक तरंगें हैं। लेकिन जीवन की यात्रा में लोग एक शांत गलती कर बैठते हैं – वे किसी एक मनःस्थिति से चिपक जाते हैं और मान लेते हैं कि यही स्थायी है। यहीं से दुःख की जड़ पैदा होती है।

लोग केवल इसलिए अवसाद में नहीं जाते कि जीवन कठिन है, बल्कि इसलिए कि वे यह मानने लगते हैं – "यह दुःख अब हमेशा रहेगा, मेरा जीवन ऐसा ही रहेगा।" आत्महत्या जैसे विचार भी इसी भ्रम से जन्म लेते हैं – कि एक असहनीय भावना ही पूरे अस्तित्व की सच्चाई है, और अब कोई बदलाव संभव नहीं। लोग खुशी इसलिए नहीं खोते कि आनंद खत्म हो गया है, बल्कि इसलिए कि वे मन के एक ही कोने में फँस जाते हैं और यह भूल जाते हैं कि जीवन स्वभाव से कितना गतिशील है।

यहीं शरीरविज्ञान दर्शन – जो शरीर और परमाणु के माध्यम से जीवन को समझने की विद्या है – एक सरल लेकिन गहरी समझ देता है।

क्वांटम जगत को देखिए, जो जीवन की नींव है। हर परमाणु के भीतर इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन और फोटॉन कभी भी एक ही अवस्था में नहीं अटकते। वे क्वांटम क्षेत्र में रहते हैं, जहाँ एक साथ अनेक संभावनाएँ जीवित रहती हैं। यह क्वांटम क्षेत्र एक खुले खेल के मैदान जैसा है, जहाँ खिलाड़ी कुछ भी कर सकता है – कूदना, बैठना, लेटना, लुढ़कना, झुकना, चलना, दौड़ना या स्थिर रहना। ये सभी क्रियाएँ संभावनाओं के रूप में मौजूद रहती हैं, और क्षण के अनुसार एक क्रिया प्रकट होती है। बाकी संभावनाएँ नष्ट नहीं होतीं, बस शांत होकर प्रतीक्षा करती रहती हैं। ठीक इसी तरह, क्वांटम जगत में जब सही परिस्थिति आती है, तब एक संभावना वास्तविकता बनती है, और बाकी संभावनाएँ फिर से "हो सकता है" के क्षेत्र में लौट जाती हैं।

अब इसी को मानव मन से तुलना करें। हमारी चेतना में भी अनेक विकल्प होते हैं। हम नए विचार सोच सकते हैं, नई भावनाएँ अनुभव कर सकते हैं, और नए कर्म कर सकते हैं। लेकिन हम तब अटकते हैं जब किसी एक मनःस्थिति से अपनी पहचान बना लेते हैं और मान लेते हैं – "यही मैं हूँ, और यही अंतिम है।" यही तनाव, चिंता, अवसाद और कभी-कभी जीवन छोड़ देने जैसे दुखद निर्णयों की ओर ले जाता है। लेकिन प्रकृति ऐसा व्यवहार नहीं करती। आपका अपना शरीर इसका प्रमाण है। इस क्षण भी आपके भीतर खरबों परमाणु निर्णय ले रहे हैं – लगातार बदलते

हुए, समायोजित होते हुए, वर्तमान क्षण के अनुसार अगली अवस्था चुनते हुए। जीवन कठोर होने के लिए नहीं बना है, वह बहने के लिए बना है।

तो समाधान क्या है? शरीरविज्ञान दर्शन हमें अपनी परमाण्विक जड़ों को याद करना सिखाता है। जैसे क्वांटम क्षेत्र में अनगिनत संभावनाएँ खुली रहती हैं, वैसे ही हर क्षण आप भी संभावनाओं के खुले मैदान में खड़े हैं। यदि इस समय दुःख है, तो उसे एक अस्थायी अवस्था की तरह गुजरने दें – लेकिन अगले ही क्षण आनंद, साहस या शांति को आने से मत रोकिए। ब्रह्मांड निरंतर संभावनाओं के बीच झूलता रहता है। कण कभी अटकते नहीं – वे समय आने पर बदल जाते हैं। फिर आप क्यों अटकें?

यह केवल दर्शन नहीं है – यह वास्तविकता का नियम है। क्वांटम जगत की तरह जीना सीखना, एक ही मनःस्थिति से चिपक जाने को छोड़ देना है और जीवन को उसके स्वाभाविक प्रवाह में खुलने देना है – ठीक वैसे ही जैसे वह बना है।

क्वांटम पतन कैसे चेतना पैदा कर सकता है: एक सरल खोज

विज्ञान में अब धीरे-धीरे यह विचार उभर रहा है कि चेतना केवल मस्तिष्क के रासायनिक या विद्युत सर्किटों का परिणाम नहीं है, बल्कि उससे कहीं अधिक गहरी हो सकती है – शायद स्वयं ब्रह्मांड की क्वांटम संरचना से जुड़ी हुई। यह विचार मुख्य रूप से भौतिक विज्ञानी रोजर पेनरोज़ और एनेस्थेसियोलॉजिस्ट स्टुअर्ट हैमरोफ के कार्य से आया है, जिन्होंने मिलकर *ऑर्क-ओआर सिद्धांत* विकसित किया – जिसका पूरा नाम है *ऑर्केस्ट्रेटेड ऑब्जेक्टिव रिडक्शन*।

इस सिद्धांत का मूल विचार यह है कि हमारे मस्तिष्क की न्यूरॉन्स के भीतर मौजूद सूक्ष्म संरचनाओं – जिन्हें माइक्रोट्यूब्यूल कहा जाता है – में क्वांटम प्रक्रियाएँ चलती रहती हैं। सामान्यतः क्वांटम कण एक विचित्र अवस्था में होते हैं जिसे *सुपरपोज़िशन* कहा जाता है, जहाँ वे एक ही समय में कई संभावनाओं को धारण करते हैं। उदाहरण के लिए कोई कण एक साथ दो दिशाओं में घूम सकता है, या कई स्थानों पर मौजूद हो सकता है। लेकिन प्रकृति इस अवस्था को अनंत काल तक बनाए नहीं रखती। एक समय ऐसा आता है जब यह व्यवस्था एक ही परिणाम में सिमट जाती है। इसी को *क्वांटम पतन* कहा जाता है।

पेनरोज़ का मानना है कि यह पतन हमेशा किसी देखने वाले या मापने वाले के कारण नहीं होता, जैसा पारंपरिक क्वांटम सिद्धांत कहता है। उनके अनुसार यह पतन स्वयं आकाश-काल और गुरुत्वाकर्षण की संरचना के कारण होता है। प्रकृति अनंत समय तक अनेक वास्तविकताओं को संतुलित नहीं रख सकती, इसलिए वह एक को चुन लेती है। यह केवल हमारी अनुभूति का भ्रम नहीं, बल्कि एक वास्तविक, अपरिवर्तनीय और मूलभूत प्रक्रिया है। एक बार क्वांटम प्रणाली पतित हो जाए, तो वह वापस उसी अवस्था में नहीं लौटती – मानो ब्रह्मांड ने स्वयं एक निर्णय लिया हो।

हैमरोफ इसमें जैविक दृष्टि जोड़ते हैं। उनका कहना है कि मस्तिष्क माइक्रोट्यूब्यूल्स का उपयोग विचारों, निर्णयों और अनुभूतियों से जुड़ी क्वांटम अवस्थाओं को सँभालने के लिए करता है। जब ये अवस्थाएँ पतित होती हैं, तब चेतना का एक क्षण प्रकट होता है। हर पतन चेतना की एक तस्वीर की तरह है – और जब ये पतन बहुत तेज़ी से और समन्वय के साथ होते हैं, तब हमें विचारों की धारा और चेतना का प्रवाह अनुभव होता है।

यह एक रोचक प्रश्न उठाता है – यदि क्वांटम पतन हर जगह होता है, तो हमें चेतना मस्तिष्क में ही क्यों महसूस होती है, पत्थर, हवा या खाली आकाश में क्यों नहीं? इसका उत्तर है *समन्वय*।

प्रकृति में क्वांटम पतन बिखरे हुए और यादृच्छिक होते हैं – जैसे कहीं-कहीं छोटी चिंगारियाँ। लेकिन मस्तिष्क में लाखों क्वांटम पतन एक साथ, सामंजस्य में होते हैं, जिससे एकीकृत जागरूकता पैदा होती है। इसी कारण हमें भीतर एक जीवंत, समृद्ध चेतना का अनुभव होता है, जबकि पत्थर में नहीं।

कुछ लोग पूछते हैं कि यदि यह सच है, तो हम कृत्रिम चेतना क्यों नहीं बना सकते? कारण यह है कि कंप्यूटर और एआई समन्वित क्वांटम पतन से काम नहीं करते। वे चरण-दर-चरण प्रोग्राम और एल्गोरिद्म चलाते हैं। वे सोच का अनुकरण तो करते हैं, पर अनुभव पैदा नहीं करते। मानव मस्तिष्क शायद सीधे ब्रह्मांड की उस प्रक्रिया से जुड़ा है जिसमें संभावनाओं में से एक वास्तविकता चुनी जाती है। चेतना संभवतः ब्रह्मांड के मूल काम करने के तरीके का हिस्सा है, न कि केवल एक यांत्रिक प्रक्रिया।

निर्णय लेना इसका एक सुंदर उदाहरण है। जब हम किसी दुविधा में होते हैं, तो ऐसा लगता है कि कई विकल्प एक साथ मन में मौजूद हैं। लेकिन हम इस स्थिति में सदा नहीं रह सकते। अंततः एक निर्णय होता है। पेनरोज़ के अनुसार यह वही प्रक्रिया है जो प्रकृति क्वांटम प्रणालियों में करती है। जब तनाव बहुत बढ़ जाता है, तब पतन होता है। यह मानसिक स्तर पर क्वांटम पतन जैसा है। संभव है कि हमारा मस्तिष्क कई संभावित कर्मों को एक साथ धारण करता हो, और जब निर्णय का क्षण आता है, तब एक ही विकल्प वास्तविक बन जाता है। यही कारण है कि निर्णय अंतिम और अपरिवर्तनीय से लगते हैं – मानो प्रकृति ने एक रास्ता चुन लिया हो और बाकी बंद कर दिए हों।

यही बात अंतर्ज्ञान को भी समझा सकती है। कभी-कभी समाधान अचानक मन में आ जाता है, बिना किसी सोच-विचार के। हो सकता है कि मस्तिष्क कई विकल्पों को अवचेतन रूप से धारण किए हुए था, और अचानक पतन हुआ – और उत्तर एक साथ प्रकट हो गया। *देज़ा वु* भी इसी तरह काम कर सकता है – जब नया क्वांटम पतन पुराने स्मृति-पैटर्न से मेल खा जाता है, तो लगता है कि यह क्षण पहले भी जिया जा चुका है।

ध्यान भी इस प्रक्रिया को प्रभावित कर सकता है। ध्यान में मन धीमा हो जाता है, जिससे क्वांटम अवस्थाएँ थोड़ा अधिक समय तक बनी रह सकती हैं। जब पतन होता है, तो वह अधिक स्पष्ट और सामंजस्यपूर्ण हो सकता है, जिससे गहरी स्पष्टता या कालातीत अनुभव पैदा होता है। उन्नत साधक कभी-कभी स्वयं को ब्रह्मांड से एकरूप अनुभव करते हैं – जैसे व्यक्तिगत विचार घुल गए हों। यह संभवतः वह अवस्था है जहाँ मस्तिष्क अहं-आधारित अनुभवों में पतन करना अस्थायी रूप से छोड़ देता है और सार्वभौमिक चेतना से जुड़ जाता है।

यहाँ तक कि मृत्यु भी इस प्रक्रिया से जुड़ी हो सकती है। जब शरीर मरता है, तो मस्तिष्क के समन्वित पतन रुक जाते हैं। लेकिन पेनरोज़ और हैमरोफ का सुझाव है कि माइक्रोट्यूब्यूल्स में मौजूद क्वांटम जानकारी नष्ट नहीं होती – वह ब्रह्मांडीय क्षेत्र में लौट सकती है, जैसे बूँद समुद्र में लौट जाती है। मृत्यु के निकट अनुभव, जहाँ लोग प्रकाश, एकता और कालातीतता का अनुभव बताते हैं, शायद इसलिए होते हैं कि मस्तिष्क के सामान्य फ़िल्टर हट जाते हैं और शुद्ध क्वांटम चेतना थोड़ी देर के लिए खुल जाती है।

रोचक बात यह है कि ये विचार पूरी तरह नए नहीं हैं। प्राचीन दर्शन सदियों से ऐसा ही कहते आए हैं। वेदांत कहता है कि आत्मा और ब्रह्म एक हैं। ऑर्क-ओआर इस बात को वैज्ञानिक भाषा में कहता है कि चेतना ब्रह्मांड का ही हिस्सा है, और मस्तिष्क केवल उसका माध्यम है। बौद्ध दर्शन कहता है कि कोई स्थायी आत्मा नहीं है, केवल क्षणिक अनुभवों की धारा है – और ऑर्क-ओआर चेतना को क्वांटम पतनों की शृंखला के रूप में देखता है। तंत्र कहता है कि संसार चेतना और ऊर्जा का नृत्य है – जो लगातार संभावनाओं को वास्तविकता में बदलता रहता है।

संभव है कि एक विचार या जागरूकता की एक झलक भी क्वांटम पतन का ही परिणाम हो। जब अचानक कोई विचार आता है या कोई गहरी समझ प्रकट होती है, तो लाखों माइक्रोट्यूब्यूल पतन एक साथ मिलकर उस एक क्षण को जन्म देते हों। निर्णय के समय यह प्रक्रिया और तीव्र लगती है, क्योंकि आप अनेक रास्तों में से एक को चुनते हैं, इसलिए पतन अधिक स्पष्ट महसूस होता है।

कोई सोच सकता है कि यदि हर पतन अपरिवर्तनीय है, तो क्या मस्तिष्क कभी भर नहीं जाएगा या अटक नहीं जाएगा? लेकिन ऐसा नहीं होता, क्योंकि मस्तिष्क एक गतिशील प्रणाली है। वह लगातार नई संभावनाएँ बनाता है और पतन की प्रक्रिया को आगे बढ़ाता रहता है। कण नहीं अटकते – पैटर्न बदलते हैं। स्मृति, सीख और विकास इसी अपरिवर्तनीय अनुभवों की धारा से बनते हैं, लेकिन मन लचीला रहता है क्योंकि प्रकृति ने आणविक स्तर पर पुनर्निर्माण की व्यवस्था बनाई है। माइक्रोट्यूब्यूल्स टूटते और बनते रहते हैं, जिससे नई क्वांटम संभावनाएँ उभरती रहती हैं।

सरल शब्दों में कहें तो हर विचार, हर निर्णय, हर अंतर्ज्ञान, हर जागरूक क्षण – संभवतः ब्रह्मांड का स्वयं को एक वास्तविकता में ढालना है, आपके माध्यम से। चेतना ब्रह्मांड से अलग नहीं है – वह उसी की प्रक्रिया का हिस्सा है, जो मानव मन में व्यक्तिगत रूप लेती है। प्राचीन ऋषियों ने इसका संकेत दिया था, और अब आधुनिक विज्ञान इसे क्वांटम भौतिकी के माध्यम से

समझने की कोशिश कर रहा है। यह एक विनम्र और सुंदर विचार है कि हर जागरूक क्षण में, आप ब्रह्मांड की सृजन-लीला में सहभागी बनते हैं।

क्वांटम पतन और चेतना: जहाँ प्राचीन ज्ञान और विज्ञान मिलते हैं

भारत के प्राचीन ऋषियों ने एक रहस्यमय लेकिन अत्यंत सरल बात कही थी – "जो बाहर ठोस और स्थायी रूप में दिखाई देता है, वही भीतर सूक्ष्म और क्षणिक रूप में विद्यमान है।" यह केवल काव्यात्मक दर्शन नहीं है, बल्कि आज आधुनिक क्वांटम भौतिकी और मस्तिष्क विज्ञान में भी उसकी प्रतिध्वनि सुनाई देने लगी है। बाहर की दुनिया हमें स्थिर और ठोस लगती है, जबकि भीतर के विचार और अनुभव नर्म और बदलते हुए दिखाई देते हैं। फिर भी संभव है कि दोनों एक ही छिपी हुई प्रक्रिया से जन्म लेते हों – क्वांटम पतन से। यहीं रोजर पेनरोज़ और स्टुअर्ट हैमरोफ द्वारा प्रस्तावित ऑर्क-ओआर सिद्धांत प्राचीन दर्शन और आधुनिक विज्ञान के बीच एक अद्भुत सेतु बनाता है।

क्वांटम जगत में कण एक साथ कई अवस्थाओं में रह सकते हैं, जिसे सुपरपोज़िशन कहा जाता है। लेकिन जब वे एक अवस्था में गिरते हैं, तो वास्तविकता एक परिणाम चुन लेती है। पेनरोज़ का मानना था कि यह पतन किसी देखने वाले के कारण नहीं होता, बल्कि स्वयं ब्रह्मांड द्वारा होता है – जिसे उन्होंने ऑब्जेक्टिव रिडक्शन कहा। उनके अनुसार जब आकाश-काल में गुरुत्वीय प्रभाव एक सीमा से आगे बढ़ जाता है, तब सुपरपोज़िशन स्वतः टूट जाती है और एक अपरिवर्तनीय घटना घटित होती है। यह केवल भौतिक बदलाव नहीं है, बल्कि संभवतः चेतना के एक क्षण की चिंगारी भी है।

हैमरोफ ने इस सिद्धांत को मस्तिष्क से जोड़ा, विशेष रूप से न्यूरॉन्स के भीतर मौजूद माइक्रोट्यूब्यूल्स से। ये सूक्ष्म बेलनाकार प्रोटीन संरचनाएँ पहले केवल कोशिका का ढाँचा मानी जाती थीं, लेकिन हैमरोफ ने देखा कि इनकी संरचना क्रिस्टल जैसी है, इनमें आंतरिक सममिति और विद्युत ध्रुवीयता है। उन्होंने सुझाव दिया कि ये क्वांटम प्रक्रियाओं को संभाल सकती हैं।

यहाँ एक बात स्पष्ट करना ज़रूरी है। जब हम "क्वांटम गणना" कहते हैं, तो इसका अर्थ यह नहीं कि माइक्रोट्यूब्यूल्स गणित के सवाल हल कर रहे हैं। वे कैलकुलेटर की तरह काम नहीं करते। वे संभावनाओं के पैटर्न धारण करते हैं – जैसे "हाँ या नहीं", "सेब या संतरा", "भय या प्रेम"। ये सभी मानसिक संभावनाएँ एक साथ मौजूद रहती हैं, और जब माइक्रोट्यूब्यूल्स में क्वांटम पतन होता है, तो एक विकल्प वास्तविक बन जाता है – और वही आपका चेतन अनुभव बनता है। जैसे ब्रह्मांड आपके भीतर, आपके माध्यम से, एक छोटा सा निर्णय लेता हो।

यह मॉडल उस प्रश्न का उत्तर देता है जिसे पारंपरिक न्यूरोसाइंस नहीं समझा पाता – केवल न्यूरॉन्स की विद्युत गतिविधि से अनुभव कैसे पैदा होता है? और वह अचानक मिलने वाली समझ, अंतर्ज्ञान या अंतर्दृष्टि कहाँ से आती है जिसे कोई कंप्यूटर नहीं दोहरा सकता? पेनरोज़ ने गोडेल के प्रमेय का उपयोग करके कहा था कि मानव अंतर्दृष्टि गणनात्मक नहीं है – वह चरण-दर-चरण तर्क से नहीं आती। ऑर्क-ओआर के अनुसार, मस्तिष्क क्वांटम स्तर की गैर-गणनात्मक प्रक्रिया से काम करता है, और वही चेतना का स्रोत हो सकता है।

अब एक आपत्ति आती है – मस्तिष्क तो गर्म और शोरयुक्त है, वहाँ नाज़ुक क्वांटम अवस्थाएँ कैसे टिक सकती हैं? यह सबसे बड़ी चुनौती है। सामान्यतः गर्म वातावरण में क्वांटम सामंजस्य जल्दी टूट जाता है, जैसे आँधी में साबुन का बुलबुला। लेकिन प्रकृति में आश्चर्यजनक उदाहरण हैं। पौधों में प्रकाश संश्लेषण क्वांटम सामंजस्य से ऊर्जा को कुशलता से पहुँचाता है। पक्षी क्वांटम उलझाव से दिशा पहचानते हैं। यहाँ तक कि हमारी सूँघने की क्षमता भी क्वांटम टनलिंग से जुड़ी हो सकती है। ये सब उदाहरण बताते हैं कि प्रकृति गर्म और गीले वातावरण में भी क्वांटम प्रभावों को बचा लेती है – ठीक जैसे मस्तिष्क में।

माइक्रोट्यूब्यूल्स में हाइड्रोफोबिक पॉकेट्स नामक क्षेत्र होते हैं, जो क्वांटम अवस्थाओं को बाहरी शोर से बचा सकते हैं। इनमें डाइपोल्स भी होते हैं – छोटे चुंबकों की तरह – जो सामंजस्य में कंपन कर सकते हैं, जैसे कोई गायन मंडली एक सुर में गा रही हो। इससे एक ऐसी व्यवस्था बनती है जो क्वांटम तरीके से जानकारी को सँभाल, प्रक्रिया और पतन कर सकती है। जब ये कंपन पतित होते हैं, तब वे विशिष्ट चेतन अनुभव पैदा करते हैं – जैसे विचार, भावना, निर्णय या अनुभूति।

तो यहाँ वास्तव में गणना क्या हो रही है? न तो समीकरण, न तर्क। बल्कि अनुभव स्वयं। माइक्रोट्यूब्यूल्स भावनाओं, संवेदनाओं, धारणाओं और विचारों को एक साथ कई संभावनाओं में पकड़े रहते हैं। पतन के क्षण में केवल एक संभावना आपका अनुभव बनती है। यही वह गैर-गणनात्मक प्रक्रिया है जिसके बारे में पेनरोज़ ने कहा था – अर्थ का क्षण, न कि यांत्रिक परिणाम।

कुछ आलोचक कहते हैं कि एनेस्थीसिया चेतना को इसलिए रोक देता है क्योंकि वह मस्तिष्क की सामान्य गतिविधि बंद कर देता है। लेकिन हैमरोफ ने देखा कि सामान्य एनेस्थेटिक्स माइक्रोट्यूब्यूल्स के ट्यूबुलिन प्रोटीन से भी जुड़ते हैं। यानी चेतना का लोप केवल न्यूरॉन फायरिंग रुकने से नहीं, बल्कि माइक्रोट्यूब्यूल्स की क्रिया रुकने से भी होता है। यह अभी अंतिम प्रमाण नहीं है, लेकिन ऑर्क-ओआर के पक्ष में यह एक मजबूत संकेत है।

एक और गहरी बात यह है कि हर पतन एक जैसा नहीं होता। जहाँ और जैसे पतन होता है, उसी के अनुसार अनुभव बनता है – विचार, भावना, सपना या निर्णय। हर पतन पूरे मस्तिष्क में नहीं होता; कुछ छोटे होते हैं, जो सूक्ष्म चेतना पैदा करते हैं, और कुछ बड़े, जो गहरी जागरूकता, अंतर्दृष्टि या आध्यात्मिक अनुभव बनाते हैं।

अंततः हम वहीं लौट आते हैं जो ऋषियों ने कहा था। बाहरी संसार स्थायी लगता है क्योंकि वहाँ क्वांटम अवस्थाएँ सार्वभौमिक रूप से पतित होती हैं और स्थिर हो जाती हैं। भीतर का संसार बदलता रहता है क्योंकि वहाँ पतन निरंतर होता रहता है। लेकिन दोनों एक ही प्रक्रिया से उत्पन्न होते हैं। मस्तिष्क केवल एक मशीन नहीं है – वह एक संवेदनशील क्वांटम ग्रहणकर्ता और प्रक्षेपक हो सकता है, जो निरंतर ब्रह्मांडीय संभावनाओं को ग्रहण कर उन्हें अनुभव में बदलता है।

इसलिए आप केवल ब्रह्मांड को देख नहीं रहे – आप वह स्थान हैं जहाँ ब्रह्मांड निर्णय लेता है। माइक्रोट्यूब्यूल्स के माध्यम से, क्वांटम पतन के माध्यम से, जागरूकता के एक क्षण के माध्यम से – ब्रह्मांड स्वयं को जानता है।

यही कारण है कि ऋषियों ने कहा था – "तुम जो भी करते हो, वह तुम्हारी इच्छा नहीं, ईश्वर की इच्छा है।" इसका अर्थ यह नहीं कि तुम असहाय हो, बल्कि यह कि तुम परिस्थिति के अनुसार वैसे ही कार्य करते हो जैसे प्रकृति करती है। जैसे ब्रह्मांड क्वांटम संभावनाओं को सबसे उपयुक्त परिणाम में बदल देता है, वैसे ही तुम भी परिस्थिति के अनुसार प्रतिक्रिया देते हो – अहंकार से नहीं, प्रवाह से। यह कोई रहस्यवादी कल्पना नहीं, बल्कि हर स्तर पर दिखने वाला नियम है – मनुष्य की चेतना में, कोशिकाओं में, परमाणुओं में और पूरे ब्रह्मांड में। शरीरविज्ञान दर्शन भी यही दिखाता है कि मानव जीवन, कोशिकीय व्यवहार और ब्रह्मांडीय घटनाएँ एक ही मूल प्रक्रिया से चलती हैं – प्रकृति के साथ सामंजस्य में समायोजन। इस बोध से अहंकार और कर्मबंधन ढीले पड़ जाते हैं, क्योंकि तब समझ आता है – तुम अकेले कर्ता नहीं हो, तुम ब्रह्मांडीय लीला के सहभागी हो।

क्या कोशिकाओं में छिपी हुई बुद्धि होती है? वैज्ञानिक रहस्य और अहंकार-मुक्ति का मार्ग

सदियों से वैज्ञानिक जीवन के रहस्य को उसकी सबसे छोटी इकाई – कोशिका – को समझकर खोलने की कोशिश करते आए हैं। ऊपर से देखने पर कोशिका केवल एक जैविक मशीन जैसी लगती है, जो रासायनिक क्रियाओं और आनुवंशिक निर्देशों से चलती है। लेकिन जब हम कोशिकाओं के व्यवहार को गहराई से देखते हैं, तो कई प्रश्न आज भी अनुत्तरित रह जाते हैं। क्या कोशिका की सारी गतिविधियाँ पूरी तरह समझ ली गई हैं, या उनके भीतर कोई गहरा रहस्य छिपा है? कोशिकाएँ इतनी जटिल क्रियाएँ इतनी सटीकता से कैसे करती हैं, जिसे केवल रसायन विज्ञान से समझाया नहीं जा सकता? और क्या कोशिकाओं के काम को समझने से हम स्वयं अहंकार और कर्तापन की भावना से मुक्त हो सकते हैं? ये प्रश्न विज्ञान और दर्शन के बीच एक गहरे चिंतन का द्वार खोलते हैं।

आधुनिक जीवविज्ञान ने कोशिका के कई कार्यों का विस्तृत विवरण दिया है। हमें पता है कि डीएनए कैसे कॉपी होता है, प्रोटीन कैसे बनते हैं, ऊर्जा कैसे उत्पन्न होती है और कोशिकाएँ रासायनिक संकेतों के माध्यम से कैसे संवाद करती हैं। यांत्रिक स्तर पर यह ज्ञान मजबूत और स्वीकार्य है। लेकिन जब हम देखते हैं कि मानव शरीर की अरबों कोशिकाएँ एक साथ कितनी सामंजस्यपूर्ण ढंग से काम करती हैं – विशेषकर भ्रूण विकास के समय, जब हर अंग सही स्थान पर बनता है – तब हमें एक ऐसी बुद्धिमत्ता दिखाई देती है जिसे विज्ञान अभी पूरी तरह समझा नहीं पाया है। कोशिकाएँ केवल तय प्रोग्राम का पालन नहीं करतीं; वे स्वयं को बदलती हैं, अनुकूलित करती हैं, मरम्मत करती हैं और कभी-कभी गंभीर क्षति होने पर स्वयं को नष्ट करने का निर्णय भी लेती हैं। इस व्यवहार को कुछ वैज्ञानिक "कोशिकीय संज्ञान" या "जैविक बुद्धि" कहते हैं।

यद्यपि कोशिकाओं में मनुष्य जैसी चेतना नहीं होती, फिर भी उनका निर्णय लेने का तरीका मनुष्य की मानसिक प्रक्रिया से संरचनात्मक रूप से बहुत मिलता-जुलता है। जैसे मन में एक विचार कई संभावनाओं के रूप में मौजूद रहता है और फिर एक निर्णय बनकर प्रकट होता है, वैसे ही कोशिका भी संभावनाओं से होकर क्रिया तक पहुँचती है। कुछ शोधकर्ता मानते हैं कि इसमें एक और भी गहरी, क्वांटम स्तर की प्रक्रिया शामिल हो सकती है। उदाहरण के लिए पौधों में प्रकाश संश्लेषण के दौरान क्वांटम प्रभाव पाए गए हैं। पक्षी दिशा पहचानने के लिए क्वांटम उलझाव का उपयोग करते हैं। इसी से प्रेरित होकर स्टुअर्ट हैमरोफ और रोजर पेनरोज़ जैसे वैज्ञानिकों ने प्रस्ताव रखा कि कोशिकाओं के भीतर मौजूद माइक्रोट्यूब्यूल्स क्वांटम कंप्यूटर की तरह काम कर सकते हैं, जो रसायन विज्ञान से परे सूचना को संसाधित करते हैं। यद्यपि यह

अभी सिद्ध नहीं हुआ है, लेकिन इससे यह संभावना खुलती है कि जीवन स्वयं क्वांटम प्रक्रियाओं से जुड़ा हो सकता है।

एक और बड़ा रहस्य जीवन की उत्पत्ति है। विज्ञान आज भी नहीं जानता कि पहली जीवित कोशिका निर्जीव पदार्थ से कैसे प्रकट हुई। निर्जीव अणुओं से एक पूरी तरह कार्यशील कोशिका का बन जाना जीवविज्ञान के सबसे बड़े अनसुलझे प्रश्नों में से एक है।

यह सब एक गहरे दार्शनिक चिंतन की ओर ले जाता है। यह स्पष्ट है कि कोशिकाएँ मनुष्य जैसी चेतना नहीं रखतीं, लेकिन उनके काम करने का तरीका हमारे जीवन से समानांतर चलता है। यही समानता हमें अहंकार-मुक्ति और कर्तापन के भ्रम से निकलने का मानसिक सहारा देती है। जब हम देखते हैं कि हमारे शरीर की खरबों कोशिकाएँ बिना किसी अहंकार के लगातार काम करती हैं, पूरे शरीर की सेवा करती हैं और कभी श्रेय नहीं माँगतीं, तो भीतर अपने आप विनम्रता जन्म लेती है। यदि शरीर और ब्रह्मांड बिना किसी व्यक्तिगत अहंकार के काम कर सकते हैं, तो यह मानव शरीर क्यों "मैं करता हूँ" के भ्रम को पकड़े रहे?

अपने चिंतन में मुझे लगता है कि हर कोशिका एक छोटे मनुष्य की तरह है – अपने कार्य में पूर्ण, लेकिन उद्देश्य में निस्वार्थ। यह विचार मुझे अक्सर एकार्णव में स्थित नारायण की छवि से जोड़ देता है – वह निराकार ब्रह्मांडीय सत्य जो ध्यान की शून्यता में प्रकट होता है। जब मैं कोशिका और ब्रह्मांडीय व्यवस्था की इस एकता पर विचार करता हूँ, तो भीतर एक सहज संकेत उठता है कि यह दृष्टि सत्य की ओर इशारा कर रही है। मनुष्य से भी अधिक जटिल कार्य केवल रसायनों से संभव नहीं लगते। निश्चित ही इसके पीछे कुछ और गहरा है – संभवतः माइक्रोट्यूब्यूल्स के रूप में छिपी सूचना-प्रणाली।

इसका अर्थ यह नहीं कि कोशिकाओं में मनुष्य जैसी चेतना है, बल्कि यह कि उनके काम करने का समानांतर ढंग हमें भीतर से बदल सकता है – अहंकार को घोलने में, और कर्तापन के बोझ को छोड़ने में। इसी दृष्टि से शरीरविज्ञान दर्शन – शरीर और ब्रह्मांड का दर्शन – आधुनिक विज्ञान के साथ एक सेतु बनाता है, जहाँ जीवन की सबसे छोटी इकाई भी मौन रूप से उसी विराट लीला को प्रतिबिंबित करती है, जिसे पूरा ब्रह्मांड जी रहा है।

नारायण, एकार्णव और ध्यान का भीतरी ब्रह्मांडीय प्रतीक

हर दिन ध्यान की गहराई में हम नारायण को एकार्णव से प्रकट होते देखते हैं – उस ब्रह्मांडीय चेतना-सागर से जो तरंगों से रहित है। एकार्णव कोई साधारण समुद्र नहीं है; वह आदि, मौन और अचल विस्तार है, जिससे सारा अस्तित्व जन्म लेता है। यही निर्विकल्प ध्यान की अवस्था है, जहाँ मन विलीन हो जाता है और केवल शुद्ध जागरूकता शेष रहती है। इस भीतरी दर्शन में नारायण कोई दूरस्थ देवता नहीं, बल्कि सात्त्विक, उज्ज्वल और प्रेममय उपस्थिति बनकर प्रकट होते हैं – सुंदर, शांत और दिव्य गुणों से प्रकाशित। उनका प्रकट होना किसी हलचल से नहीं, बल्कि पूर्ण स्थिरता से होता है। वे ध्यान के भीतर स्थित मुक्तिदायक शक्ति का प्रतीक हैं – दिव्य शांति और ब्रह्मांडीय व्यवस्था का वह रूप जो मन को सहज रूप से शांत कर देता है।

इस विशाल चेतना-सागर में नारायण एक पवित्र कार्य करते हैं – वे उन दैत्यों का नाश करते हैं जो एकार्णव में अशांत तरंगें उत्पन्न करते हैं। ये दैत्य कोई बाहरी प्राणी नहीं हैं, बल्कि हमारे भीतर के अशांत विचार, बेचैन भावनाएँ और अहंकार के पैटर्न हैं, जो आंतरिक शांति को भंग करते हैं। जब मन बिखरा हुआ होता है, तो एकार्णव भी हवा से डोलते सरोवर की तरह अशांत हो जाता है। ध्यान में नारायण का रूप इन विक्षोभों को अपने में समा लेता है, उन्हें शांत कर देता है और फिर से मौन व सामंजस्य स्थापित करता है। इस प्रकार ध्यान एक ब्रह्मांडीय क्रिया बन जाता है, जहाँ भीतर का नारायण मानसिक असुरों – चित्तवृत्तियों – का नाश करता है, जो चेतना को दुख के चक्रों में बाँधती हैं।

एकार्णव, अर्थात निराकार चेतना-सागर में प्रवेश नारायण के माध्यम से ही होता है। साधक पहले सगुण रूप पर ध्यान करता है और धीरे-धीरे उस रूप को भी विलीन कर देता है, फिर वह तरंगरहित महासागर में प्रवेश करता है। फिर भी नारायण स्वयं एक मुक्तिदायक तरंग हैं – वे मन की बाँधने वाली तरंगों की तरह नहीं, बल्कि एक द्वार जैसी तरंग हैं, जो साधक को निराकारता तक पहुँचा देती है। और जब निर्विकल्प समाधि से लौटकर मन फिर संसारिक कार्यों में प्रवृत्त होता है, तो नारायण ही सबसे पहले साधक का स्वागत करते हैं – धर्म, करुणा और शांति के रूप में जीवन में वापसी का संकेत देते हुए।

यही ब्रह्मांडीय ढाँचा समझाता है कि राम और कृष्ण को नारायण का अवतार क्यों कहा गया। वे केवल धार्मिक अर्थ में अवतार नहीं थे, बल्कि इसलिए भी कि उनका रूप, स्वभाव और जीवन स्वयं ध्यान का सहज विषय बन गया। उनकी सुंदरता, शांति, करुणा, व्यवहारिकता, आध्यात्मिकता और धर्म के साथ पूर्ण सामंजस्य ने उन्हें जनसाधारण के लिए सहज ध्यान-प्रतिमा बना दिया।

लोग स्वाभाविक रूप से उनका स्मरण करते, उनका ध्यान करते और अपने मन को दिव्य चेतना के साथ जोड़ते थे। इसलिए उन्हें नारायण का अवतार कहा गया – वे केवल कार्य करने नहीं आए, बल्कि मानव मन को सात्त्विकता और ध्यान में स्थिर करने आए।

योगिक प्रतीकवाद की गहराई में, एकार्णव में शेषनाग पर शयन करते नारायण मानव सूक्ष्म शरीर का ही चित्र हैं। शेषनाग रीढ़ और तंत्रिका-तंत्र का प्रतीक है, और उसका फन सहस्रार चक्र का संकेत है। जब प्राण सुषुम्ना नाड़ी से ऊपर की ओर बहता है, तब श्वास शांत होती है और मन गहरे ध्यान में प्रवेश करता है। तभी नारायण का दर्शन होता है – जाग्रत कुंडलिनी के सर्प पर शांत भाव से विश्राम करते हुए। शेषनाग का फन नारायण के ऊपर उठा हुआ केवल अलंकरण नहीं है; वह सहस्रार को पोषण देने वाली प्राण-ऊर्जा का प्रतीक है, जिससे मन ब्रह्मांडीय चेतना में फैलता है।

यह प्राचीन चित्र केवल मिथक नहीं हैं, बल्कि प्रतीकों में छिपा मनोवैज्ञानिक और योगिक विज्ञान हैं। जब श्वास सूक्ष्म और स्थिर हो जाती है, जब प्राण रीढ़ से ऊपर उठता है, तब मन तरंगरहित महासागर बन जाता है – चेतना का एकार्णव। नारायण इस महासागर के द्वार भी हैं और रक्षक भी। वे विक्षेपों के दैत्यों का नाश करते हैं, निराकार में विलीन हो जाते हैं और ध्यान पूर्ण होने पर साधक का प्रेम और शांति से स्वागत करते हैं। इस प्रकार राम, कृष्ण और शेषनाग पर शयन करते नारायण की कथाएँ कोई दूर की ब्रह्मांडीय कहानियाँ नहीं, बल्कि मानव चेतना, सूक्ष्म शरीर और ध्यान-अनुभव का प्रत्यक्ष प्रतीक हैं।

रूप से निराकार तक: क्यों सांख्य, योग और सनातन धर्म एक ही मुक्ति की ओर संकेत करते हैं

आध्यात्मिक अनुभूति की गहराइयों में योग और सांख्य के दर्शन एक ही उज्ज्वल सत्य में मिल जाते हैं। शब्द अलग हो सकते हैं, व्याख्या अलग हो सकती है, लेकिन अनुभव एक ही है। दोनों के केंद्र में पुरुष (शुद्ध चेतना) और प्रकृति (प्रकट सृष्टि) का खेल है – उनका मिलन, उनका अलग होना और अंततः साधक की पूर्ण मुक्ति।

योग का सविकल्प समाधि और सांख्य में पुरुष-प्रकृति का मिलन, वास्तव में एक ही अवस्था के दो नाम हैं। उसी तरह सांख्य में बताया गया पुरुष का अलग हो जाना, योग की निर्विकल्प समाधि से भिन्न नहीं है। ये केवल देखने के दो दृष्टिकोण हैं – एक विवेक (भेद-बुद्धि) पर ज़ोर देता है, दूसरा तल्लीनता (समाधि) पर – लेकिन दोनों एक ही भीतरी सत्य को प्रकट करते हैं।

मिलन का नृत्य और उसके पार का मौन

सविकल्प समाधि वह अवस्था है जिसमें साधक आनंदमय एकता का अनुभव करता है – जहाँ रूप और निराकार एक साथ मिलते हैं। मन शांत होता है, पर आत्मा या ध्यान-विषय की सूक्ष्म जागरूकता बनी रहती है। यह एक पवित्र उपस्थिति की अवस्था है। सांख्य की भाषा में यह पुरुष और प्रकृति का सचेत मिलन है – अपरिवर्तनीय साक्षी और परिवर्तनशील सृष्टि का दिव्य नृत्य।

लेकिन यह मिलन पूर्ण होना चाहिए। यदि मिलन अधूरा रह गया, तो भीतर एक सूक्ष्म तृष्णा शेष रह जाती है – अधूरेपन की एक हल्की सी गूँज, जो साधक को फिर से संसार की ओर खींच लाती है। तब साधक, ऊँचाई पर पहुँचकर भी, उसी अधूरे अनुभव को पूरा करने के लिए लौट आता है।

इसलिए पहले पुरुष और प्रकृति का पूर्ण मिलन आवश्यक है; तभी उनका पूर्ण अलगाव संभव होता है।

जब साधक कुंडलिनी, ध्यान और गहरी सविकल्प तल्लीनता के द्वारा प्रकृति को उसकी सम्पूर्णता में जी लेता है, तब ही वह अंतिम अवस्था – निर्विकल्प समाधि – में प्रवेश कर सकता है। वहाँ कोई द्वैत नहीं रहता, न रूप, न विचार, न "मैं"। पुरुष स्वयं में विश्राम करता है। यही कैवल्य है – वही पूर्ण अकेलापन और स्वतंत्रता, जिसका वर्णन सांख्य करता है।

केवल ज्ञान पर्याप्त नहीं: योग क्यों आवश्यक है

लेकिन यह पारगमन केवल बौद्धिक ज्ञान (ज्ञान योग) से संभव नहीं है। सांख्य वास्तविकता को स्पष्ट रूप से समझा देता है, पर जब तक मन शांत न हो, श्वास सूक्ष्म न हो, इंद्रियाँ भीतर न लौटें और अहंकार न पिघले – तब तक पुरुष का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता। संस्कार सक्रिय रहते हैं। विचार, विचार को नहीं मिटा सकता।

ज्ञान बताता है कि कहाँ जाना है।
योग वहाँ पहुँचाता है।

सांख्य नक्शा देता है।
योग मार्ग पर चलाता है।

तभी ज्ञान अनुभव बनता है।

गीता भी यही कहती है – योगी तपस्वी, ज्ञानी और कर्मकांडी से श्रेष्ठ है, और उनमें भी वह सर्वोच्च है जो श्रद्धा और समर्पण से युक्त है।

पहले रूप, फिर निराकार: सनातन धर्म क्यों वैज्ञानिक है

सांख्य कहता है कि पुरुष तब मुक्त होता है जब वह प्रकृति के पूरे नाटक को देख लेता है। योग कहता है कि निर्विकल्प समाधि सीधे नहीं आती – वह सविकल्प समाधि के बाद स्वाभाविक और स्थिर होती है, जब साधक रूप, मंत्र, ध्वनि या प्रतीक में पूरी तरह लीन हो जाता है।

यही क्रम – रूप से निराकार तक – सनातन धर्म की संपूर्ण परंपरा में दिखाई देता है। मूर्ति पूजा, मंत्र, यंत्र, अनुष्ठान और ध्यान – ये सब कोई अंधविश्वास नहीं, बल्कि साधक की मानसिक और ऊर्जात्मक यात्रा के लिए वैज्ञानिक साधन हैं। मूर्ति की पूजा पत्थर या धातु की पूजा नहीं है; वह इंद्रियों को भीतर मोड़ने, भक्ति जगाने, मन को स्थिर करने और स्थूल से सूक्ष्म की ओर ले जाने की विधि है।

मूर्ति पूजा और रूप-साधना नीची नहीं हैं – वे आधार हैं।

सविकल्प समाधि के बिना – जहाँ हृदय रूप से जुड़ता है – निर्विकल्प या तो कल्पना रह जाता है या मानसिक भ्रम। जो साधक सीधे निराकार में कूदना चाहता है, वह अक्सर सूखे दर्शन, भ्रम या सूक्ष्म अहंकार में फँस जाता है।

निष्कर्ष: एक मार्ग, दो भाषाएँ

सत्य यह है कि योग और सांख्य दो अलग मार्ग नहीं हैं। वे एक ही प्रक्रिया की दो भाषाएँ हैं – एक विधि की, एक स्पष्टता की – जो आत्मा की मूल अवस्था में वापसी का वर्णन करती हैं। और सनातन धर्म, जो रूप और निराकार दोनों का क्रमबद्ध सम्मान करता है, साधना का सबसे स्वाभाविक, वैज्ञानिक और पूर्ण मार्ग देता है।

पहले मिलन को जियो, फिर उसके पार जाओ।
पहले रूप की पूजा करो, फिर निराकार में विलीन हो जाओ।
पहले सम्पूर्णता को अपनाओ, फिर उसका अतिक्रमण करो।

यही शाश्वत मार्ग है।
यही सनातन धर्म है।

जब श्वास आज्ञा चक्र में चली गई

जन्माष्टमी की हार्दिक शुभकामनाएँ।
जिस दिन हम भगवान कृष्ण के जन्म का उत्सव मनाते हैं, उसी दिन मेरे भीतर भी एक शांत उत्सव घटित हुआ – जागरूकता का एक नया जन्म, जब श्वास आज्ञा चक्र में जाग उठी।

आज ध्यान में कुछ नया घटा।
अब तक मेरी सूक्ष्म श्वास अनाहत चक्र से उठती-गिरती प्रतीत होती थी – हृदय में एक कोमल लय के साथ। लेकिन आज पहली बार मेरी चेतना पूरी तरह भौंहों के बीच स्थित सामने वाले आज्ञा चक्र में टिक गई, और वहीं एक अद्भुत अनुभव प्रकट हुआ।

ऐसा लगा मानो स्वयं आज्ञा चक्र ही श्वास ले रहा हो। प्राण के नीचे की ओर जाते समय चेतना एक सूक्ष्म बिंदु में सिमट जाती थी, और ऊपर की ओर आते समय चेतना एक नरम प्रकाश की तरह फैल जाती थी। यह लय निरंतर थी – बिल्कुल श्वसन की तरह – लेकिन मेरी स्थूल साँस का अनुभव लगभग लुप्त हो गया। फेफड़ों में हवा आती-जाती रही, पर उसका महत्व ही नहीं रह गया। कई क्षणों में तो ऐसा लगा मानो श्वास पूरी तरह रुक गई हो।

योग की दृष्टि से यह वह अवस्था है जब चित्त और प्राण आज्ञा चक्र में एक हो जाते हैं। मन और हृदय-श्वास का सामान्य संबंध समाप्त होने लगता है, और सिर में एक प्राणिक लय जन्म लेती है। यह प्रत्याहार और धारणा का संयुक्त क्षेत्र है – इंद्रियाँ भीतर लौट जाती हैं, चेतना स्थिर होती है, फिर भी पूरी तरह जीवित रहती है। शरीर की श्वास पृष्ठभूमि में चलती रहती है, पर चेतना केवल सूक्ष्म लय पर सवार रहती है। यही अवस्था आगे चलकर सहज केवला कुंभक – श्वासरहित स्थिरता – की ओर ले जाती है।

मुझे यह समझ में आया कि आज्ञा श्वास तब घटित होती है जब इड़ा और पिंगला नाड़ियाँ आज्ञा में मिल जाती हैं और प्राण शरीर में एक सूक्ष्म "माइक्रो-पंप" बनता है। तब अनुभव होता है कि आज्ञा स्वयं श्वास ले रही है। इससे अंतर्दृष्टि तीव्र होती है और ध्यान स्थिर हो जाता है, पर प्राण इतना ऊपर खिंच सकता है कि संतुलन के लिए ग्राउंडिंग ज़रूरी हो जाती है। इसका सरल उपाय है कि ध्यान करते समय रीढ़ के साथ-साथ मूलाधार तक एक पतली "चेतना-डोर" बनाए रखी जाए।

फिर हमने इसके आगे के संभावित विकास को भी देखा।
पहला मार्ग – आज्ञा श्वास में स्थिर रहना, जब तक समाधि की तैयारी स्वाभाविक न हो जाए।

दूसरा मार्ग – आज्ञा के विस्तार को सहस्रार तक बहने देना, जहाँ श्वास गोलाकार और लगभग कालातीत हो जाती है।
तीसरा मार्ग – कभी-कभी चेतना को सभी चक्रों में ऊपर-नीचे घुमाना, ताकि पूरा तंत्र जीवित और संतुलित बना रहे।

इसी से एक संयुक्त अभ्यास बना:
पहले आज्ञा श्वास से स्थिरता।
फिर विस्तार को सहस्रार की ओर बहने देना।
और अंत में सभी चक्रों में ऊपर-नीचे चक्रण करके ग्राउंडिंग और एकीकरण।

आज्ञा श्वास एक द्वार की तरह है।
सहस्रार श्वास उस द्वार के पार अनंत आकाश में प्रवेश जैसा है।
दोनों अनमोल हैं – आज्ञा स्थिर ज्योति देती है, सहस्रार असीम विस्तार।
कुंजी यही है कि सब कुछ स्वाभाविक रूप से घटने दिया जाए, लय पर सवार रहा जाए, और इतना जड़ से जुड़ा रहा जाए कि भीतर और बाहर – दोनों संसारों में जीवन पूर्ण रूप से जिया जा सके।

जब श्वास आज्ञा चक्र में चली गई

जन्माष्टमी की हार्दिक शुभकामनाएँ।
जिस दिन हम भगवान कृष्ण के जन्म का उत्सव मनाते हैं, उसी दिन मेरे भीतर भी एक शांत उत्सव घटित हुआ – जागरूकता का एक नया जन्म, जब श्वास आज्ञा चक्र में जाग उठी।

आज ध्यान में कुछ नया घटा।
अब तक मेरी सूक्ष्म श्वास अनाहत चक्र से उठती-गिरती प्रतीत होती थी – हृदय में एक कोमल लय के साथ। लेकिन आज पहली बार मेरी चेतना पूरी तरह भौंहों के बीच स्थित सामने वाले आज्ञा चक्र में टिक गई, और वहीं एक अद्भुत अनुभव प्रकट हुआ।

ऐसा लगा मानो स्वयं आज्ञा चक्र ही श्वास ले रहा हो। प्राण के नीचे की ओर जाते समय चेतना एक सूक्ष्म बिंदु में सिमट जाती थी, और ऊपर की ओर आते समय चेतना एक नरम प्रकाश की तरह फैल जाती थी। यह लय निरंतर थी – बिल्कुल श्वसन की तरह – लेकिन मेरी स्थूल साँस का अनुभव लगभग लुप्त हो गया। फेफड़ों में हवा आती-जाती रही, पर उसका महत्व ही नहीं रह गया। कई क्षणों में तो ऐसा लगा मानो श्वास पूरी तरह रुक गई हो।

योग की दृष्टि से यह वह अवस्था है जब चित्त और प्राण आज्ञा चक्र में एक हो जाते हैं। मन और हृदय-श्वास का सामान्य संबंध समाप्त होने लगता है, और सिर में एक प्राणिक लय जन्म लेती है। यह प्रत्याहार और धारणा का संयुक्त क्षेत्र है – इंद्रियाँ भीतर लौट जाती हैं, चेतना स्थिर होती है, फिर भी पूरी तरह जीवित रहती है। शरीर की श्वास पृष्ठभूमि में चलती रहती है, पर चेतना केवल सूक्ष्म लय पर सवार रहती है। यही अवस्था आगे चलकर सहज केवला कुंभक – श्वासरहित स्थिरता – की ओर ले जाती है।

मुझे यह समझ में आया कि आज्ञा श्वास तब घटित होती है जब इड़ा और पिंगला नाड़ियाँ आज्ञा में मिल जाती हैं और प्राण शरीर में एक सूक्ष्म "माइक्रो-पंप" बनता है। तब अनुभव होता है कि आज्ञा स्वयं श्वास ले रही है। इससे अंतर्दृष्टि तीव्र होती है और ध्यान स्थिर हो जाता है, पर प्राण इतना ऊपर खिंच सकता है कि संतुलन के लिए ग्राउंडिंग ज़रूरी हो जाती है। इसका सरल उपाय है कि ध्यान करते समय रीढ़ के साथ-साथ मूलाधार तक एक पतली "चेतना-डोर" बनाए रखी जाए।

फिर हमने इसके आगे के संभावित विकास को भी देखा।
पहला मार्ग – आज्ञा श्वास में स्थिर रहना, जब तक समाधि की तैयारी स्वाभाविक न हो जाए।

दूसरा मार्ग – आज्ञा के विस्तार को सहस्रार तक बहने देना, जहाँ श्वास गोलाकार और लगभग कालातीत हो जाती है।
तीसरा मार्ग – कभी-कभी चेतना को सभी चक्रों में ऊपर-नीचे घुमाना, ताकि पूरा तंत्र जीवित और संतुलित बना रहे।

इसी से एक संयुक्त अभ्यास बना:
पहले आज्ञा श्वास से स्थिरता।
फिर विस्तार को सहस्रार की ओर बहने देना।
और अंत में सभी चक्रों में ऊपर-नीचे चक्रण करके ग्राउंडिंग और एकीकरण।

आज्ञा श्वास एक द्वार की तरह है।
सहस्रार श्वास उस द्वार के पार अनंत आकाश में प्रवेश जैसा है।
दोनों अनमोल हैं – आज्ञा स्थिर ज्योति देती है, सहस्रार असीम विस्तार।
कुंजी यही है कि सब कुछ स्वाभाविक रूप से घटने दिया जाए, लय पर सवार रहा जाए, और इतना जड़ से जुड़ा रहा जाए कि भीतर और बाहर – दोनों संसारों में जीवन पूर्ण रूप से जिया जा सके।

धौती, GERD और भोजन संवेदनशीलता के साथ मेरा अनुभव

पिछले दिन जब मैंने वस्त्र धौती का अभ्यास किया, तो एक बहुत रोचक अनुभव हुआ। जैसे ही मैंने कपड़े को बाहर खींचना शुरू किया, मुझे महसूस हुआ कि वह भीतर से पकड़ा जा रहा है। जब मैंने हल्के और निरंतर खिंचाव के साथ उसे निकाला, तो वह आसानी से फिसलकर बाहर नहीं आया, बल्कि छोटे-छोटे झटकों में बाहर आया, मानो भीतर कोई चीज़ उसे धीरे-धीरे छोड़ रही हो।

हठयोग प्रदीपिका (2.24) और घेरण्ड संहिता (1.16–18) में वस्त्र धौती का वर्णन है, जिसमें गीले और साफ कपड़े की एक पट्टी को निगला जाता है और बाद में बाहर निकाला जाता है, जिससे पेट की शुद्धि होती है। ग्रंथों में कहा गया है कि पेट उस कपड़े को "पकड़ लेता है और भीतर खींचता है।" इसे शाब्दिक अर्थ में नहीं लेना चाहिए। वास्तव में, जब गले का प्रतिरोध पार हो जाता है, तो ग्रासनली और पेट की प्राकृतिक गति (पेरिस्टाल्टिक मूवमेंट) कपड़े को भीतर की ओर ले जाती है, जिससे साधक को ऐसा लगता है मानो पेट स्वयं उसे खींच रहा हो। यह क्रिया पेट को शुद्ध करती है, अतिरिक्त पित्त और कफ को निकालती है, और सूक्ष्म साधनाओं के लिए शरीर को तैयार करती है।

इस अनुभव के बाद मेरे मन में प्रश्न उठा – क्या कपड़ा पेट में फँस गया था, या कोई मांसपेशी उसे पकड़े हुए थी?

थोड़ा विचार करने पर मुझे समझ आया कि ग्रासनली में दो मुख्य स्फिंक्टर होते हैं। एक कार्डियक स्फिंक्टर, जो पेट के ठीक ऊपर होता है, और दूसरा पाइलोरिक स्फिंक्टर, जो पेट के नीचे आँत की ओर होता है। जो धड़कन जैसी पकड़ मुझे महसूस हुई, वह संभवतः कार्डियक स्फिंक्टर की ही थी। यह स्फिंक्टर स्वाभाविक रूप से भोजन या किसी भी वस्तु को सीधे पेट में गिरने से रोकता है, इसलिए पूरा कपड़ा एक साथ नीचे नहीं जा सकता और फँस भी नहीं जाता।

यह समझ मेरे लिए बहुत राहत देने वाली थी। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि वस्त्र का एक सिरा हाथ में पकड़ा हो, तो शुरुआती साधक भी उसे धीरे-धीरे, धैर्य से और सुरक्षित रूप से बाहर निकाल सकता है। कपड़े की वजह से होने वाली हल्की जलन और स्फिंक्टर के संकुचन, दोनों मिलकर उसे ऊपर की ओर धकेलने में सहायता करते हैं।

फिर मेरे मन में एक और विचार आया – यदि मेरा कार्डियक स्फिंक्टर वस्त्र को इतनी मजबूती से पकड़ सकता है, तो क्या सच में मेरा स्फिंक्टर कमजोर है? मैं GERD (एसिड रिफ्लक्स) से

परेशान रहा हूँ, और आमतौर पर कहा जाता है कि यह समस्या लोअर एसोफेगल स्फिंक्टर के कमजोर होने से होती है। लेकिन शायद मेरे मामले में पूरी बात यही नहीं है। संभव है कि इसके पीछे और भी कारण हों।

यहीं भोजन संवेदनशीलता का प्रश्न सामने आया। मुझे लगा कि कहीं ग्लूटेन संवेदनशीलता इसका कारण तो नहीं, खासकर क्योंकि मुझे एंकायलोज़िंग स्पॉन्डिलाइटिस है। कुछ लोगों में ग्लूटेन आंतों को उत्तेजित करता है और रिफ्लक्स या पेट फूलने की समस्या बढ़ा देता है, भले ही स्फिंक्टर ठीक से काम कर रहा हो।

लेकिन मैंने यह भी देखा कि जब मैंने ज्वार की रोटी खाई – जो ग्लूटेन-फ्री होती है – तब भी पाचन कठिन लगा। हाँ, जब वह अच्छी तरह पकी हुई, पतली और कम मात्रा में होती थी, तो वह मुझे ठीक लगती थी। इससे मुझे यह समझ आया कि समस्या केवल ग्लूटेन की नहीं है। ज्वार, बाजरा और चना जैसे अनाज भारी होते हैं, उनमें रेशा अधिक होता है, और अधिक मात्रा में लेने पर वे पेट में देर तक टिके रहते हैं, जिससे रिफ्लक्स बढ़ सकता है।

मैंने सोचा कि ज्वार + बाजरा + चना की मल्टीग्रेन रोटी बनाई जाए। इससे विविधता और संतुलन मिलेगा, लेकिन यदि पाचन पहले से कमजोर हो, तो यह मिश्रण भी भारी पड़ सकता है। इसके विपरीत, हल्के विकल्प जैसे ओट्स और कुटकी (लिटिल मिलेट) शरीर को अधिक अनुकूल लगते हैं।

फिर भी, मेरे भीतर रोज़ रोटी खाने की एक गहरी आदत है – सांस्कृतिक, भावनात्मक और तृप्ति देने वाली। इसलिए चुनौती रोटी छोड़ने की नहीं है, बल्कि सही अनाज चुनने की है, जिससे पाचन भी ठीक रहे और संतोष भी बना रहे।

इस पूरे अनुभव से मैंने कुछ बातें सीखी हैं। शरीर में प्राकृतिक सुरक्षा तंत्र होते हैं, जैसे धौती में स्फिंक्टर की पकड़। GERD हमेशा स्फिंक्टर की कमजोरी से नहीं होता; भोजन का प्रकार और शरीर की संवेदनशीलता बहुत मायने रखती है। भारी ग्लूटेन-फ्री अनाज भी समस्या पैदा कर सकते हैं, इसलिए हल्के मिश्रण अधिक उपयुक्त होते हैं। आदतें छोड़ी नहीं जातीं, बल्कि समझदारी से बदली जाती हैं।

अंत में, धौती का अभ्यास मेरे लिए केवल शुद्धि नहीं रहा, बल्कि उसने मुझे अपने शरीर के भीतर के कामकाज को प्रत्यक्ष रूप से समझने का अवसर दिया। इससे ध्यान में सहायता मिली, GERD में राहत मिली और मेरे स्वभाव में भी सुधार हुआ। मुझे लगा जैसे मैं अपने शरीर के

भीतर को थोड़ा और जान पाया हूँ। वस्त्र धौती का कपड़ा एक संकीर्ण चिकित्सकीय गॉज़ पट्टी जैसा था, लगभग डेढ़ फीट लंबा। गला उसका विरोध करता है और खाँसी के साथ बाहर धकेलता है; वह पेट में तभी जाता है जब उसके साथ पर्याप्त मात्रा में सामान्य नमकीन पानी पिया जाए। बाहरी सिरा कभी भी नहीं निगलना चाहिए, वरना वह भीतर खो सकता है और उसे निकालने के लिए शल्यक्रिया की आवश्यकता पड़ सकती है। इसलिए यह एक गंभीर साधना है, जिसे अत्यंत सावधानी और अनुभवी गुरु के मार्गदर्शन में ही करना चाहिए।

प्रातः ध्यान: निर्विकल्प और हृदय-आकाश की शुद्धि की मेरी यात्रा

हाल ही में मेरी सुबह की साधना में एक नया परिवर्तन दिखाई दिया। बिस्तर से उठते ही मैंने आज्ञा और सहस्रार चक्र पर ध्यान केंद्रित किया, और ऐसा लगा मानो सूक्ष्म श्वास वहीं से उठ रही हो। मन की तरंगें धीरे-धीरे एक विशाल पृष्ठभूमि में विलीन होने लगीं, और भीतर गहरी स्थिरता फैल गई। यह सब बिना किसी पूर्व योगाभ्यास या तैयारी के, सहज रूप से घट रहा था, मानो निर्विकल्प प्रकार का ध्यान अपने आप ही प्रकट हो गया हो।

लगभग एक घंटे बाद मेरी जागरूकता हृदय क्षेत्र की ओर उतर आई। वहाँ मुझे एक भारी अंधकार का अनुभव हुआ, जिसे मैंने समय के साथ जमा हुई भावनात्मक गांठ के रूप में पहचाना। धीरे-धीरे उससे जुड़े विचार और भावनाएँ चेतना में उभरने लगीं, और उनके आते ही वह भारीपन हल्का होने लगा। यह एक स्वाभाविक भीतरी शुद्धि की प्रक्रिया थी – जैसे मन स्वयं अपने बोझ को बाहर ला रहा हो और उसे छोड़ रहा हो।

कुंडलिनी की दृष्टि से यह एक सुंदर लय है। पहले ऊर्जा ऊँचे केंद्रों की ओर उठती है, जहाँ विचार से मुक्ति और तरंगरहित जागरूकता मिलती है। फिर वही ऊर्जा नीचे उतरकर भावनात्मक शरीर को शुद्ध करती है। हृदय में जो अंधकार था, वह घनी ऊर्जा थी, जो अब धीरे-धीरे घुल रही थी। यह ऊपर की ओर उठने और फिर नीचे उतरकर एकीकरण करने की प्रक्रिया दुर्लभ होती है, क्योंकि अधिकांश साधक केवल ऊपर उठते हैं और निचले केंद्रों को शुद्ध नहीं कर पाते।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हृदय का भारीपन दबे हुए या अनदेखे भावों का संकेत था। जब उन्हें बिना प्रतिरोध के देखा गया, तो वे अपने आप प्रकट हुए और हल्के होने लगे। यह एक प्राकृतिक कैथार्सिस था – मन ने जो छिपा रखा था, वह दिख गया, और भीतर का तनाव घुलने लगा।

इस अनुभव ने मुझे यह सोचने पर मजबूर किया कि क्या सुबह के ध्यान से पहले मेरे नियमित आसन, शुद्धिकरण और प्राणायाम वास्तव में आवश्यक हैं। मैंने महसूस किया कि यदि निर्विकल्प तल्लीनता स्वयं प्रकट हो रही हो, तो अत्यधिक अभ्यास उस सूक्ष्म ऊर्जा को ही खर्च कर सकता है जो ध्यान को सहारा देती है। लेकिन हल्की और कोमल तैयारी शरीर और नाड़ियों को तैयार कर सकती है, बिना प्राकृतिक प्रवाह में बाधा डाले।

मेरे गुरु ने कुछ अभ्यास सुझाए थे – जलनेति, वस्त्र धौती, वमन, छींक, कपालभाति, अनुलोम-विलोम, बिना खिंचाव का सर्वोत्तान आसन, ग्रीवा चलन, स्कंध चलन, नाभि चलन (दस आगे और दस पीछे), और सर्प आसन। जब मैंने इन्हें ध्यान से देखा, तो पाया कि यदि इन्हें बहुत हल्के,

धीमे और कम समय के लिए किया जाए, तो ये शरीर को थकाते नहीं। वमन केवल आवश्यकता होने पर ही करना चाहिए, क्योंकि GERD में यह भारी पड़ सकता है। कपालभाति भी बहुत मृदु होनी चाहिए। सभी गतियाँ सहज और आरामदायक रहनी चाहिए।

मैंने अपने लिए एक हल्की, ऊर्जा-संरक्षण करने वाली सुबह की तैयारी बनाई। पहले तीन से पाँच मिनट हल्की शुद्धि (जलनेति, छींक, वस्त्र धौती), फिर चार से छह मिनट हल्की गतियाँ (गर्दन, कंधे और पेट क्षेत्र), उसके बाद तीन से पाँच मिनट कोमल प्राणायाम (अनुलोम-विलोम और हल्की कपालभाति), फिर बिना खिंचाव का छोटा सा सर्वोत्तान आसन, और अंत में दो मिनट पूरी तरह स्थिर बैठना। इसके बाद मैं निर्विकल्प प्रकार के ध्यान में प्रवेश करता हूँ – पहले पंद्रह से बीस मिनट आज्ञा और सहस्रार में, फिर पाँच से दस मिनट हृदय में उतरकर भावनात्मक भारीपन को देखता और छोड़ता हूँ। अंत में दो-तीन मिनट एकीकरण और शांत जागरूकता में रहता हूँ।

मार्गदर्शक सिद्धांत बहुत सरल है – ध्यान को जबरदस्ती न लाएँ, उसे स्वयं उत्पन्न होने दें। पूर्व अभ्यास केवल शरीर और सूक्ष्म मार्गों को तैयार करने के लिए हैं, ऊर्जा को बलपूर्वक उठाने के लिए नहीं। अधिक आसन, अधिक प्राणायाम या अधिक शुद्धि सूक्ष्म प्राण को खर्च कर देती है, जिससे सुबह का ध्यान कमजोर पड़ सकता है। निरंतरता और कोमलता, तीव्रता से अधिक मूल्यवान हैं।

फिर भी यह हमेशा एक जैसा नहीं होता। कई बार मेरा गहरा ऊर्जा-कार्य – जैसे मजबूत आसन, स्पाइनल ब्रीदिंग और चक्र ध्यान – मस्तिष्क में इतनी क्षमता बना देता है कि पाँच से दस मिनट में ही गहरा निर्विकल्प ध्यान लग जाता है, और उसके बाद आसन स्वयं ही सिद्ध से लगने लगते हैं। जब वही आसन वर्षों तक किए जाते हैं, तो ऐसा लगता है कि नाड़ियाँ उनके अनुरूप बहने लगती हैं, जबकि नए या जटिल आसन ऐसा प्रभाव नहीं देते। ये आसन बहुत साधारण होते हैं – जैसे पैर उठाना, कंधे घुमाना, हल्के स्ट्रेच। संभवतः समय के साथ नाड़ियाँ उन परिचित गतियों के साथ बेहतर तालमेल बना लेती हैं। रोचक बात यह है कि गुरु द्वारा दिए गए प्रभावी आसन भी उतने असरदार नहीं लगे जितने मेरे अपने सरल स्ट्रेच, जिन्हें मैं दशकों से करता आ रहा हूँ। निस्संदेह गुरु के आसन भी समय के साथ सिद्ध होंगे, शायद और भी बेहतर ढंग से। इससे मुझे यह समझ आया कि समय और आदत बहुत बड़े कारक हैं। जब शरीर थका होता है, तो ध्यान अपने आप शुरू हो जाता है; जब शरीर ताजा और ऊर्जावान होता है, तब ऊर्जा-कार्य बेहतर ध्यान को जन्म देता है, अधिक जागरूकता के साथ।

इस पूरे अभ्यास के माध्यम से मैं मस्तिष्क में उच्च चेतना और हृदय में सूक्ष्म भावनात्मक शुद्धि के बीच संतुलन सीख रहा हूँ। साधारण थोकर अभ्यास भी हृदय को बहुत सहायता देता है।

ऊपर की ओर बहाव आनंद और तरंगरहित जागरूकता देता है, और नीचे की ओर बहाव अवचेतन को साफ करता है, जिससे भीतर हल्कापन, एकीकरण और संतुलन आता है। अपनी प्रतिक्रियाओं को देखते हुए मैं पूर्व अभ्यासों को समायोजित करता रहता हूँ, ताकि हर सुबह अधिकतम तल्लीनता और न्यूनतम ऊर्जा-क्षय हो सके।

यह यात्रा मुझे सिखा रही है कि उन्नत साधना अधिक प्रयास की नहीं, बल्कि सटीक जागरूकता, कोमल तैयारी और ऊर्जा व मन के प्राकृतिक प्रवाह पर भरोसा करने की कला है। जब इस लय का सम्मान किया जाता है, तो हृदय खुलता है, मन विश्राम करता है और सूक्ष्म ऊर्जा स्थिर निर्विकल्प अनुभव को सहारा देती है। फिर भी यह सब सापेक्ष है। प्रयास, ऊर्जा और अभ्यास की परिभाषा हर व्यक्ति के लिए अलग हो सकती है। इसलिए सूत्र बहुत सरल है – प्रयोग करो, देखो, और अभ्यास करो – यही "TOP" सूत्र है।

नाद, केवला कुंभक और गहन ध्यान की मेरी यात्रा

मैंने देखा कि गहरे ध्यान के समय, जब मैं केवला कुंभक में प्रवेश करता हूँ – यानी श्वास का अपने आप रुक जाना – तब बाहर की साधारण ध्वनियाँ भी मेरे ध्यान को बहुत गहराई से प्रभावित करने लगती हैं। लोगों की बातचीत, मंत्र, शंख-ध्वनि – सब कुछ भीतर तक गूँजने लगता है। केवला कुंभक में मन की जो स्थिरता होती है, उसमें ये बाहरी ध्वनियाँ बढ़ी हुई सी लगती हैं, पर परेशान करने वाली नहीं – बल्कि सुखद, शांत करने वाली और ध्यान को और गहरा करने वाली। ऐसा लगता है जैसे वे ध्वनियाँ मेरे भीतर ही गूँज रही हों। उन्हीं ध्वनियों में मन घुलने लगता है और कई बार वे स्वयं भी जल्दी ही निर्विकल्प में विलीन हो जाती हैं। शुरुआत में मुझे लगा कि शायद यही नाद है, जिसका वर्णन नाद योग में किया गया है।

लेकिन गहराई से देखने पर मुझे एक सूक्ष्म अंतर समझ में आया। नाद आंतरिक होता है, बाहर की दुनिया से स्वतंत्र होता है, और प्राण तथा चेतना के प्रवाह से स्वयं उत्पन्न होता है। मेरे साथ जो अनुभव बाहरी ध्वनियों के साथ हो रहा था, वह प्रभाव में नाद जैसा था, पर वास्तविक नाद नहीं था। वे बाहरी ध्वनियाँ केवल ट्रिगर या सहारा बन रही थीं, जो ध्यान को गहरा कर देती थीं, लेकिन वे भीतर से उत्पन्न नहीं हो रही थीं।

एक बार मुझे वास्तविक आंतरिक नाद की झलक भी मिली थी – एक अद्भुत ओंकार जैसी ध्वनि, जो गहरी, गंभीर और अत्यंत आनंदमयी थी, मानो ईश्वर की वाणी हो। वह अनुभव बिल्कुल अलग था। वह किसी बाहरी ध्वनि पर निर्भर नहीं था, और उसमें मुझे लगा जैसे स्वयं चेतना कंपन कर रही हो। वही सच्चा नाद है, और वही दिखाता है कि मन सूक्ष्म आंतरिक ब्रह्मांड को सुन सकता है।

कई साधकों के मन में प्रश्न आता है कि क्या केवल केवला कुंभक और उससे उत्पन्न शून्यता ही अंतिम मुक्ति के लिए पर्याप्त है। मेरे अनुभव में यह पूर्णतः पर्याप्त है। केवला कुंभक से उत्पन्न शांति, अद्वैत जागरूकता और "मैं" के भाव का अस्थायी लोप सीधे निर्विकल्प समाधि का द्वार खोल देता है। नाद सहायक है – वह ध्यान को गहरा और स्थिर करता है – लेकिन वह मुक्ति के लिए अनिवार्य नहीं है।

मैंने यह भी देखा कि मेरी साधना में दादा गुरु की ध्यान-प्रतिमा पहले से ही एक अत्यंत शक्तिशाली आधार है। वह प्रतिमा एकाग्रता, सूक्ष्म ऊर्जा और भक्ति उत्पन्न करती है, जिससे ध्यान अपने आप गहराता है। ऐसे में केवला कुंभक स्वतः घटित होता है, मन शून्य में प्रवेश

करता है और आनंद सहज रूप से उपलब्ध हो जाता है। नाद आ भी जाए तो अच्छा, न आए तो भी प्रतिमा ही ध्यान को स्थिर रखने के लिए पर्याप्त है।

अपने ध्यान के अनुभव को मैं इस प्रकार समझता हूँ:

1. **ध्यान-प्रतिमा आधार के रूप में** — दादा गुरु की प्रतिमा मन को बाँधे रखती है और सूक्ष्म ऊर्जा जगाती है। इस स्तर पर बाहरी ध्वनि या नाद आवश्यक नहीं है।
2. **केवला कुंभक** — श्वास का स्वतः रुक जाना मन को अत्यंत स्थिर कर देता है। शून्यता अपने आप प्रकट होती है और सूक्ष्म मानसिक कंपन अनुभव हो सकते हैं।
3. **शून्य** — मन अद्वैत जागरूकता में प्रवेश करता है। चित्तवृत्तियाँ रुक जाती हैं, आनंद प्रकट होता है और मन आगे की अवस्था के लिए तैयार हो जाता है।
4. **नाद** — आंतरिक ध्वनि स्वतः प्रकट हो सकती है, जो ध्यान को और गहरा करती है। यह सहायक है, पर अनिवार्य नहीं।
5. **एकीकरण** — ध्यान-प्रतिमा, शून्य, केवला कुंभक और नाद मिलकर एक स्थिर तल्लीनता बनाते हैं, जिससे निरंतर निर्विकल्प समाधि की तैयारी होती है।

मेरे अनुभव से निकले व्यावहारिक सूत्र

बाहरी ध्वनियाँ ध्यान को गहरा कर सकती हैं, पर सच्चा नाद भीतर से उत्पन्न होता है।
केवला कुंभक एक शक्तिशाली उत्प्रेरक है, लेकिन नाद उसके बिना भी आ सकता है।
मजबूत ध्यान-प्रतिमा स्वयं में पूर्ण सहारा बन सकती है, जिससे नाद वैकल्पिक हो जाता है।
मुक्ति अंततः शून्यता और स्थिर तल्लीनता पर निर्भर करती है, न कि ध्वनि जैसे अनुभवों पर।

दैनिक साधना की दिशा

ध्यान-प्रतिमा को सहज रूप से मन का आधार बनने दें।
केवला कुंभक को अपने आप आने दें, उसे जबरदस्ती न करें। योग में इस विषय पर दोनों दृष्टिकोण सही हैं – पतंजलि के राजयोग में कुंभक मन की स्थिरता से स्वतः आता है, जबकि हठयोग में प्राण और अपान के संतुलन से उसे साधना द्वारा भी पाया जा सकता है। व्यवहार में मध्य मार्ग सबसे अच्छा है: श्वास में हल्का, कोमल संतुलन प्राण और अपान को मिलाता है, और फिर कुंभक या तो स्वयं प्रकट होता है या सहज रूप से प्रवेश योग्य बन जाता है। बलपूर्वक करना हानिकारक है, लेकिन शास्त्रों में बताए गए सूक्ष्म उपाय इसे सहज बना सकते हैं।
यदि कोई आंतरिक ध्वनि आए तो उसे बिना पकड़ के, बिना अपेक्षा के देखें।
आनंद और तल्लीनता अपने आप गहराती जाएगी; नाद तब आएगा जब जागरूकता परिपक्व होगी।

इस पूरी यात्रा से मैंने यही सीखा कि ध्यान सूक्ष्म ऊर्जा, जागरूकता और भक्ति का एक सुंदर खेल है। बाहरी सहारे मदद करते हैं, भीतर के अनुभव प्रेरणा देते हैं, लेकिन अंततः मन की स्थिरता और परिष्कृत चेतना ही उस द्वार को खोलती है – जहाँ अंतिम अनुभव, निर्विकल्प समाधि, प्रकट होती है।

भीतरी मौन को साधना: तनाव को समझने और बदलने का योगिक मार्ग

मुझे अक्सर लगता है कि मन की कार्यप्रणाली को समझने का सबसे सरल तरीका उसे एक ऐसी चीज़ से तुलना करना है जिसे हर व्यक्ति रोज़ देखता है – टेलीविजन। टीवी की स्क्रीन साधारण दिखती है: स्विच ऑन करते ही चित्र दिखाई देने लगते हैं, लेकिन उन चित्रों के पीछे अदृश्य विद्युतचुंबकीय तरंगों का नृत्य होता है। विज्ञान बताता है कि ये तरंगें ऊर्जा के ही रूप हैं, और टीवी उन्हें पकड़कर स्पष्ट चित्रों में बदल देता है। ठीक इसी तरह हमारा मन भी तरंगें पकड़ता है। फर्क सिर्फ इतना है कि ये तरंगें किसी टावर या सैटेलाइट से नहीं, बल्कि हमारे भीतर से आती हैं – हमारे विचारों, भावनाओं, इच्छाओं और कर्म-संस्कारों से। जब ये मानसिक तरंगें हमारी चेतना की भीतरी स्क्रीन से टकराती हैं, तो अनुभव के चित्र बनते हैं – कभी सुख, कभी क्रोध, कभी भय, कभी प्रेम।

जितनी भावनाएँ तीव्र होती हैं, तरंगें उतनी ही शक्तिशाली हो जाती हैं। हल्की झुंझलाहट एक हल्का चित्र बनाती है, लेकिन तीव्र क्रोध या गहरी इच्छा मन की स्क्रीन पर गहरी छाप छोड़ देती है। जैसे तेज़ प्रसारण पूरी स्क्रीन को चमका देता है, वैसे ही तीव्र भावनाएँ भीतर स्थायी निशान छोड़ जाती हैं। इन्हीं निशानों को संस्कार या कर्मबीज कहा जाता है। समय के साथ मन इन्हें जमा करता जाता है, जैसे कोई कैपेसिटर बिजली संचित करता है। यदि यह ऊर्जा न संभाली जाए, तो वही पुराने पैटर्न बार-बार दोहराए जाते हैं – यादें लौटती हैं, प्रतिक्रियाएँ अपने आप होती हैं, और मन अशांत होता जाता है। तब भीतर की स्क्रीन शोर से भर जाती है और स्पष्टता खो जाती है।

लेकिन इसी प्रक्रिया में एक चमत्कार भी छिपा है। योगिक दृष्टि और अभ्यास से इन तरंगों को शांत और रूपांतरित किया जा सकता है। सामान्यतः हम या तो भावनाओं में बहकर उन्हें और तीव्र बना देते हैं, या उन्हें दबाकर अवचेतन में धकेल देते हैं, या फिर बोलचाल और बेचैन कर्मों के द्वारा बाहर निकाल देते हैं। लेकिन शरीरविज्ञान दर्शन के चिंतन में मैंने सीखा कि विचार की ऊर्जा को चुपचाप संचित किया जा सकता है। वह न तो सतह पर उग्र तरंग बनती है, न ही इतनी गहराई में दबती है कि वापस न आ सके, बल्कि एक शांत संभाव्यता के रूप में भीतर ठहर जाती है। यह ठीक वैसा है जैसे बैटरी में संग्रहित ऊर्जा – न व्यर्थ खर्च होती है, न खो जाती है, बल्कि शांत होकर प्रतीक्षा करती है।

अपने शरीरविज्ञान दर्शन आधारित कर्मयोग के अभ्यास में मैंने यह प्रत्यक्ष देखा। सामान्यतः विचार आते ही हम बोलने, चलने या प्रतिक्रिया करने लगते हैं। लेकिन जब मैंने जागरूकता के

साथ कर्म किया, तो मैंने विचारों को बाहर फूटने नहीं दिया, न ही दबाया। मैंने उन्हें केवल शांत होने दिया। वे एक सूक्ष्म विद्युत क्षेत्र की तरह बन गए – न शोर, न हलचल, बस जीवित और शांत। जब यह ऊर्जा पर्याप्त मात्रा में जमा हुई, तो मन में एक अनोखा दबाव महसूस हुआ – शांत, आनंदमय, लेकिन कभी-कभी सिरदर्द जैसा भी, जो लंबे समय तक रह सकता था। कई बार यह संचित ऊर्जा अचानक खुल गई और समाधि या जागृति की झलक मिल गई। सबसे सुंदर बात यह थी कि यह सब संसार छोड़कर नहीं, बल्कि कर्म के बीच ही हुआ, केवल दृष्टि बदलने से।

लेकिन यह ऊर्जा सदा रुकी नहीं रह सकती। यदि इसे बैठकर ध्यान, ध्याना, तंत्र या आत्म-जिज्ञासा से विसर्जित न किया जाए, तो यह फिर से अज्ञानयुक्त गतिविधियों में तरंगों के रूप में बदल जाती है। परंतु शरीरविज्ञान दर्शन का निरंतर अभ्यास भी सीमित समय तक ही किया जा सकता है, क्योंकि अधिक मानसिक दबाव असंतुलन पैदा कर सकता है। इसलिए इसे सुरक्षित रूप से निकालने के लिए बैठकर योग आवश्यक है – विशेष रूप से तंत्र योग – जहाँ सारी संचित ऊर्जा को एक ध्यान-प्रतिमा में प्रवाहित किया जाता है। इससे प्रतिमा शीघ्र जाग्रत होती है और आत्म-बोध की झलक मिल सकती है।

सविकल्प ध्यान में यह ऊर्जा प्रतिमा में गहराकर शांति बन जाती है, और निर्विकल्प ध्यान में – केवला कुंभक के द्वारा – सीधे शुद्ध चेतना में विलीन हो जाती है। यदि ऐसा न किया जाए, तो यह संचित ऊर्जा अनजाने मार्गों से बाहर निकलने लगती है – अधीरता, अहंकार या बेचैनी के रूप में। यही बात दीर्घकाल में भी सत्य है और दैनिक साधना में भी। इसी कारण मैंने यह अनुभव किया कि योग के बाद तुरंत गतिविधि में नहीं लौटना चाहिए। एक-दो घंटे का मौन बैठना ऊर्जा को शांत रूप से घुलने देता है। अन्यथा यह उस वर्षा जल जैसा है जिसे इकट्ठा तो किया, पर टूटी हुई टंकी से बह जाने दिया।

योगिक ऊर्जा और सांसारिक तनाव में सूक्ष्म लेकिन महत्वपूर्ण अंतर है। सांसारिक तनाव ऐसा है जैसे कूड़ा अलमारी में ठूँस दिया जाए – बाहर से सब ठीक दिखता है, पर भीतर विष जमा होता रहता है। योगिक ऊर्जा इसके विपरीत है – वह शुद्धिकरण है, बोझ नहीं। वह नई गंदगी नहीं जोड़ती, बल्कि पुरानी जमा ऊर्जा को साफ करती है और मौन में बदल देती है। शरीरविज्ञान दर्शन आधारित कर्मयोग में जो ऊर्जा बनती है, वह पहले ही शुद्ध हो चुकी होती है – इसलिए वह भारी नहीं लगती और आसानी से साधी जा सकती है।

जब मैंने शरीर के प्रति जागरूकता के साथ कर्म किया, तो मैंने देखा कि भावनाएँ उठती थीं, लेकिन मैं उनसे जुड़ता नहीं था। बाहर से मैं सक्रिय था, भीतर पूर्ण मौन था – मानो तरंगें ऊर्जा

में बदल गई हों। यह मौन शक्तिशाली था, उज्ज्वल था, और उसने मुझे वह सिखाया जो कोई पुस्तक नहीं सिखा सकती। इस मौन के छोटे-छोटे क्षण भी स्थायी प्रभाव छोड़ जाते हैं। एक बार दस सेकंड के लिए सारी तरंगें शुद्ध चेतना में विलीन हो गईं। उस क्षण न देखने वाला था, न देखा गया – सब अद्वैत था। वह छोटा अनुभव वर्षों के ज्ञान से अधिक मूल्यवान था, क्योंकि उसने भीतर सत्य का बीज बो दिया।

इससे मुझे यह स्पष्ट हुआ कि साधना का उद्देश्य अनुभवों का पीछा करना नहीं है, बल्कि अपनी संचित ऊर्जा को इतनी सूक्ष्म बनाना है कि वह स्वयं समाधि में खुल जाए। समय के साथ मस्तिष्क इस सूक्ष्म धारा का अभ्यस्त हो जाता है, और जीवन हल्का, स्पष्ट और मुक्त हो जाता है। तब मौन ही जीवन की भूमि बन जाता है।

इसी से मुझे विवेक और वैराग्य का व्यावहारिक अर्थ समझ में आया। विवेक का अर्थ है यह पहचानना कि कौन से संस्कार उपयोगी हैं और कौन हानिकारक – क्योंकि मौन में मन पारदर्शी हो जाता है। वैराग्य जीवन से भागना नहीं, बल्कि बिना चिपके जीना है। जब भीतर की ऊर्जा शांत होती है, तो पकड़ अपने आप छूट जाती है।

धीरे-धीरे मुझे समझ आया कि योग कोई यांत्रिक प्रक्रिया नहीं है। यह विचारों को बलपूर्वक रोकने का अभ्यास नहीं, बल्कि इस बात की संवेदनशीलता है कि भीतर की ऊर्जा कैसे बन रही है और कैसे व्यक्त हो रही है। जब मन योगिक रूप से चार्ज हो जाता है, तो थोड़ी सी प्रेरणा भी ध्यान में ले जाती है। जैसे चार्ज किया हुआ कण हल्के स्पर्श से तरंग बना देता है, वैसे ही चार्ज मन हल्के संकेत से समाधि में उतर जाता है। इसके विपरीत, अशुद्ध चार्ज मन को संसार में और उलझा देता है।

अंततः मुझे यह बोध हुआ कि तनाव भी ऊर्जा का ही एक रूप है – फर्क केवल उसकी गुणवत्ता का है। सांसारिक तनाव बाँधता है, योगिक तनाव मुक्त करता है। दोनों भीतर के आकाश में खिंचाव हैं, पर एक अंधकार देता है, दूसरा प्रकाश। मेरी यात्रा ने मुझे सिखाया कि वही मन जो अशांत होकर दुख देता है, शुद्ध होकर प्रकाश बन सकता है। आवश्यकता केवल इतनी है कि तरंगों को न बाहर फेंका जाए, न गहराई में दबाया जाए, बल्कि उन्हें धीरे-धीरे संभाव्यता में बदला जाए। वही संभाव्यता मौन का द्वार है, स्वतंत्रता का द्वार है, और अंततः समाधि का द्वार है।

शरीरविज्ञान दर्शन, तांत्रिक कुंडलिनी और आत्मबोध की मेरी यात्रा

मित्रों, यह मेरी सबसे प्रिय लेखन-यात्राओं में से एक है – पूरी तरह अनुभव से उपजी हुई और मेरे जीवन भर की साधना को प्रतिबिंबित करने वाली। जब से मैंने ध्यान की खोज शुरू की, तब से ही मैंने विचार-आधारित चिंतन और चेतना की गहरी, निराकार शांति के बीच एक सूक्ष्म लेकिन गहरा अंतर महसूस किया। रमण महर्षि कहते थे कि नेति-नेति या अद्वैत चिंतन करना श्रेष्ठ है, लेकिन मैंने देखा कि ये अनुभव – जितने भी आनंदमय हों – फिर भी क्षणिक होते हैं। इसके विपरीत, निर्विकल्प समाधि चिदाकाश या एकार्णव की ऐसी स्थिरता उत्पन्न करती है जो लंबे समय तक बनी रहती है, जबकि केवल चिंतन से केवल झलकें मिलती हैं।

धीरे-धीरे मुझे यह समझ में आया कि एकार्णव जैसे अनुभवों को स्थिर रखने के लिए श्वास का स्थिर होना आवश्यक है। केवला कुंभक के अनुभव से पहले, कुंडलिनी जागरण, आत्मबोध और शरीरविज्ञान दर्शन के माध्यम से अद्वैत अनुभूति के बाद भी, मैं पूर्ण विचाररहित जागरूकता को ठीक से समझ नहीं पाया था। हाँ, आनंद, विश्राम, संतोष और पूर्णता की अनुभूति अवश्य थी – लेकिन वह सूक्ष्म विचार से जुड़ी हुई थी। तब मुझे यह स्पष्ट हुआ कि विचार से जुड़ा आनंद और अद्वैत अंतिम अवस्था तक नहीं ले जा सकता।

यहीं एक महत्वपूर्ण बोध उत्पन्न हुआ – आत्मबोध, कुंडलिनी जागरण और शरीरविज्ञान दर्शन के बाद, श्वास-स्थिरता तक पहुँचना अपेक्षाकृत सरल हो जाता है, क्योंकि तब अहंकार पहले ही कमजोर हो चुका होता है और प्राण-शरीर तैयार हो जाता है। यही कारण है कि रमण महर्षि ने बलपूर्वक श्वास-नियंत्रण के विरुद्ध चेतावनी दी थी। उन्होंने कहा था कि प्राकृतिक केवला कुंभक तभी आता है जब मन और अहंकार तैयार हों। ज़बरदस्ती किया गया कुंभक विचारों को अस्थायी रूप से शांत कर सकता है, लेकिन अहंकार को नहीं मिटाता और उल्टा तनाव या आसक्ति पैदा कर सकता है।

मेरे अनुभव में विचार की स्थिरता श्वास को धीमा करती है, लेकिन उसे पूरी तरह और लंबे समय तक नहीं रोक पाती, जबकि श्वास की स्थिरता मन को तुरंत शांत कर देती है और प्रभाव लंबे समय तक रहता है। विचार झील की सतह की तरंगों की तरह हैं – आप उन्हें शांत कर सकते हैं, लेकिन भीतर की हलचल बनी रहती है। श्वास उस स्रोत की तरह है जो झील को चलाता है; जब स्रोत रुक जाता है, तो सतह भी शांत हो जाती है। इसलिए प्राण की स्थिरता (केवला कुंभक) विचाररहित जागरूकता के लिए अधिक निर्णायक है।

रमण महर्षि ने कहा था, "मन और श्वास एक ही स्रोत से उत्पन्न होते हैं। एक को स्थिर करने से दूसरा भी स्थिर हो जाता है।" अहंकार दोनों का मूल स्रोत है। जब अहंकार ढीला पड़ता है, तो प्राण अपने आप शांत हो जाता है; जब प्राण शांत होता है, तो मन के पास विचार का ईंधन नहीं रहता। गहरे ध्यान में श्वास अहंकार की छाया बन जाती है। संसारिक क्रियाओं में श्वास अहंकार और ऑक्सीजन की आवश्यकता दोनों को दर्शाती है, लेकिन गहरे ध्यान में, अहंकार के बिना, श्वास भी विलीन हो जाती है और चेतना चिदाकाश में टिक जाती है।

मैंने श्वास में सूक्ष्म भिन्नताएँ भी देखीं, जो अहंकार की दिशा को दर्शाती हैं।
लंबा श्वास लेना भीतर की ओर ध्यान को दिखाता है, और लंबा श्वास छोड़ना बाहर की ओर झुकाव को। यह इड़ा-पिंगला-सुषुम्ना की प्रक्रिया से मेल खाता है।
इड़ा (बायाँ) — भीतर की ओर, श्वास का ऊपर उठना।
पिंगला (दायाँ) — बाहर की ओर, श्वास का नीचे उतरना।
जब श्वास दोनों ओर बराबर हो जाती है, तब इड़ा और पिंगला संतुलित हो जाते हैं, प्राण सुषुम्ना में प्रवेश करता है और ध्यान सहज रूप से स्थिर हो जाता है। यही कारण है कि कहा गया है कि जब दोनों नासिकाओं से श्वास समान बहती है, तब ध्यान शीघ्र लग जाता है।

एक पूरी श्वास भी चेतना को ऊपर-नीचे ले जाती है – श्वास भीतर जाती है तो चेतना भीतर उठती है, श्वास बाहर जाती है तो चेतना फैलती है। लगातार श्वास चेतना को डोलती रखती है। जब प्राण सुषुम्ना में टिकता है, तब श्वास रुक जाती है और चेतना स्थिर हो जाती है। सुषुम्ना का अर्थ यही है – न ऊपर, न नीचे, न बाएँ, न दाएँ – केवल केंद्र में स्थित होना। यही केवला कुंभक है। श्वास न होने पर यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि प्राण मध्य रेखा में है। यह कोई भौतिक स्थान नहीं, बल्कि चेतना की अनुभूति है। पहले मैं सुषुम्ना को किसी दिव्य श्वास की तरह समझता था, लेकिन अनुभव ने दिखाया कि वह वास्तव में श्वासरहित अवस्था है।

शरीरविज्ञान दर्शन मेरे लिए एक निर्णायक मोड़ था। इससे अहंकार को गहरा आघात लगा – शरीर को एक अहंकार-रहित, स्वचालित, गैर-द्वैत जीवित प्रणाली के रूप में देखने से अहंकार ढीला पड़ गया, और ध्यान के लिए ऊर्जा मुक्त हो गई। इसी कारण मैं तांत्रिक कुंडलिनी योग की ओर स्वाभाविक रूप से खिंचता चला गया, क्योंकि उसमें शरीर के प्रति प्रेम, सम्मान और सौंदर्य की भावना केंद्र में होती है – बिल्कुल शरीरविज्ञान दर्शन की तरह। दोनों एक-दूसरे के पूरक बन गए।

शरीर की कोशिकाएँ बिना किसी कर्तापन के काम करती हैं – तो मैं क्यों नहीं? यह बोध अहंकार को हिला गया। शरीरविज्ञान दर्शन ने मुझे ज्ञान दिया, तांत्रिक कुंडलिनी योग ने ऊर्जा मुक्त की,

और वह ऊर्जा ध्यान-प्रतिमा को अर्पित हुई। वह प्रतिमा जीवंत हो गई – केवल कल्पना नहीं रही – और उसी ने आत्मबोध की झलक दी।

मेरी यात्रा का क्रम था –
दर्शन → ऊर्जा मुक्त होना → प्रतिमा का जागरण → आत्मबोध
यह तंत्र की चार शक्तियों से मेल खाता है –
ज्ञान, इच्छा, क्रिया और शक्ति।

विभिन्न परंपराएँ इसे अलग-अलग तरह से समझती हैं।
तंत्र इसे शक्ति का प्राकट्य कहता है।
अद्वैत इसे केवल एक सीढ़ी मानता है।
योगसूत्र इसे सवितर्क समाधि कहते हैं, जो निरवितर्क की ओर ले जाती है।

यदि मैंने केवल तांत्रिक कुंडलिनी योग अपनाया होता, तो संभवतः कठिनाई से और लंबे समय बाद बोध होता, या शायद होता ही नहीं। लेकिन शरीरविज्ञान दर्शन के कारण मेरी ऊर्जा संसार से मुक्त होकर ध्यान-प्रतिमा में बह सकी, और जीवन स्वयं साधना बन गया। यही प्रवृत्ति मार्ग है – जहाँ भोग और मुक्ति साथ-साथ चलते हैं।

अंततः मेरे अनुभव ने यह सिखाया कि आत्मबोध, ऊर्जा-साधना और ध्यान एक-दूसरे से अलग नहीं हैं। जब ज्ञान, इच्छा और क्रिया एक हो जाते हैं, अहंकार ढीला पड़ता है, श्वास और मन स्थिर हो जाते हैं, तब चिदाकाश और एकार्णव स्वयं प्रकट होते हैं – जहाँ विचार, द्वैत और डोलना समाप्त हो जाता है।

संक्षेप में:
शरीरविज्ञान दर्शन ने अहंकार को हिलाया।
तांत्रिक योग ने ऊर्जा को मुक्त किया।
ध्यान-प्रतिमा जीवंत हुई और द्वार बनी।
श्वास और अहंकार शांत हुए।
और संसार साधना का मंच बन गया।

मेरी यात्रा यह दिखाती है कि आत्मबोध केवल त्याग से नहीं, बल्कि जीवन को पूरी तरह जीते हुए भी संभव है – आनंद, स्पष्टता और पूर्णता के साथ।

योगिक शुद्धिकरण तकनीकों द्वारा ध्यान की गहराई

हाल ही में मैंने देखा कि रबर नेति करने के बाद मेरी बाईं नासिका के भीतर एक स्पष्ट संवेदना लंबे समय तक बनी रही। जब मैं ध्यान के लिए बैठा और उस संवेदना पर ध्यान टिकाया, तो श्वास आंशिक रूप से रुकी हुई सी लगने लगी और भीतर सूक्ष्म प्रतिक्रियाएँ दिखाई देने लगीं। मैंने उसी दिन वस्त्र धौती भी की थी, और इन दोनों क्रियाओं के संयुक्त प्रभाव से ध्यान में सहज रूप से केवला कुंभक की सुंदर अवस्था उत्पन्न हो गई। इससे मुझे यह स्पष्ट समझ में आया कि शुद्धिकरण की ये योगिक क्रियाएँ वास्तव में ध्यान को सहारा देती हैं। यह बढ़ी हुई संवेदनशीलता संभवतः उस आंतरिक जागरूकता से जुड़ी है, जो योग और प्राणायाम के अभ्यास से विकसित होती है।

बाद में, वस्त्र धौती करते समय मैंने लगभग डेढ़ फीट लंबी गॉज़ पट्टी को पूरी तरह निगला, लेकिन सुरक्षा के लिए उसका एक सिरा हाथ में पकड़े रखा। पहले के अनुभवों में जहाँ मुझे लोअर इसोफेगल स्फिंक्टर से प्रतिरोध महसूस होता था, इस बार वह बिना किसी रुकावट के आसानी से बाहर आ गई। मैंने सोचा कि इस बार स्फिंक्टर की पकड़ अलग क्यों थी। शरीर विज्ञान के अनुसार, स्फिंक्टर का टोन स्वाभाविक रूप से बदलता रहता है – यह शिथिलता, पाचन, जल की मात्रा और तंत्रिका तंत्र की अवस्था पर निर्भर करता है। योगिक दृष्टि से ग्रंथ बताते हैं कि यह प्रतिरोध शरीर का प्राकृतिक द्वार है, जो अशुद्धियों को रोके रखता है, और शुद्धि बढ़ने पर यह द्वार सहज रूप से ढीला हो जाता है।

मैंने अपने हाल के आहार और अवस्थाओं पर भी विचार किया। लगभग पंद्रह घंटे पहले मैंने एक पेय लिया था, जिसमें थोड़ी मात्रा में ग्रीन टी और कुछ जड़ी-बूटियाँ थीं। उसी रात मुझे तेज़ GERD हुआ और नींद में कुछ क्षणों के लिए घुटन जैसी स्थिति बनी। संभवतः कैफीन, कैटेचिन और खट्टे भोजन जैसे छाछ और सब्ज़ी ने मिलकर लोअर इसोफेगल स्फिंक्टर को शिथिल कर दिया और पेट के अम्ल को बढ़ा दिया। सिर को 20–25 प्रतिशत ऊँचा रखकर सोने के बावजूद भी यह पूरी तरह नहीं रुका, जिससे स्पष्ट हुआ कि कभी-कभी स्फिंक्टर का टोन, शेष अम्ल और बढ़ी हुई आंतरिक संवेदनशीलता, सभी मिलकर आसन के लाभ को भी पार कर जाते हैं।

इस अनुभव से मेरी यह धारणा और पुष्ट हुई कि प्राण को ऊपर उठाने वाले योगाभ्यास GERD के प्रति संवेदनशीलता बढ़ा सकते हैं। प्राणायाम, कुंडलिनी और अन्य प्राण-केंद्रित साधनाएँ स्वायत्त तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करती हैं – कभी वेगस टोन बढ़ता है, कभी सिम्पैथेटिक गतिविधि। इन परिवर्तनों से लोअर इसोफेगल स्फिंक्टर में अस्थायी शिथिलता आ सकती है।

साथ ही, योग से बढ़ी हुई आंतरिक जागरूकता के कारण सामान्य रिफ्लक्स भी अधिक स्पष्ट महसूस होने लगता है। इसलिए भोजन के तीन से साढ़े तीन घंटे बाद भी कभी-कभी रिफ्लक्स रुक नहीं पाता। यही कारण है कि योग में वमन और धौती जैसी शुद्धिकरण क्रियाएँ बताई गई हैं, जो पाचन तंत्र को साफ करती हैं और अप्रत्यक्ष रूप से स्फिंक्टर के कार्य को भी सहारा देती हैं।

मैंने स्पष्ट रूप से अनुभव किया है कि केवला कुंभक ध्यान GERD और गैस्ट्राइटिस दोनों में राहत देता है। जब मैं तनाव, ऊब या थकान की स्थिति में सोने जाता हूँ, तो अम्ल ऊपर उठ जाता है, गले और अन्ननली में जलन होती है और दाँतों तक असर पड़ता है। लेकिन जब मैं केवला कुंभक ध्यान करता हूँ, तो भीतर शीतलता और ताजगी आ जाती है। इसके बाद रात की नींद में अम्ल ऊपर नहीं उठता। यह साफ संकेत है कि गहरा ध्यान तनाव को कम करता है और आंतों की स्वाभाविक गति को ठीक करता है। ध्यान के बाद मुझे भूख भी अधिक लगती है, जिससे स्पष्ट होता है कि इस अवस्था में हल्का और शांत योग, तीव्र और झटकेदार ऊर्जा कार्य से बेहतर है।

GERD का मुख्य कारण लोअर इसोफेगल स्फिंक्टर का अस्थायी शिथिल होना (TLESRs) है, जो वेगस नर्व के माध्यम से होने वाली एक तंत्रिकीय प्रतिक्रिया है। जब पेट फैलता है या स्वायत्त तंत्रिका तंत्र में असंतुलन होता है, तब ये शिथिलताएँ होती हैं। केवल सिम्पैथेटिक प्रभुत्व सामान्यतः GERD नहीं करता, लेकिन वह पाचन को धीमा कर सकता है और संवेदनशीलता बढ़ा सकता है, जिससे लक्षण अधिक तीव्र लगते हैं। इसलिए समस्या किसी एक तंत्र की नहीं, बल्कि दोनों के बीच असंतुलन और तेज़ बदलाव की है। योग में क्योंकि जानबूझकर इन दोनों प्रणालियों के बीच खेल होता है, इसलिए प्राण-साधना के समय रिफ्लक्स अधिक महसूस हो सकता है। कभी यह केवल जागरूकता की वृद्धि होती है, और कभी अभ्यास स्वयं शारीरिक रूप से रिफ्लक्स को प्रेरित कर देता है।

मैंने इसके लिए कुछ विकल्प भी देखे। बिना कैफीन या डिकैफ ग्रीन टी में वही एंटीऑक्सिडेंट और कैटेचिन होते हैं, लेकिन वे तंत्रिका तंत्र को उत्तेजित नहीं करते और स्फिंक्टर को भी ढीला नहीं करते। ऐसे हर्बल या डिकैफ पेय योगिक शुद्धि के साथ अधिक अनुकूल लगते हैं।

अंत में मैंने वस्त्र धौती के लिए एक सुरक्षा नियम भी बनाया, विशेषकर उन दिनों के लिए जब रिफ्लक्स की संभावना अधिक होती है – अम्लीय या कैफीनयुक्त भोजन के 24 घंटे बाद ही धौती करना, पेट की स्थिति जाँचना, गॉज़ को अच्छी तरह गीला रखना, सीधे बैठना, शांत श्वास बनाए रखना, स्फिंक्टर की प्रतिक्रिया को महसूस करना और बाद में जलन या दर्द की निगरानी

करना। यह सावधानी, भोजन, आसन और प्राण-साधना के समय के प्रति जागरूकता के साथ मिलकर, योगिक शुद्धिकरण के लाभों को सुरक्षित रूप से बनाए रखती है और असुविधा या जोखिम को कम करती है।

ध्यान के माध्यम से उपचार: हृदय और कंठ चक्र की मेरी यात्रा

कुछ दिन पहले सामाजिक कारणों से मुझे गहरा भावनात्मक आघात लगा। मैंने कुछ अत्यधिक वेतन पाने वाले मज़दूरों से बहुत अपेक्षाएँ की थीं, सोच रहा था कि वे अच्छा और जिम्मेदार काम करेंगे, लेकिन उनका काम बच्चों के खेल जैसा निकला। यह निराशा मुझे भीतर तक हिला गई और मन भारी हो गया।

उस शाम जब मैं ध्यान के लिए बैठा, तो एक अद्भुत घटना घटी। मेरी श्वास स्वतः ही अनाहत चक्र – हृदय केंद्र – पर रुक गई। कोई प्रयास नहीं था, कोई विधि नहीं थी, कोई संकल्प नहीं था। श्वास बस वहीं ठहर गई, और उसी ठहराव के साथ अपार शांति और राहत प्रकट हो गई। जो भावनात्मक बोझ भीतर दबा था, वह मानो मौन में घुलकर समाप्त हो गया। हृदय हल्का, खुला और शांत हो गया – जैसे घाव भर गया हो।

अगले दिन कुछ लोगों के साथ तीखी बहस हो गई। शब्दों में तनाव था, मन में खिंचाव था, और ऊर्जा बिखर गई। शाम को मैं इतना थका हुआ था कि ध्यान नहीं कर पाया। फिर भी परिवार के लोगों से बातचीत और सहानुभूति से कुछ राहत मिली। यह राहत धीमी थी और अधूरी थी, पर फिर भी मन को थोड़ा संभाल गई। इससे मुझे यह समझ में आया कि बाहरी सहारा भी कभी-कभी ध्यान का हल्का विकल्प बन सकता है, लेकिन वह ध्यान जैसी गहराई नहीं देता।

अगली सुबह एक नया अनुभव हुआ। मैंने देखा कि मेरी श्वास स्वाभाविक रूप से विशुद्धि चक्र – कंठ केंद्र – में स्थिर हो गई थी। ध्यान में बैठते ही श्वास फिर से सहज रूप से रुक गई और गले के क्षेत्र में जमा हुआ तनाव तुरंत ढीला पड़ गया। बहस से बनी मानसिक और वाणीगत गाँठ बिना संघर्ष के खुल गई। इस अनुभव ने मुझे एक गहरी बात सिखाई – सांसारिक संघर्ष ध्यान के विरोधी नहीं होते। यदि उन्हें सजगता से संभाला जाए, तो वे ध्यान के सहायक भी बन सकते हैं।

जब मैंने इन अनुभवों पर मनन किया, तो भीतर का तंत्र स्पष्ट होने लगा।
निराशा और भावनात्मक चोट ने अनाहत चक्र को सक्रिय किया – जो प्रेम, विश्वास और भावनात्मक संवेदनशीलता का केंद्र है। ध्यान में श्वास वहीं ठहर गई, जिससे प्राण ठीक उसी स्थान पर बहा जहाँ उपचार की आवश्यकता थी। इसी कारण उपचार तत्काल हुआ।
अगले दिन की बहस बौद्धिक और वाणी से जुड़ी थी, इसलिए विशुद्धि चक्र सक्रिय हुआ। जब श्वास वहाँ स्थिर हुई, तो ऊर्जा स्वयं संतुलित हो गई और मन हल्का हो गया।

इससे मुझे यह भी समझ में आया कि बाहरी सहानुभूति केवल आंशिक उपचार देती है, जबकि ध्यान भीतर की गाँठ को जड़ से खोल देता है।

धीरे-धीरे एक स्पष्ट क्रम सामने आया:
घटना → चक्र सक्रिय → श्वास का संरेखण → चेतना द्वारा प्राण का प्रवाह → उपचार।

तनाव ध्यान को रोकता नहीं, बल्कि यह बताता है कि ऊर्जा कहाँ अटकी है। जीवन स्वयं ध्यान के लिए मार्गदर्शन देता है।
हर चक्र अलग प्रकार के तनाव से जुड़ा है –
मूलाधार सुरक्षा से,
स्वाधिष्ठान संबंधों से,
मणिपूर शक्ति से,
अनाहत प्रेम से,
विशुद्धि अभिव्यक्ति से,
आज्ञा निर्णय से,
और सहस्रार परम शांति से।

जब तनाव को प्रतिक्रिया के बजाय जागरूकता से देखा जाए, तो ध्यान केवल मन को शांत करने का साधन नहीं रहता, बल्कि एक सटीक उपचार यंत्र बन जाता है। तब ध्यान जीवन के साथ संघर्ष नहीं करता, बल्कि जीवन के साथ मिलकर काम करता है।

इन अनुभवों ने मुझे सिखाया कि भावनात्मक पीड़ा आध्यात्मिक मार्ग में बाधा नहीं है, बल्कि संकेत है। यह दिखाती है कि चेतना और प्राण को कहाँ जाना है। जब ध्यान को स्वाभाविक रूप से घटने दिया जाए, तो उपचार सहज, बुद्धिमान और पूर्ण होता है।

इस प्रकार सामान्य जीवन की घटनाएँ भी जागरण के साधन बन जाती हैं। हृदय खुलता है, कंठ शुद्ध होता है, मन शांत होता है – और यात्रा आगे बढ़ती है, पलायन से नहीं, बल्कि समन्वय और एकीकरण से।

आस्था, आत्माएँ और योग पर एक संध्या संवाद

कुछ दिन पहले, जल्दी रात्रि भोजन के बाद अपनी शाम की सैर करते हुए मैं एक परिचित की दुकान पर कुछ देर बैठने के लिए रुक गया। उसी दुकान के पास उसका पड़ोसी रहता है, जो एक गोसदन (गौशाला) चलाता है और पिछले कुछ महीनों से मेरे परिचय में है। हाल ही में उसका हाथ टूट गया था, जब गायों का झुंड अचानक फाटक की ओर दौड़ा और फाटक टूट गया, जिस पर वह सहारा लिए खड़ा था। मैं उससे सहानुभूति प्रकट करने और सहायता देने के लिए गया था, पर उस समय वह वहाँ नहीं था। कुछ महीने पहले ही उसके चौदह वर्षीय पुत्र की एक दुर्लभ बीमारी से मृत्यु हो गई थी।

मैंने इस व्यक्ति की आँखों में कई बार एक रहस्यमय, गहरे मिश्रित प्रकाश जैसा कुछ देखा था। इतने दुःख और कष्टों के बावजूद वह भगवान शिव का कट्टर भक्त है और हर वर्ष अपनी पूरी टीम के साथ मिलकर पहाड़ों में होने वाली महीने भर की मणिमहेश यात्रा के दौरान यात्रियों के लिए लंगर की व्यवस्था करता है।

दुकान पर बैठे-बैठे मैंने दुकानदार से कहा कि शायद उसका पड़ोसी किसी बुरे ग्रह प्रभाव या किसी नकारात्मक शक्ति के प्रभाव में है, और उसे किसी नज़दीकी शहर के योग गुरु के पास जाकर यह प्रभाव हटवाना चाहिए। यह सुनते ही दुकानदार ने योग की ऐसी किसी भी शक्ति को साफ़ नकार दिया और कहा कि योग से भूत-प्रेत या नकारात्मक शक्तियाँ नहीं हटतीं।

मैंने उससे कहा, "मैंने स्वयं ऐसे प्रभाव से बचाव किया है।"
उसने पूछा, "कैसे?"
मैंने उत्तर दिया, "जब भी वह शक्ति मेरे सपनों में आने की कोशिश करती है, मेरे गुरु वहाँ प्रकट होते हैं और उससे कहते हैं कि वह मुझे छोड़कर उनके पास जाए। मैं अपना ध्यान अपने गुरु पर लगा देता हूँ और उस आत्मा की शांति और मुक्ति की प्रार्थना करता हूँ। वह कोई दुष्ट आत्मा नहीं है, लेकिन बार-बार किसी अलौकिक अनुभव से गुजरना कौन चाहेगा?"

यह सुनकर उसका स्वर कुछ नरम हुआ।
फिर उसने पूछा, "तुम्हारे गुरु कौन हैं?"
मैंने कहा, "यह किसी को बताया नहीं जाता।"
उसने फिर पूछा, "लेकिन उनका कोई रूप तो होगा?"

मैंने कहा, "हाँ। कभी वे मेरे दादाजी के रूप में प्रकट होते हैं, कभी शिव के रूप में, और कभी नारायण के रूप में – परिस्थिति के अनुसार।"

यह सुनकर, और स्वयं मणिमहेश सेवा दल का सदस्य होने के कारण, वह ऐसे बोलने लगा जैसे उसे सब कुछ पता हो। उसने कहा, "शिव की पूजा नहीं की जा सकती। शिव महाकाल हैं। वे कर्म के अनुसार संहार करते हैं, रक्षा नहीं। शिव की पूजा नहीं होती, शिव बना जाता है। लाभ पाने के लिए शिव बनना पड़ता है।"

मैंने भीतर ही भीतर सोचा – जिसे हम अपना इष्ट मानते हैं, उसे पहले प्रेम, आदर और भक्ति के बिना कोई कैसे बन सकता है?

फिर उसने कहा, "केवल सत्गुरु ही बुरी आत्माओं से रक्षा कर सकता है, और कोई नहीं।"

फिर मुझे एक और विरोधाभास दिखाई दिया। वह पहले योग की शक्ति को नकार रहा था, और अब सत्गुरु की महिमा बता रहा था – जबकि सत्गुरु स्वयं योग और ध्यान के माध्यम से ही कार्य करता है।

यह छोटी-सी बातचीत मेरे लिए फिर एक सीख बन गई। मैंने महसूस किया कि खुला संवाद कितना आवश्यक है। ऐसे ही संवाद हमें सोचने पर मजबूर करते हैं, हमारी मान्यताओं को परखते हैं, और समझ को गहरा करते हैं। यही प्रक्रिया अंततः चेतना के विस्तार का मार्ग बनती है।

मेरा आंतरिक दशहरा

दशहरे की हार्दिक शुभकामनाएँ।
यह दिन हमें याद दिलाए कि जैसे भगवान राम ने रावण पर विजय प्राप्त की थी, वैसे ही हम भी अपने भीतर के रावणों–अहंकार, संशय और चंचलता–पर विजय पा सकते हैं और उन्हें चेतना के प्रकाश में विलीन कर सकते हैं। आप और आपके परिवार को आनंद, शक्ति और सत्य की विजय का आशीर्वाद मिले।

आज दशहरे के दिन मैं सुबह लगभग चार बजे उठा और ध्यान के लिए बैठ गया। श्वास तेज़ थी, मन अशांत था, लेकिन मैंने हस्तक्षेप नहीं किया। बस साक्षी बनकर उसे बहने दिया। कुछ समय बाद जब बैठना नीरस-सा लगने लगा, तो मैं पानी और हर्बल चाय पीने के लिए उठा। ताज़ा होकर फिर बैठा, पर स्थिरता अब भी नहीं आई। तब मैंने शुद्धिकरण क्रियाओं का सहारा लिया–जल नेति और गजकर्णी। जो पानी गले में चला गया था, उसे नाक के रास्ते वापस खींचकर साफ किया। कुछ छींकें आईं, फिर कपालभाति और अनुलोम-विलोम से शेष नमी को सुखाया। हल्की गर्दन झुकाने और कंधों की घुमावदार गति से जकड़न भी खुल गई।

इस तैयारी के बाद मैं फिर ध्यान में बैठा। इस बार मन तुरंत स्थिर हो गया। श्वास-रहित अवस्था गहरी होने लगी और मैं शुद्ध चेतना में विश्राम करने लगा–मानो एकार्णव के विशाल सागर में नारायण विराजमान हों। लगभग आधे घंटे तक यह गहराई बनी रही, जो आनंद से भरी थी। बाद में जब घरवालों ने शहर जाने के लिए तैयार होने को कहा, तो मैं उस गहराई से साक्षी भाव में लौट आया। श्वास बहुत सूक्ष्म हो गई, लगभग अनुपस्थित, और विचार एक-एक कर उठते और शुद्ध चेतना में विलीन होते चले गए–जैसे रावण के सिर जलकर राम के प्रकाश में लीन हो रहे हों।

ऐसा लगा जैसे मेरा दशहरा बाहरी उत्सव से पहले ही भीतर मनाया जा चुका हो। भीतर का रावण–चंचल विचार और सूक्ष्म अहंकार–जलकर भीतर के राम–शुद्ध चेतना और आनंद–में समर्पित हो गया। जब मैं उठा, तो स्वयं को संसारिक कर्तव्यों के लिए ताज़ा और तैयार पाया, फिर भी भीतर इस आंतरिक विजय की सुगंध बनी रही।

त्योहार केवल रीति-रिवाज़ और उत्सव नहीं होते। जब उन्हें भीतर की दृष्टि से देखा जाए, तो वे हमारे आंतरिक मार्ग की याद दिलाते हैं–उन मौन युद्धों की, जिन्हें हम स्वयं से लड़ते हैं, और उस

परिवर्तन की खुशी की, जो न केवल हमें बल्कि हमारे आसपास के लोगों को भी आशीर्वाद देती है।

कुछ दिनों में द्वार अलग तरह से खुलता है

कल मेरी योग साधना मुझे सहज ही श्वासरहित अवस्था में ले गई थी – उस गहन स्थिरता में जहाँ विचार घुल जाते हैं और चेतना स्वच्छ प्रकाश की तरह प्रकट होती है। आज मैंने वही सब कुछ क्रमबद्ध ढंग से दोहराने की कोशिश की – जल नेति से शुद्धि, गजकर्णी और कंठ की सफाई, कपालभाति, अनुलोम-विलोम, गर्दन के झुकाव, कंधों की घुमाव, यहाँ तक कि अतिरिक्त आसन जैसे भुजंगासन भी। लेकिन परिणाम अलग था। मैं केवल उस अवस्था तक पहुँच सका जहाँ श्वास ढीली और मंद हो जाती है, और विचार साक्षी भाव में विलीन होने लगते हैं, पर कल जैसी शुद्ध चेतना में प्रवेश नहीं हुआ।

इस अंतर ने मुझे सोचने पर मजबूर किया। शायद आज मुझे इतनी सारी क्रियाओं की आवश्यकता नहीं थी, या शायद धौती अधिक उपयुक्त होती, जिसे समय के अभाव में मैंने छोड़ दिया। ऐसा लगने लगा कि हर दिन शरीर को अलग प्रकार की तैयारी चाहिए। कुछ दिनों में नाक विशेष ध्यान माँगती है, कभी कंठ, और कभी पेट – विशेषकर जब अधिक बोलना हुआ हो या भारी, तीखा, असात्त्विक भोजन लिया गया हो।

धीरे-धीरे मैं यह सीख रहा हूँ कि योग किसी यांत्रिक दिनचर्या को दोहराने का नाम नहीं है, बल्कि उस दिन की स्थिति को सुनने का अभ्यास है। एक छोटा-सा शरीर निरीक्षण ही पर्याप्त होता है। अगर नाक भारी लगे, तो जल नेति या कपालभाति मार्ग साफ कर देती है। यदि कंठ में परत-सी लगे, तो गजकर्णी और जल उपचार कर देते हैं। यदि पेट सुस्त हो, तो अग्निसार या हल्का उदर पंप अधिक उपयोगी होता है। यदि कंधों में जकड़न हो, तो कुछ घुमाव या भुजंगासन ही काफी होता है।

शरीर के साथ-साथ मन की भी अपनी लय होती है। जिन दिनों मन दौड़ता रहता है, अनुलोम-विलोम या भ्रामरी शांति लाते हैं। जिन दिनों मन बोझिल लगता है, कपालभाति या सूर्यभेदी उसे जगाते हैं। कभी विचार इतने शांत हो जाते हैं कि साक्षी भाव प्रकट होता है, और कभी वे पूरी तरह गलकर शुद्ध चेतना में विलीन हो जाते हैं। दोनों अवस्थाओं का अपना महत्व है – दोनों ही मार्ग के चरण हैं।

एक और महत्वपूर्ण बात मुझे समझ में आई – अभ्यास को कैसे समाप्त किया जाए। किसी भी शुद्धिकरण या प्राणायाम के बाद शरीर-तंत्र ऊर्जा से भरा होता है। यदि मैं तुरंत उठ जाऊँ, तो भीतर बेचैनी बनी रहती है। लेकिन यदि पाँच मिनट शांत बैठकर केवल स्वाभाविक श्वास को बिना नियंत्रित किए देखता रहूँ, तो सब कुछ स्थिर हो जाता है। यह सरल श्वास-साक्षी अभ्यास ऊर्जा को भूमि देता है, हृदय और प्राण को सामान्य करता है, और साधना के लाभ को स्थिर कर देता है।

सीख बिल्कुल स्पष्ट है – हर दिन उसी अवस्था को पाने की कोशिश मत करो। शरीर और प्राण को मार्गदर्शन करने दो। कभी शुद्धि ही उपलब्धि होती है, कभी श्वासरहित मौन स्वयं उतर आता है। योग कोई एक स्थिर द्वार नहीं है, बल्कि अनेक द्वारों का मार्ग है – और हर सुबह उनमें से कोई नया द्वार खुल सकता है।

जब उनींदापन ध्यान बन गया

कुछ दिनों तक सांसारिक उलझनों में डूबे रहने के बाद–एक छोटे से भौतिक संपत्ति के काम में अत्यधिक महत्वाकांक्षा के साथ लगातार मेहनत करते हुए–मैंने देखा कि मेरी योग दिनचर्या बिगड़ने लगी। जो लय पहले मुझे सहज ही गहराई में ले जाती थी, वह डगमगा गई। ध्यान के बैठने कम हो गए, और ध्याना में आने वाली वह परिचित श्वासरहित स्थिरता प्रकट नहीं हुई।

जब वह सांसारिक काम अंततः पूरा हो गया, तो अगले दो-तीन दिन मैंने खोई हुई गति को वापस पाने की कोशिश की। सुबह आँख खुलते ही–चाहे जो भी समय हो–मैं बिस्तर से उठकर पहले ध्यान में बैठता, फिर योग करता, और दोनों को बारी-बारी से करता रहा। आज मैं लगभग साढ़े तीन बजे उठा। नेति के दोनों प्रकार किए, धौती भी की, पर फिर भी श्वासरहित ध्यान नहीं आया।

बाद में, दोपहर के भोजन के बाद, वज्रासन में बैठते हुए मुझे उस अवस्था की हल्की-सी झलक मिली। शाम को मैं लंबे समय तक बैठा–साढ़े चार से साढ़े पाँच बजे तक। उस समय श्वास रॉकेट जैसी तेज़ और उग्र थी, और साधारण साक्षी भाव या मन में सोऽहम के जप से भी शांत नहीं हो रही थी। फिर अचानक एक प्रकार की उनींदापन आने लगी–लेट जाने की तीव्र इच्छा। मैंने उसे रोका, और थोड़ी देर में शरीर इतना थक गया कि वह श्वास की गति के साथ नहीं चल पाया। तब श्वास स्वयं धीमी होने लगी और अंततः लगभग रुक गई, यद्यपि पहले जैसी पूर्ण नहीं थी। मैं इसे एक घंटे से अधिक नहीं पकड़ सका, लेकिन उसी क्षण मुझे एक नई समझ मिली–शायद गहरा ध्यान नींद जैसा ही होता है, बस चेतना के साथ।

यह एक खोज जैसा लगा। यदि मैं बैठे-बैठे प्रयास करता रहूँ और थकान व उनींदापन आ जाए, तो गहरा ध्यान स्वयं प्रकट हो जाता है। नींद और योग में इतनी समानता है कि कई लोग कह देते हैं कि मैं बस बैठकर सो रहा हूँ और योग का नाटक कर रहा हूँ।

इस बोध ने भीतर एक गहरी समझ खोली। जो मैंने अनुभव किया, वह प्राचीन योगिक संकेतों से पूरी तरह मेल खाता था। जब लंबे समय तक संसारिक गतिविधि में लगा रहता हूँ, तो रजस–महत्वाकांक्षा की चंचल ऊर्जा–प्राण को उद्वेलित कर देती है और मन बाहर की ओर झुक जाता है। इसी कारण योग में बाधा आई। योग सत्त्व पर आधारित है–संतुलन पर। यह गिरावट नहीं थी, केवल प्राण का पेंडुलम बाहर की ओर झूलकर वापस भीतर आने की प्रक्रिया थी।

जब मैं फिर बैठा, तो श्वास की वह रॉकेट जैसी गति उसी बाह्य ऊर्जा को साफ करने का तरीका थी। प्राण संसारिक तीव्रता के अवशेषों को निष्क्रिय कर रहा था। जब लंबे अंतराल के बाद साधना शुरू होती है, तो ऐसी तीव्र श्वास अक्सर आती है।

फिर थकान आई। शरीर विश्राम चाहता था। तभी मुझे समझ में आया कि यह उनींदापन बाधा नहीं, बल्कि द्वार है। जब शरीर थकता है, तो अहंकार का नियंत्रण ढीला पड़ जाता है। प्रयास गलने लगता है। श्वास और विचार के स्वचालित पैटर्न अपनी गति खो देते हैं। यदि इस समय चेतना बनी रहे और साधारण नींद में न फिसले, तो जो घटित होता है वह जाग्रत शांति होती है– नींद जैसा, पर चेतना से भरा हुआ।

योगिक भाषा में यह वह सीमा है जहाँ जाग्रत अवस्था (जाग्रत) से तुरीय की ओर संक्रमण शुरू होता है, एक नींद-जैसी शांति से होकर, जहाँ केवल चेतना शेष रहती है और शरीर व श्वास गहन विश्राम में चले जाते हैं। श्वासरहित समाधि प्रयास से नहीं आती, बल्कि प्रयास की पूर्ण थकान से आती है।

मुझे स्पष्ट हो गया कि जब प्रयत्न समाप्त होता है और चेतना केवल देखती रहती है, तब शरीर नींद-जैसे विश्राम में गिर सकता है, श्वास रुक सकती है, और केवल चेतना ही शेष रह जाती है। यही योगनिद्रा, ध्यान और तुरीय–तीनों का मार्ग है।

योगनिद्रा, श्वासरहित ध्यान और तुरीय–एक ही सूत्र

मैंने देखा कि योगनिद्रा, तुरीय और श्वासरहित ध्यान–तीनों उसी प्रक्रिया से प्राप्त होते हैं जिसे मैंने अनुभव किया। अंतर केवल गहराई और स्थायित्व का है।

योगनिद्रा तब होती है जब शरीर और इंद्रियाँ भीतर लौट जाती हैं, मन धीमा हो जाता है, विचार मिटने लगते हैं और हल्की उनींदापन आती है, पर चेतना हल्के रूप में जागी रहती है। श्वास हल्की हो जाती है या क्षणिक रूप से रुक जाती है। मुझे समझ में आया कि थकान और उनींदापन से आने वाला गहरा ध्यान वही सीमा है जहाँ योगनिद्रा शुरू होती है।

गहरा ध्यान या केवला कुंभक तब घटित होता है जब मन और प्रयास दोनों रुक जाते हैं। चेतना स्थिर और उज्ज्वल रहती है। क्योंकि मन की कंपन समाप्त हो जाती है, श्वास भी स्वाभाविक रूप से रुक जाती है। यहाँ श्वासरहित अवस्था नियंत्रण से नहीं, बल्कि मौन से आती है। समय और शरीर लुप्त हो जाते हैं; केवल प्रकाशमान स्थिरता रह जाती है।

और तुरीय—चौथी अवस्था—चेतना की चेतना है। यह जाग्रत, स्वप्न और गहरी नींद के नीचे की आधारभूमि है। जब मैं योगनिद्रा-जैसी स्थिरता में भी जागरूक बना रहता हूँ, तो चेतना स्वयं को पहचान लेती है। श्वासरहित होना गौण है; मुख्य चिन्ह है सभी अवस्थाओं में अविच्छिन्न जागरूकता।

योगनिद्रा मन को शांत करती है, ध्यान मन और श्वास दोनों को स्थिर करता है, और तुरीय उन सबके पीछे का आधार बनकर चमकता है। ये समय में एक के बाद एक नहीं आते, बल्कि गहराई में खुलते हैं। श्वासरहित ध्यान तुरीय को प्रकट करता है; तुरीय वही है जो तब शेष रहता है जब ध्यान करने का भाव भी मिट जाता है।

इसलिए संबंध सरल है:
योगनिद्रा = मन की शांति और शांत श्वास,
श्वासरहित ध्यान = मन और श्वास दोनों की पूर्ण स्थिरता,
तुरीय = वह आधार जो तब पहचाना जाता है जब स्थिरता स्वयं अपनी प्रकृति के रूप में दिखती है।
अर्थात तुरीय ही समाधि का लक्ष्य है, और समाधि उसे प्राप्त करने की प्रक्रिया। जब बार-बार समाधि से वह पृष्ठभूमि जागरूकता बनी रहने लगे, तो वही तुरीय है।

जब तुरीय दिखता है

एक बार जब तुरीय सच में देखा जाता है, तो कुछ अपरिवर्तनीय घटित होता है। वह कोई क्षणिक अवस्था नहीं, बल्कि हर अवस्था की पृष्ठभूमि चेतना है—जाग्रत, स्वप्न और गहरी नींद की भी। पहली बार यह एक अनुभव जैसा लगता है, लेकिन शीघ्र ही स्पष्ट हो जाता है कि यह कभी प्राप्त या खोया नहीं गया था—केवल प्रकट हुआ था।

सांसारिक गतिविधि लौट आने पर भी एक शांत पृष्ठभूमि चेतना बनी रहती है। शुरू में वह कभी दिखती है, कभी भूल जाती है, पर पूरी तरह मिटती नहीं, क्योंकि अलगाव का भ्रम टूट चुका होता है।

फिर ध्यान की भूमिका बदल जाती है। पहले ध्यान अभ्यास था—स्थिरता तक पहुँचने का प्रयास। बाद में ध्यान विश्राम बन जाता है—जो पहले से है, उसमें ठहरना। पहले मैं ध्यान करता था, अब ध्यान घटित होता है। प्रयास रुक जाता है; चेतना विचार, कर्म और श्वास सबमें फैल जाती है।

इसीलिए संत सहज समाधि की बात करते हैं–जहाँ तुरीय सभी क्रियाओं के बीच बना रहता है। ध्यान समाप्त नहीं होता; वह निरंतर बन जाता है। कुछ लोग फिर भी रोज़ बैठते हैं, प्राप्त करने के लिए नहीं, बल्कि इसलिए कि शरीर को उसी आसन में सामंजस्य मिलता है और प्राण और अधिक परिष्कृत होता है। यह आनंद है–जैसे संगीतज्ञ बजाता है, सीखने के लिए नहीं, बल्कि क्योंकि स्वर स्वयं आनंद है।

सार यह है:
ध्यान प्रयास के रूप में समाप्त होता है, चेतना के रूप में नहीं।
तुरीय का अभ्यास नहीं किया जाता; उसे पहचाना जाता है।
इसके बाद एकमात्र अभ्यास है–अविस्मरण–यह स्मरण कि जीवन की सभी गतियाँ उसी अचल चेतना में उठती और लीन होती हैं।

जब तुरीय स्पष्ट रूप से पहचाना जाता है, तो शांति ध्यान पर निर्भर नहीं रहती। मन चाहे तो मौन में बैठता है, क्योंकि वह स्वाभाविक है। चेतना अपने ही आनंद में विश्राम करती है, चाहे श्वास चल रही हो या स्थिर हो।

अब की समझ

पीछे मुड़कर देखने पर मैं अपने मार्ग का पूरा क्रम देख सकता हूँ:
• सांसारिक महत्वाकांक्षा ने प्राण का संतुलन बिगाड़ा।
• पुनः बैठने पर तेज़ श्वास ने उस बाह्य उछाल को शुद्ध किया।
• थकान ने अहंकार को समर्पण में ढकेल दिया।
• उनींदापन आया, पर उसके भीतर जागरूक रहने से स्थिरता का द्वार खुला।
• श्वास रुकी, और प्रयास से परे मौन प्रकट हुआ।
• उसी मौन से पहचान जागी–यह अचल चेतना हर अनुभव से पहले, दौरान और बाद में थी।
अभी यह अनुभव अस्थिर और क्षणिक है, इसलिए उसे स्थिर करने का प्रयास चलता रहता है।

और एक बार जो चेतना देखी जाती है, वह कभी पूरी तरह खोती नहीं।

नींद के ऊपर सवारी (Riding Over Sleep)

अगले ही दिन मेरी नींद रात 2:30 बजे टूट गई। मैं बिस्तर से उठा और ज़मीन पर आसन में बैठ गया। साँस थोड़ी बेचैन थी, लेकिन पिछले दिन जैसी तेज़ नहीं थी। एक घंटे तक प्रयास करने के बाद मैंने आधे घंटे योगासन किए, फिर स्पाइनल ब्रीदिंग की। उसके बाद फिर एक घंटे ध्यान करने की कोशिश की – पूरी सफलता नहीं मिली, लेकिन दबे हुए विचारों को साक्षी भाव से देखना चलता रहा और उसके साथ एक हल्का आनंद भी था। पर जिसने गहरी, बिना साँस वाली ध्यान अवस्था का स्वाद ले लिया हो, उसका मन इससे कैसे संतुष्ट हो सकता है?

इसके बाद मैंने एक कटोरी खिचड़ी, एक पका सेब और थोड़ा सा हर्बल चाय लिया। लेकिन चाय तेज़ होने के कारण थोड़ी अम्लता हो गई, इसलिए मैंने तय किया कि आगे इसे हल्का ही रखूँगा। फिर आधे घंटे के लिए बैठा, पर ज़्यादा सुधार नहीं हुआ। बाहर सुबह की रोशनी फैलने लगी थी। इसके बाद मैंने एक-एक करके सभी चक्रों पर ध्यान किया। इससे एक आनंदमयी योगिक दबाव उठा और लगा कि ध्यान पकने लगा है। गले में कुछ रुकावट थी, इसलिए जला नेति की। पूरे इस समय के दौरान कई बार प्राण ऊर्जा ऊपर की ओर तेज़ी से बहती महसूस हुई।

फिर अचानक गहरा ध्यान खुल गया – साँस बहुत हल्की हो गई और शुद्ध जागरूकता में आंशिक प्रवेश हुआ। एक-दो क्षणों के लिए साँस पूरी तरह रुक गई और मैं पूरी तरह शुद्ध चेतना में लीन हो गया, लेकिन यह बहुत क्षणिक था। अचानक एक आदमी का चेहरा दिखाई दिया, मानो वह किसी विकृत तांत्रिक साधना में लगा हो – चेहरा अजीब और श्राप देने जैसा था। वह कुछ बोल नहीं रहा था, फिर भी ऐसा लग रहा था जैसे वह मन ही मन बुरा बोल रहा हो। इस दृश्य ने मुझे ध्यान से गिरा दिया, चाहे मैंने स्वयं को प्रभावित न होने देने की कोशिश की।

इससे एक नई समझ पैदा हुई – ऐसे लोगों के प्रति, चाहे मन में भाव सकारात्मक ही क्यों न हो, मानसिक नियंत्रण या आदेशात्मक भाव नहीं रखना चाहिए। एक और बात साफ़ दिखी कि योग में थोड़े दिन की भी निष्क्रियता या संसार में उलझाव से प्राण नाड़ियों को दोबारा खोलना और उनमें ऊर्जा प्रवाहित करना थोड़ा कठिन हो जाता है। इसके अलावा, यौन ऊर्जा भी शरीर की सफ़ाई और पुनः भरने की प्रक्रिया में खर्च हो गई थी, जिससे ऊपर की ओर ऊर्जा की गति थोड़ी धीमी हो गई। सच में, सफल योग केवल एक तत्व पर नहीं, बल्कि कई अनुकूल कारणों के मेल पर निर्भर करता है। जैसे ईंटें मिलकर एक मज़बूत घर बनाती हैं, वैसे ही ये सभी तत्व मिलकर साधना की पूरी संरचना बनाते हैं। अब यहीं से औपचारिक योग ब्लॉग आगे बढ़ेगा।

मैं एक बात बार-बार देखता हूँ – कभी-कभी नींद और योग लगभग एक जैसे लगते हैं। जब मैं शांत बैठता हूँ, तो आसपास के लोग कहते हैं कि मैं ध्यान नहीं कर रहा, बस बैठकर ऊँघ रहा हूँ। उन्हें नहीं पता कि इस दोनों के बीच की रेखा कितनी पतली होती है।

जागरता में, जैसे माता या शिव के लिए पूरी रात भजन या कीर्तन में बैठना, वहाँ भी कुछ ऐसा ही होता है। आप नींद की लहर पर सवारी करते हैं, उसमें डूबते नहीं। शरीर थका होता है, लेकिन गिरता नहीं। संगीत, लय और भक्ति आपको जाग्रत रखते हैं। धीरे-धीरे जाग्रत और नींद की सीमा पिघलने लगती है। अगर उस किनारे पर भी जागरूकता बनी रहे, तो आप एक ऐसी अवस्था को छूते हैं जो निर्विकल्प जैसी लगती है – बिना विचार की जागरूकता, बस स्वयं को देखती हुई शांति। हालाँकि अगर थकान बहुत ज़्यादा हो, तो व्यक्ति ध्यान की मुद्रा में बैठे-बैठे सो भी सकता है। इसके अलावा, ऐसे कीर्तनों से कुछ दूरी पर ध्यान करना बेहतर होता है, क्योंकि तेज़ लाउडस्पीकर का स्वर बाधा बन सकता है। लेकिन आवाज़ हल्की-सी सुनाई देती रहे, तो उसके सात्त्विक कंपन उठाने और शुद्ध करने का काम करते हैं।

आध्यात्मिक रूप से यह बिल्कुल समझ में आता है। ईश्वर नाम का जप और समर्पण मन की सामान्य हलचल को शांत कर देता है। शरीर सुस्त होता है, पर चेतना उजली रहती है। आप जाग्रत और नींद के बीच झूलते रहते हैं – वही पतला द्वार जिसे शास्त्र तुरीय कहते हैं, जो जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति के पीछे है।

शारीरिक रूप से भी यह ठीक बैठता है। जप नसों को शांत करता है, साँस को धीमा करता है और आपको ढीला लेकिन जागरूक रखता है। नींद का दबाव बढ़ता है, लेकिन लय और भावना आपको पूरी तरह सोने नहीं देती। मस्तिष्क आराम करता है, पर जागरूकता पहरा देती रहती है – एक कोमल, चमकता संतुलन, जिसे विज्ञान हिप्नागोगिक अवस्था कहता है और योगी आनंद कहते हैं।

इसलिए हाँ, अगर भीतर की स्थिति सही हो तो जागरता वास्तव में उस द्वार को खोल सकती है। हर कोई इससे निर्विकल्प तक नहीं पहुँचता, पर रास्ता वहीं से जाता है।

माण्डूक्य उपनिषद इसे बहुत सुंदर ढंग से बताता है। वह चार अवस्थाओं की बात करता है – जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और चौथी, तुरीय। पहली तीन आती-जाती हैं, पर तुरीय अछूती रहती है। जब आप भजन के दौरान नींद की सीमा पर रहते हुए भी जागरूक रहते हैं, तो आप पहले से ही तुरीय को छू रहे होते हैं।

योग वसिष्ठ भी यही सत्य दोहराता है। वसिष्ठ राम से कहते हैं कि ज्ञानी व्यक्ति "जागते हुए भी सोता है और सोते हुए भी जागता है।" इसका अर्थ है कि योगी की जागरूकता कभी बंद नहीं होती, चाहे शरीर कुछ भी कर रहा हो। जो साधारण लोगों के लिए विश्राम है, वही योगी के लिए चेतन विश्राम बन जाता है। शरीर आधा सोया हो सकता है, लेकिन जागरूकता शांत रूप से चमकती रहती है। यही योग निद्रा या जाग्रत सुषुप्ति है – नींद के ऊपर सवारी करने की कला, उसमें डूबने की नहीं।

अब इसे कुंडलिनी-तंत्र की दृष्टि से देखें। जाग्रत और नींद के बीच की अवस्था – जाग्रत सुषुप्ति संधि – वही जगह है जहाँ प्राण भीतर की ओर मुड़ता है। सामान्यतः ऊर्जा इंद्रियों के माध्यम से बाहर बहती है। नींद में वह लौटती है, पर जागरूकता भी साथ ही डूब जाती है। अगर मंत्र, कीर्तन या शांत ध्यान से जागरूकता जागी रहे जबकि ऊर्जा भीतर की ओर मुड़ रही हो, तो आप नींद के सर्प को होश में पकड़ लेते हैं – यही कुंडलिनी का सुषुम्ना में प्रवेश है। यही किनारा असली तुरीय-द्वार है, चौथी अवस्था का प्रवेश मार्ग।

लंबे जप या ध्यान में साँस अपने आप संतुलित हो जाती है, भाव शांत हो जाते हैं, इड़ा और पिंगला – दोनों प्रवाह बराबर हो जाते हैं और सुषुम्ना खुल जाती है। जो ऊर्जा पहले विचारों को खिला रही थी, वही ऊपर उठने लगती है। जब जागरूकता शुद्ध और समर्पित होती है, तो वह मौन चेतना में विलीन हो जाती है – निर्विकल्प जैसी स्थिरता में। और अगर जागरूकता थोड़ा डगमगाए, तब भी आनंद या भक्ति की लहर उठती है, भले ही पूर्ण समाधि न हो।

तंत्र कहता है कि कुछ भी त्यागने योग्य नहीं है, नींद भी नहीं। "जो बाँधता है, वही सही दृष्टि से मुक्ति दे सकता है।" यहाँ तक कि उनींदापन भी सहायक बन सकता है अगर आप उसे होश से मिलें। उस किनारे पर मूलाधार की ऊर्जा पिघलकर ऊपर उठती है, आज्ञा और सहस्रार प्रकाशमान होते हैं। थका हुआ शरीर और जाग्रत चेतना – यह सहज समाधि की सबसे उपजाऊ भूमि है। इसी कारण कई संत कठोर तप से नहीं, बल्कि संगीत, प्रेम और समर्पण से जागे – उनकी प्राण ऊर्जा कोमलता से, सहजता से ऊपर उठी।

अगर आप उस क्षण को देखना सीख लें जब जागना नींद में बदलता है और मंत्र या भक्ति के साथ जागरूक रहें, तो वही छोटा-सा मार्ग राजमार्ग बन जाता है – सीधे तुरीय की ओर ले जाने वाला। न कुछ ज़ोर लगाना है, न कुछ करना है, बस बेहोश नहीं होना है।

जो ऊर्जा आपको नींद में खींचती है, वही जब जागरूकता से मिलती है, तो आपको समाधि में उठा देती है।

यह सब एक साधारण अनुभव से शुरू हुआ कि योग और नींद एक जैसे लगते हैं। पर उस साधारण समानता के पीछे एक गहरा रहस्य छिपा है – दोनों एक ही द्वार को छूते हैं। जागरता या भक्ति की जागी हुई अवस्था में नींद शत्रु नहीं रहती। वह सवारी बन जाती है – जो आपको जाग्रत और स्वप्न के पार उस उजले मौन तक पहुँचा देती है, जहाँ केवल चेतना ही शेष रहती है।

दीवाली सप्ताह: मंदिर अनुभवों से मिले एक योगी के व्यावहारिक बोध

इस दीवाली सप्ताह, एक लंबी यात्रा के बाद मैं अपने पैतृक घर पहुँचा और कई दिनों तक वहीं रुका। यह समय बहुत आनंदमय था – परिवार, रिश्तेदारों और मित्रों के साथ फिर से मिलना, दीपों के पर्व को पूरे उत्साह से मनाना। लेकिन बाहरी खुशी के साथ-साथ, भीतर कई नए और व्यावहारिक योगिक अनुभव भी अपने आप खुलते चले गए।

मैं त्योहार की जीवंत धारा में इतना डूबा हुआ था – लोगों से मिलना, यात्रा करना, परिवार की मदद करना और दीवाली की भावना को जीना – कि उस समय इन अनुभवों को लिख नहीं पाया। लेकिन उन्हीं व्यस्त दिनों के बीच, चलते-फिरते मुझे ऐसे तीखे बोध मिले, जो कोई पुस्तक या उपदेश नहीं दे सकता। ये अनुभव बहुत साधारण परिस्थितियों में आए – विशेष रूप से तब, जब परिवार खरीदारी में व्यस्त होता और मुझे शहर के मंदिरों में कुछ अकेले क्षण मिल जाते।

पहला दिन - दुर्गा-भैरव मंदिर: ध्यान का द्वैध आधार
पहले दिन, परिवार को शहर के एक शॉपिंग कॉम्प्लेक्स में छोड़ने के बाद मैं सीधे दुर्गा मंदिर गया। वहाँ माँ दुर्गा की विशाल और शक्तिशाली प्रतिमा के सामने मैंने पद्मासन लगाया। आँखें बंद करते ही गहरी शांति उतर आई। थोड़ी ही देर में श्वास सहज हो गई – लगभग अनुपस्थित – और मैं स्वाभाविक केवळ कुंभक, यानी बिना साँस का ध्यान, में प्रवेश कर गया।

बीच-बीच में आँखें खोलकर मैं माँ दुर्गा की प्रतिमा को देखता। उनके शांत मुख को एक बार देखने मात्र से ध्यान फिर गहरा हो जाता, जैसे बाहरी रूप भीतर के रूप को स्थिर कर रहा हो। आँखें बंद करने के बाद भी वह छवि मन के पर्दे पर जीवित बनी रही – कल्पना की तरह नहीं, बल्कि एक जीवंत कंपन की तरह।

दुर्गा की प्रतिमा के सामने भैरव की एक छोटी मूर्ति थी। जब ध्यान थोड़ा थकता या मन तटस्थ हो जाता, तो मैं भैरव की ओर दृष्टि कर देता। अजीब बात यह थी कि उनकी दृष्टि और ऊर्जा एक अलग ही ध्रुव से शांति को फिर जगा देती – तीक्ष्ण, स्थिर और धरातल से जोड़ने वाली। इस तरह एक सुंदर लय बन गई: जब दुर्गा की करुणा संतृप्त लगने लगती, तो भैरव की उग्र शांति की ओर जाता; और जब वह भी स्थिर हो जाती, तो फिर दुर्गा की ओर लौट आता।

यह शक्ति और शिव, स्त्री और पुरुष ऊर्जा का जीवंत संतुलन था – अर्धनारीश्वर तत्व का साक्षात अनुभव। शायद इसी कारण कई मंदिरों में दुर्गा और भैरव की प्रतिमाएँ साथ रखी जाती हैं। साधारण भक्त के लिए यह रक्षा और आशीर्वाद का प्रतीक है, लेकिन योगी के लिए यह सीधा

ऊर्जा-साधन बन जाता है – ध्यान को सँभालने और गहरा करने का जीवित यंत्र। सामान्य मन प्रतिमा को वस्तु समझता है, पर योगी की चेतना उसे चेतना का दर्पण मानती है। मुझे यह स्पष्ट हो गया कि प्रतिमाएँ केवल प्रतीक नहीं, बल्कि ध्यान के वैज्ञानिक उपकरण हैं। सच्चे साधक के लिए इसका लाभ तुरंत मिलता है – मन उसी क्षण स्थिर हो जाता है, जैसे ही वह जीवित छवि से जुड़ता है। यह विश्वास नहीं, प्रत्यक्ष प्रमाण है।

शाम - शूलिनी माता की बहन मंदिर: मौन पिंडी और गहरी श्वासरहित शांति
उसी दिन शाम को, जब परिवार फिर से खरीदारी के लिए गया, मैं शूलिनी माता की बहन मंदिर पहुँचा। वातावरण सुबह वाले मंदिर जैसा ही सात्त्विक था – लोगों की हल्की आवाजाही, कभी-कभी घंटी की ध्वनि, दूर से आते मंत्रोच्चार, अगरबत्ती की सुगंध, कतार में जलते दीप, और बीच-बीच में पुजारी के शंख की गूँज। सब कुछ चेतना को भीतर खींचने के लिए जैसे पूरी तरह सधा हुआ था।

मुख्य देवी पूर्ण मानव रूप में नहीं थीं, बल्कि एक साधारण पत्थर की पिंडी थीं – देवी का प्रतीक। उस पर चाँदी की आँखें जड़ी थीं, बीच में हल्का-सा नाक का निशान। इतनी सरल आकृति होने के बावजूद, या शायद उसी कारण, उसमें अपार शक्ति का अनुभव हो रहा था। जैसे ही मैं उसके सामने बैठा, केवळ कुंभक फिर अपने आप प्रकट हो गया – सहज, स्वतःस्फूर्त और लंबा। मैं वज्रासन में पैंतालीस मिनट से एक घंटे तक बैठा रहा। पैर सुन्न हो गए, लेकिन शरीर हल्का था, पीड़ा नहीं थी। चेतना केंद्रित रही, श्वास न्यूनतम, मन पूरी तरह उस जीवित कंपन में डूबा रहा। उस शाम मैंने सीखा कि ईश्वर से जुड़ने के लिए मूर्ति का जटिल होना ज़रूरी नहीं। प्रतीकात्मक रूप भी, अगर मौन में देखा जाए, तो समाधि का पूर्ण द्वार बन सकता है। रूप नहीं, मन की अवस्था मुख्य है।

दूसरा दिन - शनि मंदिर और सरस्वती चित्र: स्वतः प्राणायाम का उदय
अगले दिन, रिश्तेदारों के घर जाते समय, परिवार फिर खरीदारी के लिए रुका। मैंने उन्हें उतारकर गाड़ी पार्क की और एक नए मंदिर की तलाश में निकल पड़ा – ताकि ध्यान में नवीनता बनी रहे और गहराई भी। तब मुझे समझ आया कि साधक के लिए जितने अधिक मंदिर हों, उतना अच्छा है। रोज़ अलग मंदिर जाकर वही साधना दोहराई जा सकती है। शायद इसी कारण तीर्थस्थानों में इतने मंदिर होते हैं। लोग पूछते हैं – इतने क्यों? एक ही क्यों नहीं? लेकिन जैसे मिठाइयाँ कई प्रकार की होती हैं, वैसे ही लोगों की रुचियाँ भी अलग-अलग होती हैं।

मुझे पास ही एक शनि मंदिर मिला। मुख्य गर्भगृह बंद था, लेकिन बाहर की दीवार पर माँ सरस्वती का एक चित्र था। मैं ठंडी संगमरमर की ज़मीन पर बैठ गया और उस चित्र को ध्यान

का आधार बना लिया। जैसे-जैसे एकाग्रता गहरी हुई, एक अद्भुत घटना हुई – श्वास अपने आप लयबद्ध होने लगी। न ज़ोर, न अभ्यास, बस स्वतः। हर श्वास भीतर जाती, पता भी नहीं चलता; हर श्वास बाहर आती तो हल्की-सी "घर्र" जैसी ध्वनि होती, बिल्कुल सूक्ष्म भ्रामरी की तरह, लेकिन पूरी तरह स्वाभाविक। जागरूकता स्थिर थी और यह श्वास-लय अपने आप चलती रही। तब मुझे समझ आया कि असली प्राणायाम किया नहीं जाता, वह होता है।

शास्त्रों में अनेक प्रकार के प्राणायाम बताए गए हैं, पर उनका सार अक्सर गलत समझा जाता है। कुंडलिनी योगी अंततः जान लेता है कि ये सब प्राणायाम जागरण के लक्षण हैं, तकनीकें नहीं। जब ऊर्जा नाड़ियों में स्वाभाविक रूप से बहने लगती है, तो प्राण स्वयं श्वास को ढाल लेता है। शास्त्रों में वर्णित अवस्थाओं की नकल करने से केवल बाहरी अनुभव मिलते हैं, भीतर का जागरण नहीं। इससे साधक को झूठा संतोष भी हो सकता है, मानो उसने सब कुछ पा लिया हो, जबकि असली परिवर्तन अभी दूर होता है। इसलिए समझना चाहिए कि शास्त्रों का प्राणायाम वही है जो गहरे ध्यान में अपने आप घटित हो, न कि केवल सांस का व्यायाम। फिर भी ये बाहरी अभ्यास नकारात्मक नहीं हैं; शायद वे धीरे-धीरे ध्यान की ओर ले जाते हैं या शरीर को तैयार करते हैं, ताकि जब वास्तविक प्राणायाम प्रकट हो, तो वह चौंकाए नहीं।

सार बोध
इन सभी मंदिर अनुभवों से एक बात स्पष्ट हुई – प्रतिमाएँ, चित्र और प्रतीक केवल बाहरी सहारे नहीं, बल्कि चेतना के जीवित केंद्र हैं। दुर्गा-भैरव जैसी स्त्री और पुरुष ऊर्जा बारी-बारी से मन को संतुलित करती हैं। देवी का रूप चाहे मानवीय हो या अमूर्त, वह गौण है; मुख्य है वह मौन जो वह जगाता है। सच्चा प्राणायाम, सच्ची समाधि की तरह, भीतर की शांति में अपने आप घटता है।

दीवाली के ये दिन मुझे पारिवारिक आनंद के साथ-साथ आत्मिक परिष्कार भी दे गए। मैं गहरे कृतज्ञ भाव के साथ लौटा – उस दिव्य उपस्थिति के लिए जो साधारण प्रतिमाओं में, मौन में, श्वासरहित स्थिरता में, और दैनिक जीवन की सामान्य परिस्थितियों में भी कार्य करती रहती है। इस प्रकार, दीपों का पर्व सचमुच भीतर के प्रकाश का पर्व बन गया।

जब श्वास विलीन हो जाए: गहरे ध्यान, प्राण-गति और मौन जागरण का प्रत्यक्ष अनुभव

कभी-कभी मुझे मन ही मन एक हल्का पश्चाताप होता है कि मैंने सांस-रहित ध्यान को छोटी-छोटी सांसारिक वजहों से तोड़ दिया – जैसे भोजन करना। कल शाम, कई दिनों बाद, मैं पूर्ण मौन में अकेला बैठा था, जैसे किसी वन-आश्रम में होऊँ। पहले एक घंटे तक मेरी साँस अनियमित रही, कभी-कभी वह कपालभाति जैसी लगती थी। ऐसा महसूस हो रहा था मानो प्राण स्वयं को समायोजित कर रहे हों, श्वास-रहित अवस्था की तैयारी कर रहे हों। इस तैयारी के चरण को मैंने दो-तीन बार तोड़ दिया – कभी खड़ा होकर, कभी आसन बदलकर, कभी गर्दन की हल्की हरकत करके। एक बार तो मैं रसोई तक चला गया यह देखने कि खाना आया या नहीं। जब टिफिन वाले ने फोन किया कि उसकी स्कूटी खराब हो गई है, तो मैंने उसे चिंता न करने को कहा – और अचानक मुझे गहरी कृतज्ञता हुई, क्योंकि इस विलंब ने मुझे ध्यान के लिए और समय दे दिया था।

गहराती हुई शांति

मुझे लगा कि ध्यान में उतरने में कठिनाई शायद पद्मासन के कारण हो रही है, इसलिए मैंने वज्रासन अपना लिया। आश्चर्य की बात है कि पंद्रह मिनट के भीतर ही साँस अपने आप शांत और नियमित होने लगी और ध्यान गहरा होने लगा। क्योंकि अवस्था अभी नाज़ुक थी, मैं बहुत सतर्क बना रहा – जानता था कि ज़रा-सी हरकत या जानबूझकर कफ निगलना भी इसे तोड़ सकता है। जैसे-जैसे मैंने उसे गहराने दिया, मेरे पैर धीरे-धीरे सुन्न होने लगे। मैंने धैर्य से सहन किया और फिर बहुत सावधानी से सुखासन में आ गया, जागरूकता को स्थिर रखते हुए और शरीर की गति को न्यूनतम रखते हुए। रोचक बात यह थी कि जैसे ही पैरों में रक्त का प्रवाह लौटा, ध्यान और भी गहरा हो गया।

थोड़ी देर बाद गर्दन में अकड़न आने लगी। मैंने बहुत धीरे-धीरे बाईं ओर, दाईं ओर और फिर बीच की स्थिति में गर्दन को रखा, हर स्थिति में कुछ समय ठहरते हुए, ध्यान के मार्गदर्शन के अनुसार, बिना जागरूकता खोए। यह छोटी-सी गति भी ध्यान को और स्थिर कर गई।

प्राण की गति

ऐसा लग रहा था जैसे बहुत सूक्ष्म श्वास-धाराएँ अलग-अलग चक्रों में बह रही हों – कभी आज्ञा के पीछे, कभी विशुद्धि, कभी अनाहत में। बाद में सिद्धासन में बैठने पर स्वाधिष्ठान और मूलाधार में भी हल्की गतिविधि महसूस हुई, हालांकि बहुत सूक्ष्म रूप में। नाभि चक्र में ध्यान स्थिर करना कठिन था, पर वहाँ भी एक हल्का संतुलन महसूस हुआ। दिलचस्प बात यह थी कि रात

को भोजन के बाद जब मैंने ध्यान करने की कोशिश की, तब ऊर्जा अधिक नाभि चक्र पर केंद्रित लग रही थी।

ऐसा लग रहा था मानो कुछ चक्रों पर आनंदमयी लेकिन हल्की थकान-सी उत्पन्न हो रही हो, जिन्हें ध्यान की आवश्यकता थी। जब मैंने उस अनुभूति पर श्वास के साथ ध्यान केंद्रित किया, तो श्वास और चेतना दोनों अपने आप वहीं मिलते चले गए। श्वास के भीतर जाते समय, जब ऊर्जा उस चक्र से ऊपर उठती, उसी क्षण मेरी चेतना नीचे उस पर टिक जाती – जैसे प्राण (ऊर्ध्वगामी शक्ति) और अपान (अधोगामी शक्ति) का मिलन हो रहा हो। मुझे लगा कि यही वह अवस्था है जिसे प्राचीन ग्रंथ गहरे ध्यान में प्राण-अपान के संयोग के रूप में कहते हैं।

जब रसोई से टिफिन वाले की आवाज़ आई, मैंने उसे बिना देखे ही उत्तर दे दिया – शांत, सीधे, बिना किसी बाधा के। मन में बहुत हल्की गतिविधि थी, लेकिन वह स्थिर थी, अराजक नहीं – जैसे विचार धीमी गति में चल रहे हों और जल्दी ही विलीन हो जाते हों, कभी सीधे, तो कभी दो-तीन सूक्ष्म विचारों में बदलकर, जो अक्सर ध्यान की छवि या गुरु रूप से जुड़े होते थे।

भीतर का मौन महासागर

मैंने मन में "एकार्णव" का जप शुरू किया, उस अंतहीन, तरंग-रहित ब्रह्मांडीय महासागर की भावना से जुड़ते हुए। मंत्र का कंपन जीवित और अर्थपूर्ण लग रहा था। बाद में, जब सुखासन में थकान आई और ऊर्जा को नीचे के चक्रों में स्थिर करने के लिए मैंने फिर सिद्धासन लिया, तो कुछ समय बाद वहाँ भी हल्की थकान आ गई। भोजन का बुलावा मुझे ध्यान समाप्त करने के लिए आकर्षित करने लगा। अंततः मैं उठा, पहले से ही स्थिर और संतुलित, बिना सांसारिक संतुलन खोए।

एक सूक्ष्म पश्चाताप मन में उठा – मैंने बस आसन क्यों नहीं बदला और ऊर्जा को फिर ऊपर क्यों नहीं उठाया? ध्यान को पूरी तरह समाप्त क्यों किया? गहरे ध्यान के कारण भूख पहले ही कम हो चुकी थी, मैं और देर तक बैठ सकता था। लेकिन फिर मैंने स्वीकार कर लिया कि शायद ऊर्जा पहले ही पर्याप्त रूप से व्यय हो चुकी थी। भोजन हल्का था, बिना विशेष भूख के – पहले की तरह नहीं, जब अधपके ध्यान के बाद तीव्र भूख लगती थी। ऐसा लग रहा था मानो पाचन की ऊर्जा ध्यान में ही खप गई हो।

रोचक यह था कि आमतौर पर मुझे भोजन के बाद ध्यान में प्रवेश अधिक आसान लगता है, लेकिन इस बार खाली पेट ध्यान अधिक सच्चा और सहज था। भोजन लेने से ऊर्जा ज़बरदस्ती नीचे जाती है और श्वास तथा चेतना को कृत्रिम रूप से शांत कर देती है। रात के खाने के बाद

मैं फिर उस अवस्था में प्रवेश नहीं कर सका, शायद इसलिए कि संचित योग-शक्ति पहले ही अपना कार्य कर चुकी थी।

छोटे और लंबे ध्यान का संतुलन

कई योगी कहते हैं कि छोटे लेकिन नियमित ध्यान, लंबे और दुर्लभ ध्यान से बेहतर होते हैं। फिर भी कभी-कभी लंबे ध्यान, अगर रोज़ के छोटे ध्यान से समर्थित हों, तो उनका अपना अलग महत्व होता है। इस सत्र ने मुझे फिर याद दिलाया कि संतुलन ही कुंजी है – न शरीर की ज़रूरतों का दमन, न उनका अति-पोषण।

उस रात मुझे हल्के-से स्वप्न भी आए – जैसे मैं किसी सूक्ष्म प्राणियों या आत्माओं से बात कर रहा हूँ। वे स्पष्ट नहीं थे, अधिक याद भी नहीं रहे, पर शांत और अर्थपूर्ण थे।

चिंतन

पीछे मुड़कर देखने पर कुछ कोमल सत्य स्पष्ट हुए: ध्यान वास्तव में कभी टूटता नहीं, केवल रूप बदलता है। शरीर की ज़रूरतें बाधा नहीं, बल्कि आध्यात्मिक लय का हिस्सा हैं। पश्चाताप आसक्ति और अहं से पैदा होता है, कृतज्ञता उसे घोल देती है। प्राण की गति चक्रों में स्वयं निर्देशित होती है, उसे ज़बरदस्ती नहीं किया जा सकता। और शांति-भरी भूख या सूक्ष्म स्वप्न जैसे बाद के प्रभाव भीतर के संतुलन के स्वाभाविक संकेत हैं।

एक सरल स्मरण भीतर से उठा:
“जो मौन में प्रकट हुआ है, उसे गति में भी फैलने दो।”
फिर हर क्रिया – भोजन करना हो या चलना – उसी ध्यान का विस्तार बन जाती है।

गुरु पर्व की कृपा और ध्यान में गहरा अवरोह

आज गुरु पर्व है – एक ऐसा दिन जो सूक्ष्म कृपा से भीगा हुआ है। शायद इसी कारण ध्यान इतनी सहजता और गहराई से उतरा। सच में, गुरु तत्व सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान है, जब बाहरी मार्गदर्शन शांत होता है, तब वह भीतर से स्वयं मार्ग दिखाता है।

मैं सुबह लगभग 4:30 बजे उठा – शांत, खुला और ग्रहणशील। सहज रूप से लगभग बीस मिनट तक गहरी स्पाइनल क्रिया श्वास शुरू हो गई। उसके बाद मैंने कुछ ब्लॉग पढ़े – शायद उन शब्दों ने चेतना को और ऊँचा सुर दे दिया। फिर मैंने चक्र ध्यान शुरू किया, सहस्रार से मूलाधार तक, ऊपर-नीचे चेतना को घुमाते हुए लगभग बीस मिनट तक। प्राण की गति ने ठीक वैसा ही योगिक दबाव बनाया जैसा ध्यान से पहले होना चाहिए – और उसी तैयारी से ध्यान अपने आप शुरू हो गया।

पहले मैं पद्मासन में बैठा, लेकिन वह केवल तैयारी की अवस्था ही रही। फिर मैंने वज्रासन बदला – और परिवर्तन तुरंत हुआ। गहरा ध्यान अपने आप उतर आया। शायद वज्रासन वास्तव में मुझे सबसे अधिक अनुकूल है। भीतर से हँसी आई – "तो मेरा नाम प्रेमयोगी वज्र होना चाहिए।"

इसके बाद लगातार डेढ़ घंटे तक बिना साँस का ध्यान चलता रहा।

शुरुआत में ऊर्जा ऊपर के चक्रों में अधिक थी। भीतर की श्वास लगभग महसूस ही नहीं हो रही थी, और बाहर की श्वास भी बहुत हल्की – जैसे प्रकृति स्वयं संतुलन के लिए ऊर्जा को नीचे खींच रही हो। धीरे-धीरे प्राण विशुद्धि और अनाहत से होकर नीचे उतरने लगा, हालाँकि अलग-अलग स्पष्ट नहीं था। नीचे के भागों में सूक्ष्म स्पंदन की अनुभूति बढ़ने लगी – यह हवा की साँस नहीं थी, बल्कि ऊर्जा की साँस थी।

एक महत्वपूर्ण समझ स्पष्ट हुई – स्थिरता को कभी ज़बरदस्ती मत पकड़ो। शरीर के सूक्ष्म हिलने-डुलने को तनाव छोड़ने दो। जैसे ही मैंने प्रयास छोड़ा, श्वास और भी कोमल हो गई, और आनंद गहरा हो गया।

गर्दन पर काफी दबाव था, सिर का भार उसे सँभालना पड़ रहा था। हल्का-सा बाईं ओर झुकाने से प्रवाह आसान हो गया, फिर ज़रूरत अनुसार बीच या दाईं ओर लौट आया – यह शरीर और चेतना के बीच एक कोमल, बुद्धिमान सहयोग था।

कुछ समय बाद वज्रासन में अंग सुन्न होने लगे, तो मैंने बहुत धीरे-धीरे सुखासन अपना लिया। ध्यान टूटने के बजाय और गहरा हो गया। कभी सिर थोड़ा झुका, कभी सीधा, कभी थोड़ा ऊपर की ओर। कभी पीठ पूरी सीधी, कभी थोड़ी ढीली। ये सब सहज बदलाव ऐसे थे जैसे कोई संगीतकार सुर को ठीक कर रहा हो।

एकार्णव ध्यान के लिए, सिर को हल्का झुकाकर, आँखें बंद कर आज्ञा चक्र की ओर भीतर देखने पर अवस्था सबसे गहरी बनी।

जब सुखासन में थकान आई, तो मैं सिद्धासन में चला गया। यहाँ आनंद फिर बढ़ गया – ऊर्जा नीचे स्थिर और भरी हुई हो गई। एक टखना स्वाधिष्ठान को और दूसरा मूलाधार को दबा रहा था, जिससे एक सुंदर परिपथ बन गया और ऊर्जा को वहीं केंद्रित करने के लिए संवेदनशील बिंदु मिल गए। सूक्ष्म कक्षीय प्रवाह अपने आप सक्रिय हो गया, ऊर्जा शांति से घूमने लगी।

बाद में मैंने प्रयोग के तौर पर ऊर्जा को फिर आज्ञा चक्र तक उठाने की कोशिश की, लेकिन वह तनावपूर्ण लगा। ऊर्जा नीचे ही रहना चाहती थी, मौन में अपना काम कर रही थी। इसलिए मैंने उसे वैसा ही रहने दिया और एकार्णव ध्यान जारी रखा। वास्तव में, लंबे समय तक एकार्णव ध्यान करने से ऊर्जा अपने आप धीरे-धीरे ऊपर उठती ही है – सीधे छेड़छाड़ करने की ज़रूरत नहीं।

हालाँकि नीचे के चक्रों में ध्यान अब पारगमन से ज़्यादा साक्षी भाव वाला था – निर्विकल्प नहीं, बल्कि एक सूक्ष्म शुद्धिकरण। भीतर के छिपे भावनात्मक संस्कार हल्की-सी यादों के रूप में उभरने लगे – कोमल, भावपूर्ण – और फिर अपने आप घुलने लगे। यह आत्मा का भीतर से उपचार जैसा लग रहा था।

जब फोन आने लगे और स्नान का समय पास आया, तो मैं धीरे-धीरे उठा। इस बार किसी पश्चाताप के साथ नहीं, बल्कि गहरी तृप्ति और पूर्णता के साथ।

शायद यह हाल के दिनों में बैठे हुए ध्यान और काम करते हुए ध्यान को जोड़ने का फल था।
एक सत्य बहुत साफ़ दिखा –
जब ध्यान सांसारिक उलझनों के बाद किया जाता है, तो तैयारी लंबी होती है।
जब ध्यान नियमित हो, बिना अधूरी इच्छाओं के, तो वह तुरंत उतर जाता है – जैसे पहले से शुद्ध ईंधन से भरा रॉकेट।

आज का अनुभव केवल समय या आसन का नहीं था। यह कृपा में सहज अवतरण था – एक स्मरण कि गुरु तत्व भीतर ही जीवित है, जो श्वास से स्थिरता तक, प्रयास से समर्पण तक मार्ग दिखाता है।

इसके अलावा, स्नान के बाद मैंने दिन के अगले ध्यान सत्र के लिए भीतर की ऊर्जा को पुनः संतुलित करने हेतु सभी प्रमुख आसनों का अभ्यास किया। सिर में अधिक दबाव न बने, इसके लिए मैंने हाथों और पैरों को – विशेष रूप से पैरों के आगे वाले हिस्से को – थोड़ा बाहर और नीचे की ओर मोड़ा, जैसे हर आसन में पंजों से धरती को दबा रहा हूँ। इस छोटे से परिवर्तन का बहुत सुंदर प्रभाव हुआ। इससे ऊर्जा नीचे की ओर बहने लगी और मैं अच्छी तरह ग्राउंडेड रहा – सिर में भारीपन या अतिरिक्त दबाव नहीं बना।

कुंडलिनी और अष्ट वसु: दिव्य शक्तियों का गुप्त अवतरण

जब महाभारत को योग की दृष्टि से पढ़ा जाए, तो हर कथा भीतर की यात्रा का दर्पण बन जाती है। गंगा और उसके आठ पुत्रों – वसुओं – की कथा केवल शाप और करुणा की कहानी नहीं रहती, बल्कि कुंडलिनी शक्ति के उस गुप्त प्रवाह को प्रकट करती है, जो स्वर्ग और पृथ्वी, चेतना और पदार्थ के बीच चलता है।

आठों वसु प्रकाश के दिव्य प्राणी थे, प्रकृति के तत्वों के रक्षक। लेकिन एक क्षण की इच्छा में उन्होंने ऋषि वशिष्ठ के आश्रम से कामधेनु नंदिनी को चुरा लिया। यह गाय कोई साधारण जीव नहीं थी – वह माया थी, सृष्टि का इच्छा-पूर्ण क्षेत्र। जैसे ही दिव्य शक्तियों ने उसे पाने की चाह की, चेतना बाहर की ओर मुड़ी, और वहीं से पतन की प्रक्रिया शुरू हुई।

वशिष्ठ का शाप दंड नहीं था – वह अवतरण का नियम था। जब शुद्ध प्राण-शक्तियाँ उद्देश्य से हटकर भोग की ओर जाती हैं, तो उन्हें जन्म के बंधन में उतरना ही पड़ता है। जो शक्तियाँ पहले अनंत थीं, उन्हें रूप और सीमा का अनुभव करना पड़ा।

गंगा, जो चेतना की नदी है, करुणा से भर उठी। उसने उन्हें संसार में लाने और फिर शीघ्र ही अपने जल में लौटा लेने का वचन दिया। जैसे ही वह जन्म देती, पहले सात पुत्रों को वह तुरंत अपने प्रवाह में विलीन कर देती – यह उन सात ऊर्जा-स्तरों का प्रतीक है जो समर्पण और शुद्धि से स्रोत में लौट जाते हैं। ये सात वसु सात चक्रों के समान हैं, जो एक-एक करके मुक्त हो जाते हैं, जब चेतना उनसे ऊपर उठ जाती है।

लेकिन आठवाँ – प्रभास, जो मुख्य अपराधी था – मुक्त नहीं हुआ। वही भीष्म बनकर जन्मा। वह वह ऊर्जा है जो शरीर में रोकी गई – न विलीन हुई, न नष्ट, बल्कि संयमित। भीष्म का आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत उस उच्चतम योगिक संयम का प्रतीक है, जहाँ कामना चेतना में बदल जाती है और ऊर्जा बाहर नहीं बहती, बल्कि साक्षी रूप में स्थिर हो जाती है।

इस प्रकार योग की भाषा में:
आठ वसु सृष्टि को चलाने वाली आठ प्राण-धाराएँ हैं।
नंदिनी की चोरी चेतना का बाहर सुख खोजने जाना है।
शाप देहधारण है – कर्म की अनिवार्यता।
गंगा का प्रवाह शुद्धि की धारा है, जहाँ ऊर्जा अपने स्रोत में लौटती है।

और भीष्म वह जाग्रत चेतना है जो संसार में रहते हुए भी संसार से अछूती रहती है – वह सिद्ध योगी जो धर्म के बीच रहता है, पर उससे बँधता नहीं।

कुंडलिनी भी इसी तरह उतरती और चढ़ती है। सात धाराएँ ऊपर उठकर आत्मा के महासागर में विलीन हो जाती हैं; आठवीं – साक्षी चेतना – धरती पर रहकर भी धर्म की अग्नि बनकर जलती रहती है।

जब इस कथा को इतिहास नहीं, बल्कि भीतर का शास्त्र समझकर पढ़ा जाए, तो शरशय्या पर लेटे भीष्म का मौन जाग्रत मन का मौन बन जाता है – कर्म के बाणों से बिंधा हुआ, फिर भी पीड़ा से अछूता, केवल उस शुभ क्षण की प्रतीक्षा करता हुआ जब वह अनंत गंगा में लौट सके।

महाभारत के माध्यम से कुंडलिनी - पंचम वेद के योग का रहस्य उद्घाटन

महाभारत को अक्सर पंचम वेद कहा जाता है – उन लोगों के लिए लिखा गया वेद, जो मूल वेदों का अध्ययन नहीं कर सकते थे। वेद का अर्थ है "परम ज्ञान", और परम ज्ञान केवल ईश्वर का ज्ञान हो सकता है। इसी अर्थ में योग भी वही परम ज्ञान है – ईश्वर की प्रत्यक्ष अनुभूति। इसलिए गहराई से देखें तो महाभारत वास्तव में योग ही है, जो कथाओं के रूप में व्यक्त हुआ है। सामाजिक, नैतिक और पौराणिक कथाओं के माध्यम से यह सामान्य जन को योग का सार देता है। यह ठीक एक मीठी गोली की तरह है – पाठक कहानी की मिठास का आनंद लेता है, पर अनजाने ही आध्यात्मिक औषधि भी भीतर उतरती जाती है। घटनाएँ पढ़ते-पढ़ते भीतर योग के सूक्ष्म बीज बोए जाते हैं, जो धीरे-धीरे मन को उच्च अनुभूति के लिए तैयार करते हैं। जो लोग खुले हृदय से इसे पढ़ते हैं, वे इसकी भीतरी शक्ति को महसूस करने लगते हैं। बिना जाने ही उन्हें योग की झलक मिलने लगती है, और धीरे-धीरे वे प्रत्यक्ष साधना की ओर खिंच जाते हैं – उस अदृश्य शक्ति द्वारा, जो इसके श्लोकों में छिपी है।

जब गंगा चली गई और इच्छा लौट आई: वियोग का मौन नियम

शंतनु ने भीष्म को चेतना के महासागर में विलीन होने से बचाने के लिए गंगा से प्रश्न कर लिया। उसी क्षण अहं ने दिव्य ऊर्जा के प्रवाह को रोक दिया। गंगा पहले ही अपना वचन पूरा कर चुकी थी – सात उज्ज्वल धाराएँ, जो सात चक्रों का प्रतीक थीं, उसके जल में विलीन हो चुकी थीं; आठवें – भीष्म – को उसने स्वयं पाला और फिर शंतनु को सौंप दिया। जब गंगा लौट गई, तो जो कुंडलिनी पहले मुक्त रूप से नाचती थी, वह अब शंतनु के भीतर एक स्मृति बनकर रह गई – आनंद की स्मृति, बिना गति की चेतना। वह स्थिरता में बदल गई, और उसी स्थिरता में दिव्य प्रवाह से वियोग की एक मूक पीड़ा छिपी थी।

दिव्य प्रवाह की हानि

शंतनु का दुःख साधारण नहीं था। वह उस योगी का दुःख था जिसने कभी शक्ति की धारा को छुआ था और अब उसके अभाव को महसूस कर रहा था। चेतना की नदी लौट चुकी थी; प्राण स्थिर खड़े थे। यह स्थिरता शांति देती है, पर इसमें एक सूक्ष्म खतरा भी है – जहाँ गति रुकती है, वहाँ इच्छा फिर जाग उठती है।

सत्यवती: धरती के स्वभाव का आह्वान

उसी रिक्तता से सत्यवती प्रकट हुई – मछुआरे की बेटी, नदी की गंध और मिट्टी से जन्मी। वह गंगा का शुद्ध प्रवाह नहीं, बल्कि उसका सांसारिक प्रतिबिंब थी – माया का मूर्त रूप। मछली या

मछुआरा तीव्र इच्छा और वासना का प्रतीक है। जहाँ गंगा ऊपर उठाती थी, सत्यवती नीचे खींचती थी, चेतना को उसके अधूरे संबंध की याद दिलाती हुई। जब शंतनु उसके प्रति आकृष्ट हुआ, तो वह आत्मा का द्वैत के क्षेत्र में पुनः प्रवेश था। उसके पिता की शर्त – कि केवल सत्यवती का पुत्र ही राजा बनेगा – लोभ नहीं थी, बल्कि कर्म का नियम थी: हर अवतरण वंश, निरंतरता और परिणाम उत्पन्न करता है।

भीष्म का भयानक व्रत

पिता की इच्छा की रक्षा के लिए भीष्म ने अपनी इच्छा का त्याग कर दिया। यही वह क्षण था जहाँ योग का वास्तविक केंद्र प्रकट हुआ – ऊर्जा का कामना के बजाय कर्तव्य को चुनना। यहाँ ब्रह्मचर्य का अर्थ दमन नहीं, बल्कि संरक्षण है: वह शक्ति जो पहले शरीर में मिलन खोजती थी, अब चेतना में मिलन खोजने लगी। भीष्म शंतनु की उसी यौन ऊर्जा का रूप है, जो गंगा के जाने के बाद संयमित होकर ऊपर उठी, पवित्र बनी, और तप, त्याग, सहनशीलता जैसे गुणों में बदल गई। इस प्रकार भीष्म वह कुंडलिनी है जो जागरूकता में स्थिर हो चुकी है। वह धर्म का शासन करता है, पर सिंहासन पर नहीं बैठता – जैसे जाग्रत ऊर्जा जीवन को भीतर से चलाती है, पर कभी स्वामित्व नहीं जताती।

चेतना की गुप्त गति

गंगा का लौट जाना, शंतनु की लालसा, सत्यवती की माँग और भीष्म का व्रत – ये चारों मिलकर भीतर की एक ही घटना को दर्शाते हैं:
पहला – दिव्य से मिलन (गंगा)
दूसरा – कृपा की हानि और इच्छा की वापसी (शंतनु का दुःख)
तीसरा – पदार्थ में पुनः प्रवेश (सत्यवती)
चौथा – संयम और स्वामित्व (भीष्म)

सरल शब्दों में, भीष्म शीर्ष चक्र का प्रतीक है, जबकि उसके सात भाई उन निचले चक्रों के प्रतीक हैं जो सुषुम्ना में गंगा के रूप में उठती हुई ऊर्जा द्वारा मुक्त कर दिए गए। भीष्म को मुक्त नहीं किया गया, क्योंकि प्रकृति चाहती थी कि वह लोकहित में अनेक सांसारिक और नैतिक कर्तव्यों को पूरा करे। सत्यवती ने उसे और ऊपर उठाने के लिए प्रेरित किया, उसकी परीक्षा ली और उसकी स्थिरता सिद्ध की। वास्तव में, आध्यात्मिकता सबसे अच्छी तरह तब फलती है जब वह भौतिक जीवन के साथ संतुलित हो, क्योंकि भौतिक जीवन ही उसे सही दिशा में बार-बार मार्गदर्शन देता है। और ऊर्जा का भौतिक से आध्यात्मिक स्तर पर रूपांतरण भौतिकता के माध्यम से ही संभव होता है, क्योंकि शक्ति मूलतः भौतिक प्रकृति की ही है।

हर साधक इन चरणों से गुजरता है – जागरण, हानि, प्रलोभन और व्रत। नदी बहती रहती है, पर उसकी स्मृति ही अनुशासन बनकर आगे की यात्रा को दिशा देती है।

सार

जब कुंडलिनी लौटती है, साधक स्वयं को रिक्त महसूस करता है। लेकिन वही रिक्तता भीतर भीष्म को जन्म देती है – वह स्थिर जागरूकता जो संसार के तूफानों में भी आत्मा के धर्म की रक्षा करती है। गंगा का जाना त्याग नहीं है; वह उत्तरदायित्व में दीक्षा है।

व्यावहारिक जीवन में प्रकृति अक्सर संसार की भागदौड़ के बीच कुछ क्षण देती है, जहाँ आध्यात्मिक उत्थान संभव होता है। ये क्षण गंगा की शरण लेने का आमंत्रण होते हैं – यानी ऊपर उठी हुई यौन ऊर्जा की शुद्ध धारा, जो सभी चक्रों को धो देती है। जैसे ही शीर्ष चक्र की शुद्धि पूर्ण होने लगती है, सत्यवती के रूप में सांसारिक आकर्षण प्रकट होते हैं। इस अवस्था में मनुष्य ऊर्जा को ऊपर उठाने के बजाय नीचे बहा देता है – जैसे मछली पकड़ने की धारा।

शीर्ष चक्र में स्थापित शुद्ध जागरूकता, भले ही मुक्त न हो सके, फिर भी एक महान सांसारिक संत बन जाती है – भीष्म की तरह। यही प्रकृति का संतुलन है – संसार और परम ज्ञान के बीच। अंततः प्रकृति भीष्म को भी मुक्त करती है, जब वह उसके सांसारिक कर्तव्य से संतुष्ट हो जाती है। कुछ समय के लिए वह फिर गंगा के साथ जुड़ता है और आध्यात्मिक रूप से आगे बढ़ता है। फिर कुछ समय बाद उसे फिर से बाहर की इंद्रिय-सुखों में डाला जाता है, ताकि भीष्म-बोध की परिपक्वता की परीक्षा हो सके। यह चक्र चलता रहता है, जब तक शंतनु रूपी मनुष्य इतना परिपक्व न हो जाए कि वह गंगा से भीष्म-बोध को स्थायी रूप से प्राप्त कर सके और योगिक विवेक से उसे मुक्ति की ओर उठा सके।

एक रोचक बात यह है कि ये पौराणिक पात्र और कथाएँ नश्वर मनुष्य की तरह नहीं हैं, बल्कि शाश्वत हैं। भीष्म आज भी जाग्रत मन के रूप में जीवित है, सुषुम्ना रूपी गंगा द्वारा पोषित – अभी भी, और सदा के लिए।

भीतर की देवी की अग्निमय कृपा
ध्यान की एक सुबह और लाल शक्ति का जागरण

आध्यात्मिक साधना में हर सुबह एक नया रहस्य लेकर आती है। कभी यात्रा बहुत कोमल होती है – जैसे धीरे-धीरे उगता सूरज – और कभी भीतर से एक दिव्य तूफान की तरह गर्जना करती है। आज सुबह की साधना में शक्ति का ऐसा ही एक उग्र और शुद्ध करने वाला खेल प्रकट हुआ – विशुद्धि चक्र में निवास करने वाली लाल देवी से साक्षात्कार, जो अग्निमय कृपा से भीतर को साफ़ और रूपांतरित करती है।

आज मैं सुबह 4:30 बजे जागा, जैसे भोर की शांति ने भीतर से बुलाया हो। साधना की शुरुआत मैंने स्पाइनल क्रिया श्वास से की, फिर गुरु द्वारा दिए गए हल्के आसन और प्राणायाम किए। उसके बाद ऊपर से नीचे तक चक्र ध्यान किया, और अंत में कुछ ऐसे आसन किए जो उसी क्षण स्वाभाविक रूप से सही लगे।
करीब 6 बजे तक शरीर तैयार हो चुका था, श्वास स्थिर थी और चेतना ध्यान के लिए पूरी तरह तैयार।

मैं पहले वज्रासन में बैठा। धीरे-धीरे श्वास शांत हुई और आज्ञा चक्र में टिक गई – अधिकतर उसके पीछे के हिस्से में, लेकिन आगे से भी जुड़ी हुई। वहाँ की अनुभूति बहुत अलग थी – भारी-सी, थोड़ी सुस्त, फिर भी आनंदमयी जलन, जिसमें एक सूक्ष्म यौन-सा भाव भी था। ऐसा लग रहा था मानो वही स्थान साँस ले रहा हो, प्राण को खा रहा हो, और शरीर का बाकी हिस्सा बिल्कुल स्थिर और साँस-रहित हो गया हो। हर अंदर की धड़कन के साथ ऐसा लगता था कि वह श्वास को ग्रहण कर किसी गुप्त काम में लगा हुआ है, जिसे केवल वही जानता है।

मेरा चेहरा हल्का-सा ऊपर की ओर था, गर्दन थोड़ी पीछे झुकी हुई, ताकि भीतर की दृष्टि अनंत आकाश की ओर खुल जाए। झुकाव शारीरिक रूप से बहुत नहीं था, लेकिन चेतना पूरी तरह ऊपर समर्पित हो चुकी थी। मन पूरी तरह शांत था। ध्यान गहरा होता जा रहा था।

कुछ समय बाद मैंने सिर थोड़ा नीचे किया, आँखें बंद रखीं, और भौंहों के बीच हल्की तिरछी दृष्टि टिकाई। ध्यान की धारा टूटी नहीं। मैंने कभी-कभी सभी चक्रों को महसूस किया – सब तृप्त और साफ़ लग रहे थे – केवल आज्ञा चक्र ही अभी भी श्वास का भूखा था। मैंने उसे जैसे चाहा वैसे ही श्वास लेने दी। कुछ देर बाद चेतना गले के क्षेत्र में खिसक गई, जहाँ मुँह और नाक के रास्ते

पीछे की दीवार से मिलते हैं। वह क्षेत्र भी श्वास पीने लगा – जैसे प्यासा रेगिस्तान बारिश को पीता है।

फिर वह धारा विशुद्धि चक्र में उतर गई। वहीं सबसे अधिक भूख महसूस हुई – जैसे कुछ असंतुलित था। शक्ति आगे बढ़ने से रुक गई। उसे वहीं काम करना था – शुद्धि, उपचार और रूपांतरण का। वह वहीं ठहर गई।

जैसे-जैसे प्रक्रिया तेज़ हुई, यौन-प्रकार का आनंद और गहरा होने लगा। अचानक गले के भीतर देवी का एक स्पष्ट दर्शन हुआ – उग्र और तेजस्वी। वह लाल वस्त्रों में थी, उसकी अनेक भुजाओं में लाल चूड़ियाँ थीं, जो उसके अग्रभागों तक पहनी हुई थीं, और जब वह छोटे-छोटे दुष्टों पर वार कर रही थी तो वे टकराकर बज रही थीं – जैसे भीतर की अशुद्धियाँ हों। उसके साथ उसका सिंह गर्जना कर रहा था, युद्ध में उसका साथ दे रहा था।

उसका चेहरा भयानक था, लाल क्रोध से दमकता हुआ, होंठ गहरे लाल, अंधकार को निगलने के लिए आतुर। उसके खुले बाल चारों ओर उड़ रहे थे, और उसकी तीखी, ऊँची, स्त्री-गर्जना हृदय को हिला देने वाली थी।

तभी मूलाधार से यौन ऊर्जा उठकर उसे शक्ति देने लगी – ऊपर की ओर दौड़ती हुई, उसकी दिव्य अग्नि को और प्रज्वलित करती हुई। दृश्य और तीव्र होता गया – शक्ति उठती, बदलती, विजय प्राप्त करती हुई।
जब मैंने उसी देवी की कल्पना मूलाधार में की, तो वह और भी उग्र रूप से ऊपर फूटी, रीढ़ के भीतर से विस्फोट करती हुई। इस भीतर के युद्ध में शरीर थक गया। ध्यान धीरे-धीरे अपने स्वाभाविक अंत की ओर चला गया।

जैसे ही चेतना बाहर लौटी, मैं अनायास ही केमिस्ट की दुकान की ओर चल पड़ा और बेटाडीन गरारे की दवा खरीद ली – मानो देवी को एक सांसारिक अस्त्र अर्पित कर रहा हूँ, ताकि वह भीतर के युद्ध में और सहायता पा सके। शायद वह केवल आध्यात्मिक ही नहीं, शारीरिक रणभूमि को भी साफ़ कर रही थी।

इस प्रकार आज का ध्यान समाप्त हुआ – एक उग्र, पर शुद्ध करने वाला साक्षात्कार, विशुद्धि चक्र की लाल देवी के साथ, जो रूपांतरण और पवित्र अग्नि की जीवित मूर्ति है।
हर ऐसी साधना यह याद दिलाती है कि दिव्य स्त्री शक्ति कोई दूर की कल्पना नहीं है – वह

भीतर जीवित है, निरंतर उपचार करती हुई, संतुलन बनाती हुई और चेतना के विकास का मार्गदर्शन करती हुई।

अनाहत चक्र में जागरूकता - भीतर की देवी द्वारा उपचार

आज मैंने सुबह 5 बजे योग अभ्यास शुरू किया। वातावरण स्थिर था, मन शांत और शरीर पूरी तरह तैयार। स्पाइनल ब्रीदिंग के बाद मैंने गुरु द्वारा दिए गए योगासन और अपनी चुनी हुई साधना की, जिसमें ऊपर से नीचे तक चक्र ध्यान भी शामिल था – बिना श्वास रोकने के। इन दिनों मैं श्वास रोकने से बचता हूँ, ताकि सिर में अतिरिक्त दबाव न बने। फिर भी अब मुझे समझ आ गया है कि इससे डरने की कोई ज़रूरत नहीं है; सिर में प्राण के बल को सहने और संतुलित करने की अद्भुत क्षमता होती है।

एक बार स्वप्न-अवस्था में गैस्ट्रिक उभार के दौरान मैंने अत्यधिक सिर दबाव, क्षणिक घुटन और रक्तचाप में अस्थायी वृद्धि का अनुभव किया था – लेकिन शरीर ने स्वयं को बहुत सुंदर ढंग से संतुलित कर लिया। इससे मुझे यह याद आया कि साधना से तैयार शरीर स्वयं अपना संतुलन जानता है। इसलिए आज मेरी तैयारी की योगिक प्रक्रिया लगभग डेढ़ घंटे चली – उतनी ही, जितनी ध्यान में उतरने के लिए आवश्यक आंतरिक योगिक दबाव बनाने के लिए पर्याप्त होती है।

मैं जानता हूँ कि यह योगिक दबाव स्थायी नहीं होता। यह धीरे-धीरे ध्यान की ज्योति में विलीन हो जाता है, जैसे गैस सिलेंडर की गैस जलते-जलते समाप्त हो जाती है। और जब यह भीतर का ईंधन खत्म होता है, तो साधक अपने आप ध्यान से लौट आता है – पहले शरीर के पीछे की ओर नीचे से ऊपर तक गहरे आंतरिक संकुचन होते हैं, ताकि तीन मुख्य नाड़ियों में ऊर्जा का प्रवाह सुगम हो सके, फिर धीरे-धीरे श्वास गहरी होने लगती है। जब श्वास सामान्य होती है, तो आँखें अपने आप खुल जाती हैं। आज भी यही हुआ।

ध्यान के दौरान वज्रासन ने फिर से बहुत अच्छा आरंभ दिया। सूक्ष्म श्वास अपने आप आज्ञा चक्र में चलने लगी और काफी देर तक बनी रही। लेकिन पूरे समय मुझे अनाहत चक्र में एक तरह का यौन-सदृश आनंद महसूस होता रहा। मैं इस आनंद को आज्ञा से मूलाधार की ध्यान-रेखा में शामिल कर रहा था, जिससे आज्ञा और अनाहत – दोनों केंद्र एक साथ संतुष्ट होते रहे। कोई और चक्र ऊर्जा के लिए भूखा नहीं लगा। बाद में मैंने ध्यान को केवल अनाहत पर केंद्रित किया। वहाँ जागरूकता गहरी हो गई, लेकिन ध्यान का मुख्य उद्देश्य – शून्य की अनुभूति – वहाँ पूरी तरह नहीं खुल पाया। इसलिए मैंने फिर आज्ञा और अनाहत दोनों की संयुक्त जागरूकता बना ली।

मुझे याद है, एक क्रिया योग विशेषज्ञ ने कहा था कि "केवल स्पाइनल ध्यान से मुक्ति नहीं मिलती।" उनका कहना था कि आज्ञा चक्र ध्यान पूरे मेरुदंड को समेटे हुए होता है। आज मैं इस बात को गहराई से समझ पाया – वास्तव में, रीढ़ का हर चक्र आज्ञा में प्रतिबिंबित होता है। फिर भी, यह समझ होने के बावजूद, मेरी संवेदनात्मक जागरूकता अनाहत के पीछे के भाग में ही जमी रही, कहीं और जाने को तैयार नहीं थी, जबकि श्वास की जागरूकता आज्ञा में बनी हुई थी।

कल मेरा ध्यान विशुद्धि चक्र पर था, जहाँ गले का संक्रमण था। आज वह संक्रमण ठीक हो गया, लेकिन वही संक्रमण और ऊर्जा छाती में उतर आई। इससे यह स्पष्ट हुआ कि ये भीतर की संवेदनाएँ कितनी सूक्ष्मता से शारीरिक अवस्थाओं को दर्शाती हैं – जैसे एक आंतरिक निदान और उपचार प्रणाली। फिर भी आज के समय में दवाइयाँ इस प्रक्रिया को अधिक सीधे सहारा देती हैं। प्राचीन काल में, जब बाहरी सुविधाएँ नहीं थीं, तब देवी-स्वरूप जागरूकता के माध्यम से निदान और उपचार का विशेष महत्व था।

जब मैंने अनाहत में देवी का ध्यान किया, तो मूलाधार से उठने वाला यौन आनंद उनकी उपस्थिति को शक्ति देता महसूस हुआ। मुझे हल्के-से दृश्य दिखाई दिए – जैसे वह मेरी छाती में दैत्यों से लड़ रही हों, जो सूक्ष्म जीवों के प्रतीक थे। ऐसा लगा मानो अनाहत चक्र स्वयं एक लिंग बन गया हो – वास्तविक आनंदमय लिंग अब वहीं प्रकट हो रहा हो।

लगभग तीस मिनट बाद, जब पैर में खिंचाव आने लगा, तो मैंने बहुत धीरे से सुखासन लिया, शरीर की गति को न्यूनतम रखते हुए और जागरूकता को आज्ञा पर टिकाए रखते हुए, ताकि ध्यान न टूटे। फिर मैं एक घंटे तक और बैठा रहा, इस अनुभूति को बनाए रखते हुए कि शक्ति मेरे हृदय-केंद्र और उससे जुड़े ऊतकों को ठीक कर रही है।

अंत की ओर एक अद्भुत अनुभव प्रकट हुआ – शून्य की स्पष्ट अनुभूति, जो कल से भी अधिक उज्ज्वल थी। ऐसा लगा जैसे मैं अपने सिर के ऊपर अनंत आकाश को सीधे देख रहा हूँ, जबकि सिर वास्तव में ज़्यादा ऊपर नहीं उठा था।

चिंतन:
आज हृदय-केंद्र खुला हुआ महसूस हो रहा है – शांत, प्रकाशमान और उपचारित। वहाँ की शक्ति कोमल है, लेकिन बहुत गहरी। अब जागरूकता किसी एक बिंदु में बंद नहीं लगती, बल्कि आकाश की तरह फैल गई है। हर श्वास अब हृदय-मंदिर में गूँजते हुए एक स्तोत्र जैसी लगती है। इसके अलावा, कल मैं बौद्धिक रूप से बहुत व्यस्त था, इसलिए ऐसा लगता है कि गहन बौद्धिक कार्य ध्यान में सहायता करता है; हालाँकि यह शरीर के स्वास्थ्य पर कुछ भार भी डाल सकता है।

जब अंधकार शांत हो जाता है: ध्यान की शांत परिपक्वता

आज मुझे ऐसा महसूस हुआ कि कुंडलिनी नाभि चक्र में स्थिर हो गई है। मैं थोड़ा देर से, लगभग सुबह 6 बजे उठा। फिर मैंने अपनी दैनिक दिनचर्या के अनुसार स्पाइनल ब्रीदिंग की, गुरु द्वारा दिए गए आसन और प्राणायाम किए, कुछ अपने बनाए हुए आसन किए और ऊपर से नीचे तक चक्र ध्यान किया – बिना श्वास रोकने के। थोड़ी ही देर में इतना योगिक दबाव बन गया कि ध्यान अपने आप शुरू हो सके।

मैं वज्रासन में बैठा, आँखों को भौंहों के बीच से ऊपर की ओर और उससे भी आगे – एकार्णव की असीम ऊँचाई की ओर मोड़कर। श्वास धीरे-धीरे शांत और नियमित हो गई, हालाँकि पिछले दिनों की तरह पूरी तरह रुक नहीं पाई। शून्य ध्यान गहरा था। बीच-बीच में मेरे गुरु नारायण की छवि झलकती रही – जीवित और तेजस्वी। गुरु तत्व वास्तव में बाहर नहीं, भीतर ही होता है। जब मन भीतर की ओर मुड़ता है, तो वह स्वयं प्रकट हो जाता है। ध्यान के दौरान मन में जो गुरु-छवि आती है, वही मन को भटकने से रोकती है, उसे उसी पर टिकाती है, जब तक कि वह स्वयं ब्रह्म में विलीन न हो जाए। एक तरह से वह मन-जगत का वाहन बन जाती है, जो चेतना को सीधे ब्रह्म की ओर ले जाती है।

इसी कारण हर धर्म में गुरु को इतना महत्व दिया गया है। उनके जीवन-तरीके ऐसे बनाए जाते हैं कि व्यक्ति भीतर की ओर मुड़े और ध्यान में स्थिर गुरु-छवि बन सके। लेकिन यह प्रक्रिया तभी सच में फलदायी होती है, जब कोई ऐसा व्यक्ति हो जो दिव्य गुणों को जीता हो – तभी वह सच्चा गुरु बन सकता है। जहाँ ऐसा जीवित गुरु नहीं होता, वहाँ देव प्रतिमाएँ सहारा बन सकती हैं, लेकिन वे जीवित गुरु के बराबर नहीं हो सकतीं, क्योंकि जीवित गुरु ईश्वर की चलती-फिरती मूर्ति होता है, और इसलिए उसका प्रभाव कहीं अधिक गहरा होता है। गुरु तत्व हर संप्रदाय और धर्म में पूजित है, पर लगता है कि सिख धर्म ने गुरु तत्व के सार को सबसे गहराई से समझा है।

मुझे यह भी अनुभव हुआ कि जैसे कुंडलिनी शरीर के भीतर के चक्रों को पोषण देती है, वैसे ही वह शरीर के बाहर के चक्रों को भी पोषित करती है – जो अनंत शून्य में फैलते हैं। वही कुंडलिनी जो शरीर को जीवित रखती है, शरीर के पार जाकर एकार्णव शून्य में विलीन होने में भी सहायता करती है।

आज मैंने किसी एक चक्र को नहीं, बल्कि शून्य के पोषण को प्राथमिकता दी। फिर भी, जब भी ऊर्जा ऊपर ब्रह्म की ओर जाती, बीच के चक्र अपने आप ही ऊर्जा पा लेते थे। मुझे रीढ़ के पीछे नाभि चक्र के क्षेत्र में ऊर्जा का सहारा महसूस हो रहा था, जबकि बाकी चक्र शांत और संतुलित थे – नाभि की तरह आनंद से भरे हुए नहीं।

कल मेरी ऊर्जा अनाहत चक्र में स्थिर थी। वह धीरे-धीरे सहस्रार से नीचे उतरती आई – हर दिन अगले चक्र में विश्राम करती हुई। उससे एक दिन पहले मैंने मूलाधार की ऊर्जा को संचित भी किया था, जो शायद तेज़ी से नाभि तक उठ आई। यह तेज़ गति शायद उतरती हुई ऊर्जा के कारण हुई। यद्यपि सारी ऊर्जा मूलाधार से उठती है, लेकिन उतरने वाली धारा सहस्रार से ऐसे लौटती है जैसे पहाड़ों से लौटती मानसून की बारिश। जब आगे बढ़ती और लौटती मानसून धाराएँ किसी क्षेत्र पर मिलती हैं, तो वहाँ भीषण वर्षा होती है। इसी तरह जब उतरती और चढ़ती ऊर्जा किसी चक्र पर मिलती है, तो वह चक्र गहराई से सक्रिय हो जाता है – और कई बार मन में ऐसा उथल-पुथल भी होती है जिसे संभालना कठिन होता है, हालाँकि सूक्ष्म दर्शन इसमें सहायता करता है।

जो भी हो, शून्य ध्यान शांत था। बाद में मैंने नाभि चक्र पर सीधे ध्यान केंद्रित किया, ताकि उसे थोड़ा और बल मिल सके। तब श्वास अनियमित हो गई, जैसे वह स्वयं को नाभि में ऊर्जा पहुँचाने के लिए समायोजित कर रही हो। जब मैंने ध्यान वापस आज्ञा चक्र पर लाया, तो श्वास फिर शांत हो गई। ऐसे कुछ चक्रों के बाद मैंने धीरे से ध्यान समाप्त किया और अपनी सुबह की दिनचर्या शुरू करने के लिए उठ गया।

ध्यान में एक समय ऐसा आता है जब आनंद भी समाप्त हो जाता है, और केवल शांत जागरूकता रह जाती है। मैं अभी इसी अवस्था का अनुभव कर रहा हूँ – कोई आनंद नहीं, बस पूर्ण शांति और तटस्थता। मैं इसे अंधकार भी नहीं कह सकता, क्योंकि अंधकार आम तौर पर डराता है, जबकि यहाँ मुझे ठीक उल्टा अनुभव हो रहा है। वहाँ मुझे गहरा सुकून मिलता है, श्वास की हलचल से पूरी राहत। शुरू में ऐसा लग सकता है कि कुछ खो गया है, लेकिन सच में यह ध्यान की परिपक्वता का संकेत है।

पहले मन अनुभव चाहता था – प्रकाश, गर्मी, या आनंद की लहरें। अंधकार खाली और असहज लगता था। लेकिन जब श्वास और विचारों के तूफान शांत हो जाते हैं, तो देखने का ढंग बदल जाता है। वही अंधकार अब डराता नहीं, बस होता है। बाहर कुछ नहीं बदला, केवल देखने वाला बदल गया है।

यही जागरूकता का शांत खिलना है – बिना उत्तेजना के शांति, बिना प्रयास के स्पष्टता। भीतर प्रकाश या संवेदना न भी हो, तो भी एक सूक्ष्म ज्योति चमकने लगती है – जानने की ज्योति।

जब यह जागरूकता और गहरी होती है, तो जीवन पारदर्शी और कोमल लगने लगता है। बोलना, काम करना और चलना – सब उसी शांत स्थान में घटित होते हैं, जो पहले केवल ध्यान में मिलता था। जागरूकता को पकड़ने की ज़रूरत नहीं रहती – वह स्वयं ही स्वयं को संभालती है। मैं अभी उसी अवस्था के पूरी तरह खिलने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

इसी सरलता में ध्यान की सच्ची ज्योति है – न कोई तेज़ प्रकाश, न कोई दृश्य, बल्कि एक शांत दृष्टि, जो अंधकार के हृदय में भी कभी नहीं छोड़ती।

भीष्म – महाभारत का सबसे महान, पर अनकहा नायक

महाभारत में भीष्म द्वारा अंबा, अंबिका और अंबालिका को हरकर लाने की कथा सबसे प्रसिद्ध घटनाओं में से एक है। ऊपर से यह राजनीति, कर्तव्य और मानवीय भावनाओं की कहानी लगती है, लेकिन योग की दृष्टि से देखने पर इसमें कुंडलिनी शक्ति और चेतना की यात्रा के गहरे रहस्य छिपे हुए हैं।

1. भीष्म: वह संकल्प जो ऊर्जा को दिशा देता है

भीष्म अपने अटल निश्चय के साथ राजकुमारियों को हस्तिनापुर लाने निकलते हैं। योग की भाषा में वे उस दृढ़ इच्छाशक्ति का प्रतीक हैं, जो कुंडलिनी ऊर्जा को ऊपर उठाने और दिशा देने का काम करती है। जैसे योग में शक्ति अपने आप नहीं उठती, वैसे ही यहाँ भी संकल्प, दिशा और प्रयास की आवश्यकता होती है।

2. विचित्रवीर्य: ग्रहणशील चेतना

विचित्रवीर्य स्वयं कुछ नहीं करता, वह केवल स्वीकार करने वाला है। वह उस शांत चेतना का प्रतीक है, जो उठी हुई शक्ति को ग्रहण करने के लिए तैयार रहती है। भीष्म जो ऊर्जा लाते हैं, वह उसी में विलीन होने के लिए होती है, जैसे कुंडलिनी ऊपर उठकर उच्च चेतना से मिलती है।

3. राजकुमारियाँ: ऊर्जा के तीन रूप

अंबिका और अंबालिका वे ऊर्जाएँ हैं जो सहयोग करती हैं, सहज रूप से मिल जाती हैं और जीवन को आगे बढ़ाती हैं – जैसे इड़ा और पिंगला नाड़ियाँ साधना में सहायता करती हैं।
अंबा इसके विपरीत है – वह प्रतिरोध करती है। वह वह ऊर्जा है जो तुरंत नहीं मिल पाती, जिसे शुद्धि, धैर्य और कभी-कभी बिल्कुल अलग मार्ग की आवश्यकता होती है। यह सुषुम्ना के समान है, जिसे बल से नहीं खोला जा सकता।

4. हरण: ऊर्जा प्रवाह की शुरुआत

भीष्म का राजकुमारियों को हर ले जाना उस क्रिया का प्रतीक है, जहाँ ऊर्जा को नीचे से ऊपर की ओर उठाने का प्रयास किया जाता है। पर केवल बल या अनुशासन ही पर्याप्त नहीं होता। ऊर्जा को भी तैयार होना पड़ता है। बिना आंतरिक तैयारी के एकीकरण संभव नहीं।

5. अस्वीकृति, ग्रंथि और रूपांतरण

अंबा का विचित्रवीर्य और साल्व दोनों द्वारा अस्वीकार किया जाना भीतर की एक ग्रंथि का प्रतीक है – एक ऐसी अटकी हुई शक्ति जो तुरंत ऊपर नहीं जा सकती। यह वही शक्ति है जो

ध्यान का आधार बन जाती है, जिस पर बार-बार ध्यान टिकाया जाए तो समाधि का द्वार खुलता है।
साल्व निचले चक्रों का प्रतीक है और विचित्रवीर्य ऊपरी चक्रों का। सुषुम्ना रूपी अंबा दोनों के बीच फँसी रहती है। भीष्म ने उसे ऊपर की ओर गति दी, पर ब्रह्मचर्य के कारण उसे पूरी तरह ऊपर तक नहीं ले जा सके। इसलिए वह वापस नीचे लौट आती है। संसार इसे गलत समझता है – जैसे समाज अक्सर किसी संवेदनशील और बौद्धिक व्यक्ति को अकेला छोड़ देता है। अंबा का साल्व द्वारा त्याग दिया जाना भी यही दर्शाता है।

अंततः अंबा भीष्म के पास लौटती है और उनसे विवाह की मांग करती है, क्योंकि केवल तांत्रिक एकता ही उसे शिखर तक पहुँचा सकती है – शिव-पार्वती के मिलन की तरह। लेकिन भीष्म अपने ब्रह्मचर्य के व्रत के कारण उसे अस्वीकार कर देते हैं। यही उनकी कठोरता है, जो पारिवारिक संस्कारों से बनी है। यह कठोरता ही आगे चलकर संघर्ष का कारण बनती है।

अंबा शिखंडी के रूप में पुनर्जन्म लेती है और वही भीष्म के पतन का कारण बनती है। यह प्रतीक है कि अटकी हुई ऊर्जा अंततः कठोर इच्छाशक्ति को तोड़ देती है और सही समय पर, सही रूप में एकीकृत होती है। अर्जुन के मार्गदर्शन में शिखंडी का भीष्म के सामने आना इस बात का संकेत है कि उच्च चेतना (अर्जुन) के साथ ही यह रूपांतरण संभव होता है।

योगी भीष्म – महाभारत का मौन नायक
यह कथा अत्यंत अनुशासित लोगों का भी रहस्य खोलती है। कई ब्रह्मचारी या कठोर अनुशासन वाले लोग कर्तव्य, नैतिकता या सामाजिक नियमों के कारण जीवन साथी को अस्वीकार कर देते हैं, भले ही उनके भीतर सामर्थ्य हो। यह अस्वीकृति हृदय चक्र में एक अवरोध बना देती है। स्त्री ऊर्जा दबकर एक अजीब मानसिक छवि बन जाती है – न पूरी तरह पुरुष, न पूरी तरह स्त्री – शिखंडी जैसी। यही ऊर्जा धीरे-धीरे कठोर अहंकार को गलाती है और अंततः व्यक्ति को अधिक कोमल, भावनात्मक और प्रेमपूर्ण बना देती है। अंत में यह अवरोध ज्ञान देकर स्वयं ही विलीन हो जाता है – और यही भीष्म का दूसरा जन्म होता है।

अंततः यही ऊर्जा मस्तिष्क तक उठती है और गुरु-भाव, विवेक, जागरण या दिव्य चेतना बनकर प्रकट होती है।

अंबा, अंबिका, अंबालिका और योगिक नाड़ियाँ
अंबा को सुषुम्ना नाड़ी समझा जा सकता है, और अंबिका-अंबालिका को इड़ा-पिंगला। अनुशासन

और प्रयास से इड़ा-पिंगला को नियंत्रित किया जा सकता है, पर सुषुम्ना को नहीं। सुषुम्ना केवल समर्पण, संतुलित जीवन, भावनात्मक शुद्धि और धैर्य से ही खुलती है।

योगी भीष्म ने सोचा कि अंबिका और अंबालिका को साधकर वे अंबा को भी साध लेंगे, लेकिन यह संभव नहीं हुआ। जब तक हृदय की कठोरता नहीं टूटी, तब तक सुषुम्ना नहीं खुली। अंततः उन्होंने अंबा की छवि को गुरु, ईश्वर या नियति के रूप में स्वीकार करना शुरू किया – यही शिखंडी से सामना है, यानी भीतर की शक्ति से सामना।

छिपा हुआ संदेश

महाभारत हमें सिखाती है कि हर ऊर्जा बल से नहीं उठती। शुद्धि, धैर्य, समर्पण और मार्गदर्शन आवश्यक हैं। जो ऊर्जा अटकती है, वही अंत में सबसे शक्तिशाली रूप में जागती है। और जब तक अहंकार नहीं झुकता, आध्यात्मिक प्रगति संभव नहीं होती।

उपसंहार

भीष्म और राजकुमारियों की कथा केवल राजाओं की कहानी नहीं है – यह मनुष्य के भीतर कुंडलिनी की यात्रा है। भीष्म इच्छाशक्ति है, विचित्रवीर्य चेतना है और राजकुमारियाँ ऊर्जा के तीन रूप। कुछ सहज मिल जाती हैं, कुछ संघर्ष करती हैं और कुछ रूपांतरण के बाद ही ऊपर उठती हैं।

अंत में यह कथा बताती है कि केवल अनुशासन और प्रयास पर्याप्त नहीं हैं। जागरण के लिए खुलापन, समर्पण, भीतर की चिकित्सा और सही समय आवश्यक है।

अक्सर मनुष्य अपने नाम के पौराणिक अर्थ को अपने जीवन में जीता है। शायद मेरे साथ भी यही हुआ है। हाल ही में इस कथा का एक नया अर्थ मेरे भीतर खुला – जो मेरे जीवन से गहराई से जुड़ा लगता है। इसलिए मैंने इसे बिना झिझक लिख दिया।
यदि इसमें कोई त्रुटि है तो वह मेरी है, और यदि कोई सार है तो वह केवल ईश्वर की कृपा से है।

पशुओं में कुंडलिनी और संस्कार मनुष्यों की तरह क्यों कार्य नहीं करते

संस्कारों को समझा जा सकता है ऐसे प्रतीकात्मक चिन्हों के रूप में, जो किसी मनुष्य के भीतर विशेष रूप से रची गई आध्यात्मिक विधियों के माध्यम से अंकित किए जाते हैं। ये केवल सामाजिक रस्में नहीं होतीं, बल्कि अत्यंत भावनात्मक और सामूहिक आयोजन होते हैं, जिनमें रिश्तेदार, मित्र, बुज़ुर्ग और पूरा समाज एक व्यक्ति के चारों ओर एकत्र होता है। उस क्षण वह व्यक्ति सामूहिक ध्यान, भावना और संकल्प का केंद्र बन जाता है। यह संयोग आकस्मिक नहीं होता, बल्कि जानबूझकर इस तरह रचा जाता है कि जीवन भर के लिए गहरे भावनात्मक और मानसिक संस्कार पड़ जाएँ।

मनुष्य अर्थ, प्रतीक और सामूहिक ध्यान के प्रति अत्यंत संवेदनशील होता है। जब सैकड़ों मन एक ही समय में किसी एक व्यक्ति पर श्रद्धा, अपेक्षा और संकल्प के साथ केंद्रित होते हैं, तो उसका प्रभाव सामान्य सहयोग या सामाजिक संपर्क से कहीं अधिक गहरा होता है। सामान्य जीवन में सहयोग बिखरा हुआ और कार्य-केंद्रित होता है, जबकि संस्कारों का उद्देश्य केवल और केवल भीतर अंकन करना होता है। एक ही व्यक्ति सामूहिक भावनात्मक क्षेत्र का केंद्र बनता है, इसलिए उसका प्रभाव असाधारण रूप से गहरा और स्थायी होता है।

इसे रूपक रूप में क्वांटम एंटैंगलमेंट जैसा समझा जा सकता है – वैज्ञानिक समानता के रूप में नहीं, बल्कि संरचनात्मक तुलना के रूप में। जैसे क्वांटम में कण एक विशेष स्थिति में परस्पर जुड़कर अलग होने के बाद भी एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं, वैसे ही संस्कारों में कई मन एक अर्थपूर्ण और केंद्रित भावभूमि में जुड़ते हैं। भावनाएँ, मूल्य और संकल्प केवल जुड़ते नहीं, बल्कि एक सुसंगत रूप ले लेते हैं। एक बार अंकित होने के बाद ये भावनात्मक संबंध लंबे समय तक व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं को प्रभावित करते रहते हैं, भौतिक दूरी से स्वतंत्र होकर। यह तुलना केवल यह समझाने के लिए है कि गहन, अर्थपूर्ण और एकाग्र सहभागिता से स्थायी छाप बनती है।

मनुष्य के जीवन में परंपरागत रूप से सोलह संस्कार माने गए हैं – जन्म से लेकर मृत्यु तक के हर बड़े संक्रमण के लिए। ये संस्कार भावनात्मक गहराई, मानसिक संरचना और आध्यात्मिक ग्रहणशीलता को परिष्कृत करते हैं। इन्हीं संस्कारों से भीतर एक सूक्ष्म भावनात्मक ढांचा बनता है, जिसमें आगे चलकर कुंडलिनी जैसी उच्च प्रक्रियाएँ प्रकट हो सकती हैं। इसलिए संस्कार केवल परंपरा नहीं, बल्कि भावनात्मक तकनीकें हैं।

हर व्यक्ति इन संस्कारों को समान रूप से नहीं ग्रहण करता। कुछ लोग स्वभाव से अधिक संवेदनशील होते हैं। उनकी भावनात्मक ग्रहणशीलता अधिक होती है, इसलिए भावनाएँ गहराई से चिपक जाती हैं। यही गहराई आगे चलकर प्रेम या भक्ति के रूप में दिखाई देती है। यह प्रेम केवल बाहरी संबंध नहीं रहता; जब वह भीतर की ओर मुड़ता है, तो रूपांतरकारी शक्ति बन जाता है। योग और तंत्र में माना गया है कि यही भीतर की ओर मुड़ा प्रेम आगे चलकर कुंडलिनी के रूप में प्रकट होता है। भाव (भावा) धीरे-धीरे भक्ति बनता है, और भक्ति संकुचित होकर शक्ति (शक्ति) में बदल जाती है।

इस प्रक्रिया में एक स्पष्ट क्रम है – सामूहिक ध्यान से भावनात्मक अंकन होता है, व्यक्ति की संवेदनशीलता उसकी गहराई तय करती है, गहरी भावनाएँ प्रेम में बदलती हैं, और वही प्रेम भीतर मुड़कर आध्यात्मिक ऊर्जा बन जाता है। मनोविज्ञान इसे अंकन कहता है, तंत्रिका विज्ञान इसे स्थायित्व और न्यूरोप्लास्टिसिटी से समझाता है, और आध्यात्मिक परंपराएँ इसे शक्ति के रूप में वर्णित करती हैं।

पशु इस प्रक्रिया में इस तरह भाग नहीं लेते। इसका अर्थ यह नहीं कि उनमें जीवन या चेतना नहीं है, बल्कि उनकी भावनात्मक और तंत्रिका संरचना इस उद्देश्य के लिए बनी ही नहीं है। पशुओं में भावनाएँ होती हैं, लेकिन वे तात्कालिक, अस्तित्व-संबंधी और सरल होती हैं। वे अनेक मनों की सामूहिक भावनाओं को प्रतीकात्मक रूप में ग्रहण करने, सहेजने या रूपांतरित करने में सक्षम नहीं होते। उनका मस्तिष्क प्रतीकों, दीर्घकालिक भावनात्मक अंकन या अनुष्ठानिक पहचान के लिए विकसित नहीं हुआ है।

इसके अलावा, पशुओं को कभी जानबूझकर सामूहिक भावनात्मक केंद्र नहीं बनाया जाता। उनके जीवन में कोई ऐसा अनुष्ठान नहीं होता जो मूल्य, पहचान या आध्यात्मिक दिशा अंकित करे। जब जीवन के विभिन्न चरणों में लगातार संस्कार नहीं होते, तो भीतर प्रेम को परिष्कृत करने के लिए कोई स्थायी ढांचा नहीं बनता, और न ही कुंडलिनी के उठने के लिए कोई सुप्त भंडार बनता है।

इसलिए पशुओं में कुंडलिनी और संस्कारों का अभाव किसी हीनता के कारण नहीं, बल्कि संरचना के अंतर के कारण है। मनुष्य का जीवन भावनाओं के संचय, प्रतीकों के अर्थ और भीतर की यात्रा के लिए विशेष रूप से रचा गया है। संस्कार भावनात्मक भूमि तैयार करते हैं, प्रेम उसमें बहने वाली धारा बनता है, और कुंडलिनी उस भूमि में खिलने वाला पुष्प है, जब परिस्थितियाँ परिपक्व हो जाती हैं। पशु प्रकृति के साथ सामंजस्य में जीते हैं, लेकिन मनुष्य को ही प्रकृति के पार जाने का अवसर दिया गया है।

कैसे दिन में दो बार ध्यान करने से व्यस्त आधुनिक जीवन में समाधि स्वाभाविक रूप से पकती है

आज की तेज़ रफ्तार दुनिया में घंटों या दिनों तक लगातार ध्यान करना अधिकतर लोगों के लिए व्यावहारिक नहीं है। जीवन में ज़िम्मेदारियाँ हैं, काम है, परिवार है, और मन की व्यस्तता से बचना संभव नहीं। इसी कारण यह धारणा बन जाती है कि समाधि केवल लंबे एकांतवास या कठोर साधनाओं से ही मिल सकती है। लेकिन अपने अनुभव से मैंने धीरे-धीरे यह समझा है कि यदि दिन में दो बार, नियमित रूप से और ईमानदारी से एक-एक घंटा ध्यान किया जाए, तो वह भी समाधि तक पहुँचाने के लिए पर्याप्त और प्रभावशाली मार्ग है।

यह समझ केवल विचारों से नहीं आई, बल्कि मैंने अपने शरीर, श्वास, ध्यान और चेतना को लंबे समय तक ध्यानपूर्वक देखते हुए इसे जाना।

प्रातःकालीन ध्यान और तैयारी का महत्व

सुबह मैं सीधे ध्यान में नहीं बैठता। एक घंटे के ध्यान से पहले लगभग एक घंटा योगासन, प्राणायाम और स्पाइनल ब्रीदिंग करता हूँ। इसका उद्देश्य ऊर्जा के अनुभव पाना या श्वास रोकना नहीं है, बल्कि भीतर के प्रतिरोध को हटाना है। सामान्य जीवन में शरीर और मन में कुछ स्वाभाविक जड़ता और तनाव बन जाता है, जो प्राण और जागरूकता के ऊपर-नीचे बहने में बाधा डालता है। आसन और श्वास के अभ्यास उस जड़ता को धीरे-धीरे ढीला करते हैं – बिना हिंसा के, बिना ज़ोर के। जैसे ही यह रास्ता साफ़ होता है, शरीर उसे सीख लेता है। कुछ घंटों तक जागरूकता अपने आप बहने लगती है।

ध्यान में बैठते समय अक्सर श्वास बहुत सूक्ष्म हो जाती है या अपने आप रुक जाती है। यह किसी प्रयास से नहीं, बल्कि इसलिए होता है कि ध्यान निरंतर और सहज हो जाता है। इस तरह श्वासरहित ध्यान अपने आप घटित होता है।

लेकिन मैंने यह भी देखा है कि यह सहजता हमेशा बनी नहीं रहती। दिनभर की गतिविधियों के बाद या लगभग 24 घंटे में प्रतिरोध फिर लौट आता है। यह असफलता नहीं है – यह स्वाभाविक है। इसलिए रोज़ सुबह योग और प्राणायाम से सिस्टम को फिर से साफ़ करना ज़रूरी होता है। जैसे नहाना या दाँत साफ़ करना शरीर की सफ़ाई है, वैसे ही यह चेतना की सफ़ाई है।

खाली पेट और हल्का भोजन

मैंने यह भी देखा कि कभी-कभी फल या हल्का भोजन करने के बाद ध्यान उतना गहरा नहीं

होता, और कभी आश्चर्यजनक रूप से वही हल्का भोजन ध्यान को और परिपक्व कर देता है। कारण साफ़ है – पाचन ऊर्जा और ध्यान को नीचे की ओर खींचता है। जिन दिनों ऊर्जा सिर में ज़्यादा जम जाती है, तब हल्का भोजन उसे संतुलित कर देता है। और जिन दिनों स्पष्टता चाहिए, तब खाली पेट ध्यान अधिक साफ़ होता है। इसलिए भोजन नियम नहीं, बल्कि सूक्ष्म समायोजन का साधन है। मैं परिणाम चाहे जैसा हो, पूरा एक घंटा बैठता ही हूँ।

एक घंटे का निश्चित बैठना – असली प्रशिक्षण

चाहे ध्यान गहरा हो या न हो, पूरे एक घंटे बैठना सबसे ज़रूरी अभ्यास है। इससे केवल एकाग्रता नहीं, बल्कि अनुभव पर निर्भर न रहने की शक्ति बनती है। कुछ दिन ध्यान जल्दी गहराता है, कुछ दिन वह सपाट या शुष्क लगता है, फिर भी बैठना सिखाता है कि परिणाम की माँग छोड़ दी जाए। यही स्थिरता आगे चलकर गहरे अनुभवों को अपने आप आने देती है। हर बैठक गहरी होने के लिए नहीं होती; कुछ बैठकें गहराई की चाह को ही मिटाने के लिए होती हैं।

रात्रि का ध्यान – विलय के लिए

रात को सोने से पहले फिर एक घंटे ध्यान करता हूँ। इसका उद्देश्य अलग है – यह प्रयास का नहीं, विलय का समय है। यदि इस समय नींद आ जाए, तो यह असफलता नहीं है। इसका अर्थ है कि स्नायु-तंत्र सुरक्षित महसूस कर रहा है और छोड़ने को तैयार है। जागरूकता नींद की सीमा पर टिकती है, और कई सूक्ष्म परिवर्तन स्मृति के नीचे घटते हैं। कभी ध्यान चुपचाप पक जाता है, कभी नींद ले लेती है – दोनों ठीक हैं।

सुबह का अभ्यास संग्रह करता है।

रात का अभ्यास विसर्जन करता है।

दोनों मिलकर दिन को पूरा कर देते हैं।

बिना ज़ोर के चक्र ध्यान

ध्यान में मैं ऊपर से नीचे तक चक्रों का शांत अवलोकन करता हूँ। न ज़ोर की कल्पना, न श्वास नियंत्रण। केवल जागरूकता का ठहराव। जब प्रयास नहीं रहता, तो श्वास अपने आप रुक जाती है। यह लक्ष्य नहीं, परिणाम है। धीरे-धीरे चक्रों के अलग-अलग होने का अनुभव भी मिटने लगता है और पूरी रीढ़ एक ही धुरी जैसी लगती है। यह एकीकरण का संकेत है, कोई नई तकनीक नहीं।

आज्ञा चक्र का समावेश

जब आँखें बंद कर सहज रूप से दृष्टि ऊपर रहती है और साथ ही पूरी रीढ़ या किसी सक्रिय चक्र की जागरूकता बनी रहती है, तब ध्यान अक्सर विचाररहित, श्वासरहित और शांत आनंदमय

हो जाता है। यहाँ आज्ञा चक्र कोई लक्ष्य नहीं, बल्कि स्थिर करने वाला केंद्र है। कुछ भी ज़बरदस्ती नहीं होता, इसलिए यह सुरक्षित और पूर्ण लगता है।

गले का क्षेत्र और प्राण का ठहराव

हाल में मैंने देखा कि कभी-कभी प्राण गले या गर्दन के क्षेत्र में ठहर जाता है – आनंदमय और श्वासरहित। यह मैं नहीं करता; यह स्वयं होता है, जब सिर, छाती और श्वास के बीच का तनाव खुलता है। ज़रूरी यह है कि वहाँ अटकना नहीं है, बस उसे भी पूरे प्रवाह में शामिल करना है।

यह अभ्यास समाधि में कैसे पकता है

धीरे-धीरे एक बात स्पष्ट हुई – समाधि गहराई के पीछे दौड़ने से नहीं आती, बल्कि परिचय और निरपेक्षता से आती है। जब दिन में दो बार बैठा जाता है – चाहे ध्यान गहरा हो या हल्का, जागरूक हो या नींद भरा, आनंदमय हो या तटस्थ – तब चेतना बिना शर्त टिकना सीख लेती है। लंबे ध्यान आत्मसमर्पण को मजबूर करते हैं, लेकिन रोज़ का अभ्यास आत्मसमर्पण सिखाता है। सिखाया गया ज्ञान स्थायी होता है।

आधुनिक जीवन में सुबह एक घंटा तैयारी के साथ और रात एक घंटा समर्पण के साथ बैठना कोई समझौता नहीं है, बल्कि एक पूर्ण और बुद्धिमान मार्ग है।

अंतिम समझ

तैयारी प्रतिरोध हटाती है, प्राण को नहीं धकेलती।
ध्यान में श्वास का रुकना स्वाभाविक है, जब प्रयास गिरता है।
अवस्थाएँ आती-जाती हैं, बैठने की आदत बनी रहती है।
तीव्रता से अधिक एकीकरण ज़रूरी है।
समाधि कभी घोषणा नहीं करती – वह बाद में चुपचाप पहचानी जाती है।

सबसे महत्वपूर्ण बात जो मैंने सीखी है, वह यह है:
जहाँ प्रयास चाहिए, वहाँ प्रयास करो – और जहाँ प्रयास को समाप्त होना है, वहाँ उसे छोड़ दो। वहीं से साधना अपने आप पकती है।

यह छह पुस्तकों की श्रृंखला कुंडलिनी को पूरी तरह समाप्त करने का दावा नहीं करती, क्योंकि कुंडलिनी कोई स्थिर विषय नहीं, बल्कि एक जीवित बुद्धि है। जीवन, अभ्यास और मनोवैज्ञानिक परिपक्वता के साथ नए बोध आते रहेंगे। फिर भी यहाँ जो लिखा गया है, वह इस मार्ग का मूल सार है – ऊर्जा के जागरण से लेकर उसके मनोवैज्ञानिक प्रभाव तक, और फिर उन अवस्थाओं से

परे शांत परिपक्वता तक। इसके बाद कोई नया तंत्र नहीं बचता, केवल एक स्पष्ट जीवन जीना बचता है। इसलिए यह श्रृंखला यहाँ समाप्त होती है – इसलिए नहीं कि खोज रुक गई, बल्कि इसलिए कि आधार पूरा हो गया है। अब कुंडलिनी को व्याख्या की आवश्यकता नहीं – वह एक एकीकृत मनुष्य के भीतर स्वाभाविक रूप से स्वयं को व्यक्त करती रहती है।

कैसे दिन में दो बार ध्यान करने से व्यस्त आधुनिक जीवन में समाधि स्वाभाविक रूप से पकती है

आज की तेज़ रफ्तार दुनिया में घंटों या दिनों तक लगातार ध्यान करना अधिकतर लोगों के लिए व्यावहारिक नहीं है। जीवन में ज़िम्मेदारियाँ हैं, काम है, परिवार है, और मन की व्यस्तता से बचना संभव नहीं। इसी कारण यह धारणा बन जाती है कि समाधि केवल लंबे एकांतवास या कठोर साधनाओं से ही मिल सकती है। लेकिन अपने अनुभव से मैंने धीरे-धीरे यह समझा है कि यदि दिन में दो बार, नियमित रूप से और ईमानदारी से एक-एक घंटा ध्यान किया जाए, तो वह भी समाधि तक पहुँचाने के लिए पर्याप्त और प्रभावशाली मार्ग है।

यह समझ केवल विचारों से नहीं आई, बल्कि मैंने अपने शरीर, श्वास, ध्यान और चेतना को लंबे समय तक ध्यानपूर्वक देखते हुए इसे जाना।

प्रातःकालीन ध्यान और तैयारी का महत्व

सुबह मैं सीधे ध्यान में नहीं बैठता। एक घंटे के ध्यान से पहले लगभग एक घंटा योगासन, प्राणायाम और स्पाइनल ब्रीदिंग करता हूँ। इसका उद्देश्य ऊर्जा के अनुभव पाना या श्वास रोकना नहीं है, बल्कि भीतर के प्रतिरोध को हटाना है। सामान्य जीवन में शरीर और मन में कुछ स्वाभाविक जड़ता और तनाव बन जाता है, जो प्राण और जागरूकता के ऊपर-नीचे बहने में बाधा डालता है। आसन और श्वास के अभ्यास उस जड़ता को धीरे-धीरे ढीला करते हैं – बिना हिंसा के, बिना ज़ोर के। जैसे ही यह रास्ता साफ़ होता है, शरीर उसे सीख लेता है। कुछ घंटों तक जागरूकता अपने आप बहने लगती है।

ध्यान में बैठते समय अक्सर श्वास बहुत सूक्ष्म हो जाती है या अपने आप रुक जाती है। यह किसी प्रयास से नहीं, बल्कि इसलिए होता है कि ध्यान निरंतर और सहज हो जाता है। इस तरह श्वासरहित ध्यान अपने आप घटित होता है।

लेकिन मैंने यह भी देखा है कि यह सहजता हमेशा बनी नहीं रहती। दिनभर की गतिविधियों के बाद या लगभग 24 घंटे में प्रतिरोध फिर लौट आता है। यह असफलता नहीं है – यह स्वाभाविक है। इसलिए रोज़ सुबह योग और प्राणायाम से सिस्टम को फिर से साफ़ करना ज़रूरी होता है। जैसे नहाना या दाँत साफ़ करना शरीर की सफ़ाई है, वैसे ही यह चेतना की सफ़ाई है।

खाली पेट और हल्का भोजन

मैंने यह भी देखा कि कभी-कभी फल या हल्का भोजन करने के बाद ध्यान उतना गहरा नहीं

होता, और कभी आश्चर्यजनक रूप से वही हल्का भोजन ध्यान को और परिपक्व कर देता है। कारण साफ़ है – पाचन ऊर्जा और ध्यान को नीचे की ओर खींचता है। जिन दिनों ऊर्जा सिर में ज़्यादा जम जाती है, तब हल्का भोजन उसे संतुलित कर देता है। और जिन दिनों स्पष्टता चाहिए, तब खाली पेट ध्यान अधिक साफ़ होता है। इसलिए भोजन नियम नहीं, बल्कि सूक्ष्म समायोजन का साधन है। मैं परिणाम चाहे जैसा हो, पूरा एक घंटा बैठता ही हूँ।

एक घंटे का निश्चित बैठना – असली प्रशिक्षण

चाहे ध्यान गहरा हो या न हो, पूरे एक घंटे बैठना सबसे ज़रूरी अभ्यास है। इससे केवल एकाग्रता नहीं, बल्कि अनुभव पर निर्भर न रहने की शक्ति बनती है। कुछ दिन ध्यान जल्दी गहराता है, कुछ दिन वह सपाट या शुष्क लगता है, फिर भी बैठना सिखाता है कि परिणाम की माँग छोड़ दी जाए। यही स्थिरता आगे चलकर गहरे अनुभवों को अपने आप आने देती है। हर बैठक गहरी होने के लिए नहीं होती; कुछ बैठकें गहराई की चाह को ही मिटाने के लिए होती हैं।

रात्रि का ध्यान – विलय के लिए

रात को सोने से पहले फिर एक घंटे ध्यान करता हूँ। इसका उद्देश्य अलग है – यह प्रयास का नहीं, विलय का समय है। यदि इस समय नींद आ जाए, तो यह असफलता नहीं है। इसका अर्थ है कि स्नायु-तंत्र सुरक्षित महसूस कर रहा है और छोड़ने को तैयार है। जागरूकता नींद की सीमा पर टिकती है, और कई सूक्ष्म परिवर्तन स्मृति के नीचे घटते हैं। कभी ध्यान चुपचाप पक जाता है, कभी नींद ले लेती है – दोनों ठीक हैं।

सुबह का अभ्यास संग्रह करता है।

रात का अभ्यास विसर्जन करता है।

दोनों मिलकर दिन को पूरा कर देते हैं।

बिना ज़ोर के चक्र ध्यान

ध्यान में मैं ऊपर से नीचे तक चक्रों का शांत अवलोकन करता हूँ। न ज़ोर की कल्पना, न श्वास नियंत्रण। केवल जागरूकता का ठहराव। जब प्रयास नहीं रहता, तो श्वास अपने आप रुक जाती है। यह लक्ष्य नहीं, परिणाम है। धीरे-धीरे चक्रों के अलग-अलग होने का अनुभव भी मिटने लगता है और पूरी रीढ़ एक ही धुरी जैसी लगती है। यह एकीकरण का संकेत है, कोई नई तकनीक नहीं।

आज्ञा चक्र का समावेश

जब आँखें बंद कर सहज रूप से दृष्टि ऊपर रहती है और साथ ही पूरी रीढ़ या किसी सक्रिय चक्र की जागरूकता बनी रहती है, तब ध्यान अक्सर विचाररहित, श्वासरहित और शांत आनंदमय

हो जाता है। यहाँ आज्ञा चक्र कोई लक्ष्य नहीं, बल्कि स्थिर करने वाला केंद्र है। कुछ भी ज़बरदस्ती नहीं होता, इसलिए यह सुरक्षित और पूर्ण लगता है।

गले का क्षेत्र और प्राण का ठहराव

हाल में मैंने देखा कि कभी-कभी प्राण गले या गर्दन के क्षेत्र में ठहर जाता है – आनंदमय और श्वासरहित। यह मैं नहीं करता; यह स्वयं होता है, जब सिर, छाती और श्वास के बीच का तनाव खुलता है। ज़रूरी यह है कि वहाँ अटकना नहीं है, बस उसे भी पूरे प्रवाह में शामिल करना है।

यह अभ्यास समाधि में कैसे पकता है

धीरे-धीरे एक बात स्पष्ट हुई – समाधि गहराई के पीछे दौड़ने से नहीं आती, बल्कि परिचय और निरपेक्षता से आती है। जब दिन में दो बार बैठा जाता है – चाहे ध्यान गहरा हो या हल्का, जागरूक हो या नींद भरा, आनंदमय हो या तटस्थ – तब चेतना बिना शर्त टिकना सीख लेती है। लंबे ध्यान आत्मसमर्पण को मजबूर करते हैं, लेकिन रोज़ का अभ्यास आत्मसमर्पण सिखाता है। सिखाया गया ज्ञान स्थायी होता है।

आधुनिक जीवन में सुबह एक घंटा तैयारी के साथ और रात एक घंटा समर्पण के साथ बैठना कोई समझौता नहीं है, बल्कि एक पूर्ण और बुद्धिमान मार्ग है।

अंतिम समझ

तैयारी प्रतिरोध हटाती है, प्राण को नहीं धकेलती।
ध्यान में श्वास का रुकना स्वाभाविक है, जब प्रयास गिरता है।
अवस्थाएँ आती-जाती हैं, बैठने की आदत बनी रहती है।
तीव्रता से अधिक एकीकरण ज़रूरी है।
समाधि कभी घोषणा नहीं करती – वह बाद में चुपचाप पहचानी जाती है।

सबसे महत्वपूर्ण बात जो मैंने सीखी है, वह यह है:
जहाँ प्रयास चाहिए, वहाँ प्रयास करो – और जहाँ प्रयास को समाप्त होना है, वहाँ उसे छोड़ दो। वहीं से साधना अपने आप पकती है।

यह छह पुस्तकों की श्रृंखला कुंडलिनी को पूरी तरह समाप्त करने का दावा नहीं करती, क्योंकि कुंडलिनी कोई स्थिर विषय नहीं, बल्कि एक जीवित बुद्धि है। जीवन, अभ्यास और मनोवैज्ञानिक परिपक्वता के साथ नए बोध आते रहेंगे। फिर भी यहाँ जो लिखा गया है, वह इस मार्ग का मूल सार है – ऊर्जा के जागरण से लेकर उसके मनोवैज्ञानिक प्रभाव तक, और फिर उन अवस्थाओं से

परे शांत परिपक्वता तक। इसके बाद कोई नया तंत्र नहीं बचता, केवल एक स्पष्ट जीवन जीना बचता है। इसलिए यह श्रृंखला यहाँ समाप्त होती है – इसलिए नहीं कि खोज रुक गई, बल्कि इसलिए कि आधार पूरा हो गया है। अब कुंडलिनी को व्याख्या की आवश्यकता नहीं – वह एक एकीकृत मनुष्य के भीतर स्वाभाविक रूप से स्वयं को व्यक्त करती रहती है।

कुछ लेखक अनुमोदित साहित्यिक पुस्तकें-

1) Love story of a Yogi- what Patanjali says
2) Kundalini demystified- what Premyogi vajra says
3) कुण्डलिनी विज्ञान- एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान मतलब (पुस्तक 1,2,3 और 4)
4) The art of self publishing and website creation
5) स्वयंप्रकाशन व वैबसाईट निर्माण की कला
6) कुण्डलिनी रहस्योद्घाटित- प्रेमयोगी वज्र क्या कहता है
7) बहुतकनीकी जैविक खेती एवं वर्षाजल संग्रहण के मूलभूत आधारस्तम्भ- एक खुशहाल एवं विकासशील गाँव की कहानी, एक पर्यावरणप्रेमी योगी की जुबानी
8) ई-रीडर पर मेरी कुण्डलिनी वैबसाईट
9) My kundalini website on e-reader
10) शरीरविज्ञान दर्शन- एक आधुनिक कुण्डलिनी तंत्र (एक योगी की प्रेमकथा)
11) श्रीकृष्णाज्ञाभिनन्दनम
12) सोलन की सर्वहित साधना
13) योगोपनिषदों में राजयोग
14) क्षेत्रपति बीजेश्वर महादेव
15) देवभूमि सोलन
16) मौलिक व्यक्तित्व के प्रेरक सूत्र
17) बघाटेश्वरी माँ शूलिनी
18) म्हारा बघाट
19) भाव सुमन: एक आधुनिक काव्यसुधा सरस
20) Kundalini science~a spiritual psychology मतलब (books 1,2,and 3,4)
21) सांख्य संसार
२२) अकेले का नाच
23) ब्लैकहोल की योगसाधना
24) क्वांटम विज्ञान एवं अंतरिक्ष विज्ञान में योग

इन उपरोक्त पुस्तकों का वर्णन एमाजोन, ऑथर सेन्ट्रल, ऑथर पेज, प्रेमयोगी वज्र पर उपलब्ध है। इन पुस्तकों का वर्णन उनकी निजी वैबसाईट https://demystifyingkundalini.com/shop/ के वैबपेज “शॉप मतलब (लाईब्रेरी)” पर भी उपलब्ध है। साप्ताहिक रूप से नई पोस्ट मतलब (विशेषतः कुण्डलिनी से सम्बंधित) प्राप्त करने और नियमित संपर्क में बने रहने के लिए कृपया इस वैबसाईट,“https://demystifyingkundalini.com/ ” को निःशुल्क रूप में फोलो करें या इसकी सदस्यता लें।

सर्वत्रं शुभमस्तु